मन के उस पार

विमला ठकार

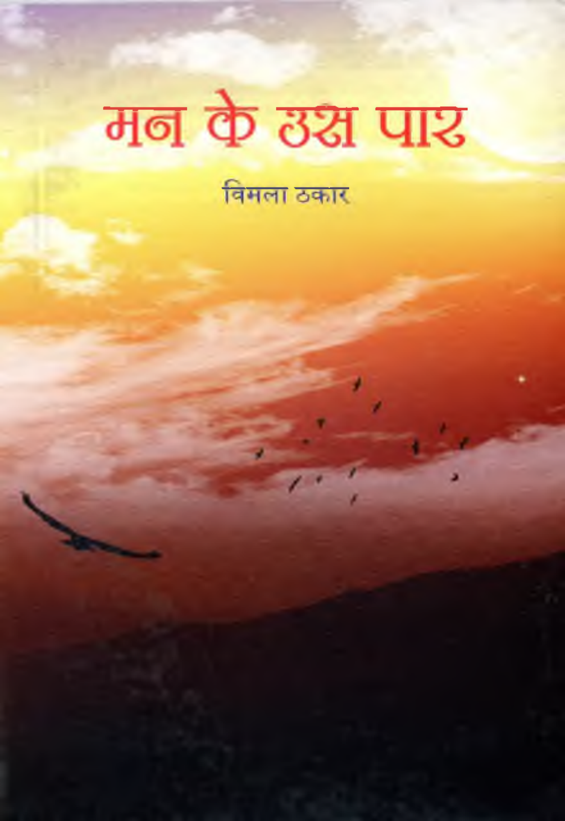

मन के उस पार

विमला ठकार

विमल प्रकाशन ट्रस्ट

मन के उस पार

(११ प्रवचनों और ४ प्रश्नोत्तरियों का शब्दश: सङ्कलन)

Man Ke Oos Par

(Hindi collection of talks by Shri Vimala Thakar)

© विमल प्रकाशन ट्रस्ट
''संतकृपा'', १०३, रत्नम् टावर, जजीस बंगलो रोड, बोडक देव, अहमदाबाद-३८० ०५४

प्रथम संस्करण : फरवरी, १९६९

द्वितीय संस्करण : जुलाई, १९८९

तृतीय संस्करण : अप्रैल, २०१३

प्रत : ५००

पृष्ठ : १४ + २१० = २२४

मूल्य : रु. १२०/-

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान : विमल प्रकाशन ट्रस्ट
'विमल सौरभ',
वाणियावाडी शेरी नं. २,
राजकोट - ३६० ००२ गुजरात
दूरभाष / फेक्स : ०२८१-२३६५२७९
ई-मेईल : vimalsaurabh2010@yahoo.com
vimalprakashantrust@yahoo.com

आवरण : जयेशभाई हिराणी
के. क्रिएशन ग्राफिक्स, राजकोट

मुद्रणशुद्धि : चंदुलाल वी. ठकराल - राजकोट

मुद्रक : वासुकि प्रिन्टिंग प्रेस
९/५, जंकशन प्लोट,
राजकोट - ३६० ००१
दूरभाष : ०२८१-२४५८३१३

प्राक् कथन

[महामहोपाध्याय डॉ. श्री गोपीनाथ कविराज]

मानव की जागतिक सत्ता का विश्लेषण करने पर स्थूल द्रष्टि से उसमें तीन विभाग दिखाई देते हैं - (१) भौतिक विभाग (२) मनोमय विभाग और (३) अतिमानस विभाग। भौतिक भाग में स्थूलदेह अथवा अन्नमय कोश और उसके साथ मिला हुआ प्राणमय कोश अवस्थित है। मनोमय विभाग में मनोमय कोश है। उसके बाद जो तृतीय विभाग है उसमें स्थूल द्रष्टि से दो खण्ड हैं - एक विज्ञान का और दूसरा आनन्द या अमृत का। इस पञ्चकोश का जो अधिष्ठाता है, उसकी सत्ता प्रत्येक कोश में ही है; प्रत्येक कोश के अनुरूप भाव से उसकी सत्ता दिखाई देती है। एक विभाग के साथ दूसरे विभागों का सम्बन्ध (interconnection) है। साधारणतया मनुष्य मनोमय कोश में सञ्चरण करता है, परन्तु सभी कोशों के साथे न्यूनाधिक रूप से सम्बन्ध रहता है। क्रियागत संस्कार प्रत्येक स्तर में उत्पन्न होता है और सञ्चित भी होता है। भौतिक देह में इन्द्रिय कार्य करते हैं। इन्द्रिय है बहिर्मुख शक्ति। बाह्य जगत् के साथ सम्बन्ध करने के लिए यह द्वार स्वरूप है। मनुष्य बहिर्मुख वृत्ति की अवस्था में उन-उन इन्द्रियों के द्वारा उन-उन विषयों का ग्रहण करता है। चक्षु रूप का ग्रहण करता है, श्रोत्र शब्द का ग्रहण करता है, इत्यादि। रूप, रस आदि बाह्य जगत् का स्वरूप है। इन्द्रिय उसका आभासन करने वाला है, अवश्य ही प्रतिबन्धक न रहने पर। मन उसकी व्याख्या (interpretation) करता है। इस व्याख्या-व्यापार में स्मृति तया संस्कार उसकी मदद करते हैं - ज्ञात रूप से या अज्ञात रूप से (consciously or unconsciously)। सर्वत्र ही प्रकाशात्मक आलोक आता है अधिष्ठाता आत्मा से। देश, काल, प्रभृति उपकरण इस मनोमय राज्य के निर्माण में सहायक होते हैं, इस प्रकार से सुख-दुःख-मय भोग-चक्र अज्ञात रूप से निर्मित हो जाता है, और जीव को जकड़ लेता है। इसी का नाम है संसार-बन्धन। दार्शनिक लोग कहीं-कहीं संस्कार को इसका हेतु बताते हैं। यही कर्म और भोग का स्वरूप-रहस्य है। मनुष्य अनादि काल से इस चक्र में गिर कर व्याकुल होकर छटपटाता है। ययासमय मरण होता है। मृत्यु के बाद फिर जन्म होता है। इस धारा का विराम नहीं है। इसका क्या कारण है?

यही कि मनुष्य अपने को अपने शुद्ध द्रष्टाभाव में देख नहीं सकता है । शुद्ध द्रश्य को विभिन्न रंगों से रञ्जित करके देखता है । जो चिदात्मक शुद्ध द्रष्टा है, वह विकल्पमयी मनोभूमिका में अवतीर्ण होकर इस रंगीन जगत् के सम्मुखीन हो जाता है । मन है विकल्पों का भाण्डार-घर । यह पूर्व-संस्कार के अधीन होकर तदनुसार दृश्य पदार्थों को रञ्जित कर डालता है । दृश्य के विशुद्ध स्वरूप का दर्शन आत्मा को मिलता नहीं है । चिदात्मा के प्रकाश में जगत् प्रकाशमान है, परन्तु जगत् का वैचित्र्यमय रंगीन आकार जो कि प्रत्येक व्यक्ति के निकट भिन्न-भिन्न रूप से प्रतिभात होता है, वह मन की कल्पना से संजात है । अनन्त विकल्पों के आकार के सिवाय वह कुछ नहीं है । बाह्य जगत् का यह रंगीन माया-जाल अन्तरात्मा को मोहित करके उसे सत्य-दर्शन से वञ्चित रखता है । इसका एकमात्र कारण यह है कि मनुष्य सोया हुआ है, निद्रित है, अभी तक उसका सुप्तिभङ्ग नहीं हुआ है । गीता की भाषा में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि मनुष्य अभी संयमी होकर 'सर्वभूतों' की जो निशा है', उसमें जागृत नहीं हुआ है । अथवा जिस भूमिका में सर्वभूतों का जागरण है, उससे निवृत्त नहीं हुआ है ।

जीवन के मार्ग में मनुष्य के लिए प्रधान लक्ष्य है प्रबुद्ध होना, जागृत होना अर्थात् अनादि निद्रा के क्रोड से उत्थित होना । गुरुकृपा और अपना पुरुषकार या तपस्या - इन दोनों से भी अधिक यह आवश्यक है । प्रबुद्ध होने का प्रधान लक्षण यही है कि मन आत्मा के नियन्त्रण में स्थित रहे । आत्मा का स्वातन्त्र्य उसी समय प्रतिष्ठित होता है, जब मन सर्वकाल के लिये आत्मा के अधीन रहता है, जब वह आत्मा को छोड़कर इन्द्रिय के साथ युक्त नहीं होता और इन्द्रियों के विषय-दर्शन को संस्कारों के द्वारा रञ्जित नहीं करता और न ही अनन्त प्रकार के विकल्पों की सृष्टि करता है । अनादि काल से शैथिल्य के कारण मन आत्मा का आनुगत्य स्वीकार नहीं करता; यदि ऐसा करता तो प्रत्याहार नामक योगाङ्ग की आवश्यकता ही न पड़ती । यह सबको परिज्ञात है कि इन्द्रियार्थ-सन्निकर्ष मात्र से विषय-साक्षात्कार नहीं होता, यदि मन के साथ इन्द्रिय का सन्निकर्ष न हो और सर्वोपरि आत्मा के साथ मन का सन्निकर्ष न रहे ।

अतएव श्रेय:कामी को चाहिए कि मन को इन्द्रियों के साथ युक्त न होने दे । और उसे निरन्तर अपने नियन्त्रण में रखे । यह योगी के लिए सम्भव है । और यदि

आत्मा मन पर नियन्त्रण न रखे तो यह चाहिए कि आत्मा स्वयं मन के साथ युक्त न हो। यह अत्यन्त उच्च स्थिति की बात है। इस अवस्था में आत्मा चित्शक्ति-सम्पन्न रहता है, अर्थात् आत्मा निज स्वरूप में स्थित रहता है, मन के प्रभाव के अधीन नहीं। अथवा वह भी हो सकता है कि हम समझें कि आत्मा परमात्मस्वरूप में युक्त रहता है। इस परिस्थिति में कुछ वैकल्पिक अवस्थाएं हो सकती हैं - (१) मन का इन्द्रियों से युक्त न होना और उसका आत्मा से युक्त रहना; (२) मन के इन्द्रियों से युक्त रहने पर भी आत्मा का मन से वियुक्त रहना, परन्तु परमात्मा से युक्त न रहना; (३) आत्मा का परमात्मा से युक्त रहना। तृतीयावस्था अत्यन्त उच्च भूमिका है। इस भूमिका में भगवल्लीला-दर्शन का अधिकार मिलता है। यह परा भक्ति की दशा है। इस अवस्था में इन्द्रियों के मन से युक्त रहने पर भी और विषयों के इन्द्रियों से युक्त रहने पर भी सर्वत्र भगवल्लीला का साक्षात्कार होता है। द्वितीय अवस्था ज्ञानी का दर्शन है, उस अवस्था में आत्मा मन से युक्त नहीं है और परमात्मा से भी युक्त नहीं है। यह निर्विकल्पक आत्मसाक्षात्कार की अवस्था है। आगम विज्ञान कहता है कि आत्मा दो प्रकार का है - एक पुरुष-रूपी, और दूसरा ईश्वर-रूपी। पुरुष-रूपी आत्मा मन पर नियन्त्रण नहीं रख सकता, इसलिये इन्द्रिय का अर्थ से संयोग होने पर ही मन इन्द्रिय से युक्त हो जाता है। ईश्वर-रूपी आत्मा स्वात्म-स्वानन्द में सिद्ध होने के कारण मन को नियन्त्रित करने में समर्थ होता है।

एक प्राचीन सिद्ध महापुरुष ने स्वरचित ज्ञानगर्भ स्तोत्र में परा शक्ति जगदम्बा को संबोधन करके कहा है -

''विहाय सकला: क्रिया जननि ! मानसी: सर्वतो
विमुक्तकरणक्रियाऽनुसृतिपारतन्त्र्योज्ज्वलम् ।
स्थितैस्त्वदनुभावत: सपदि वेद्यते सा परा
दशा नृभिरतन्द्रिताऽसमसुखामृतस्यन्दिनी ।।''

इसका तात्पर्य यह है कि साधक विभिन्न प्रकार की मानसिक क्रियाओं का परित्याग करते हुए, और इन्द्रियों की क्रियाओं के अनुसरण रूप पारतन्त्र्य का परिहार करते हुए स्थिति-लाभ करता है। योगी लोग भगवती की कृपा से ऐसी एक अपूर्व परम रमणीय अवस्था का अनुभव कर सकते हैं कि जिस अवस्था में वे लोग नित्य

जाग्रद् भाव में अतुलनीय सुखामृत की अभिव्यञ्जक एक परम आध्यात्मिक स्थिति का अनुभव करने में समर्थ होते हैं ।

ग्रन्थ के प्राक्कथन में अधिक आलोचना (चर्चा) की आवश्यकता नहीं है । आयुष्यमती सुश्री विमला ठकार के अंग्रेजी भाषणों के पुस्तकाकार में अनेक प्रकाशन मैंने देखे हैं - जैसे From Heart to Heart (1964), Mutation of Mind (1966), Silence in Action (1968) - इत्यादि - और सदैव मुझे उनसे आन्तरिक प्रसन्नता हुई है । आपके सर्वप्रथम हिन्दी प्रकाशन का मैं हार्दिक स्वागत करता हूं । जीवन के स्वानुभव से स्फूर्त आपकी वाणी में अपूर्व प्रसाद, सहज सौन्दर्य और माधुर्य एवं विशेष प्रभाव है । अभिव्यक्ति की सहजता, मन की 'गण्डी' (मर्यादा) से बाहर निकलने के मार्ग का सरल निरूपण देख कर मुझे बहुत प्रसन्नता होती है । 'विमल' जीवन के अनुरूप ही 'विमल' वाणी है । आप में मानव के समग्र विकसित व्यक्तित्व का दर्शन करके मुझे सदैव बहुत प्रसन्नता हुआ करती है । आशा है यह हिन्दी प्रकाशन भारत के जनसाधारण को अखण्ड जागृति की ओर उन्मुख कर सकेगा और शीघ्र ही आपके और भी हिन्दी-प्रकाशन सुलभ हो सकेंगे और उनके माध्यम से आपके जीवन का सौरभ अधिकाधिक लोगों में फैल सकेगा । आपने मेरे आशीर्वाद की इच्छा प्रकट की, यह आपकी सहज विनम्रता है । आशीर्वाद तो क्या कहें - मेरी आन्तरिक शुभेच्छा आपके सम्पूर्ण व्यवहार के लिये चिरकाल उन्मुक्त है; उसमें देने-लेने का अन्तर कहाँ है ?

शिवरात्रि, शनिवार,
१५ फरवरी, १९६९

श्री गोपीनाथ कविराज
(२ ए, सिगरा, वाराणसी)

प्रथम संस्करण का

सम्पादकीय निवेदन

*वक्ता की इच्छाओं का सम्पादन में पालन नहीं हो सका है, यही इस निवेदन का केन्द्रबिन्दु है ।

बोलने और लिखने में, प्रवचन और प्रबन्ध में जो सहज अन्तर होता है, उससे सभी परिचित होंगे । प्रवचन को लिखित रूप में प्रस्तुत करते समय उसका थोड़ा-बहुत 'संस्कार' आवश्यक होता है । साथ ही यह भी सत्य है कि 'संस्कार' बोझिल बनकर प्रवचन को 'प्रबन्ध' का रूप देने की कोशिश करने लगे यह भी वांछनीय नहीं होता । प्रस्तुत संवादों की सहजता के प्रति सम्पादिका को इतना मोह रहा है कि अपेक्षित 'संस्कार' बहुत ही कम हो पाया है, जिसे नगण्य ही कहा जा सकता है । इस कारण अन्याय वक्ता के प्रति अधिक और पाठकों के प्रति कम हुआ होगा, ऐसा उसका विनम्र विश्वास है ।

वास्तविक स्थिति का निर्णय तो पाठक ही कर सकेंगे । केवल इतना निवेदन है, कि सम्पादिका के सामने, न जाने क्यों, पाठकों का 'श्रोता' रूप ही स्पष्ट झलकता रहा है; पाण्डुलिपि और प्रूफ पढ़ते समय स्वयं का भी उसे एक श्रोता के रूप में ही भान रहा है । इसलिये बहुत कुछ 'संस्कार' का काम जिसे अनावश्यक समझ कर उसने नहीं किया है, सम्भवत: पाठकों को आवश्यक प्रतीत होगा । यदि पाठक भी अपने को श्रोता मानक इन सहज, उन्मुक्त, स्फूर्त संवादों को लिपि-बद्ध काया के माध्यम से सुनेंगे तो सम्पादन की त्रुटियाँ उन्हें शायद कम अखरें । वैसे, सम्पादनधर्म का पालन हो नहीं पाया है, यह बात सम्पादिका की चेतना में पूरी तरह स्पष्ट है ।

वक्ता की वाणी जल के प्रवाह की भाँति है जिसमें कोई लहरी छोटी, कोई बड़ी, कोई ऊँची, कोई नीची, कोई धीमी, कोई तेज़, कोई बीच में ही खण्डित होकर नवीन रूप में उठने वाली और कोई अनेक छोटी-छोटी लहरियों के सम्मिलन को अपने

* 'वक्तृ' शब्द के स्त्रीलिंग रूप 'वक्त्री' का प्रयोग दुरूह होता; इसलिये सुगमता के अनुरोध से 'वक्ता' ही रहने दिया गया है ।

में समेटने वाली रहती है । प्रस्तुत संवादों की वाक्य-रचना भी इसी प्रकार है । उसमें परिवर्तन बहुत कम किया गया है । कहीं-कहीं (बहुत कम स्थलों पर) वाक्य पूरा करने के लिये कुछ अंश कोष्ठकों (brackets) में जोड़े गये हैं । अधिकांश स्थलों पर विभिन्न विराम-चिह्नों द्वारा ही लहरियों का उठना, गिरना, टूटना-जुड़ना अंकित करने की कोशिश की गई है ।

अंग्रेजी शब्दों, वाक्यांशों या वाक्यों को बिल्कुल हटा कर उनका हिन्दी रूपान्तर देने में ही वक्ता के प्रति न्याय होता । इस प्रसंग में अंग्रेजी-हिन्दी दोनों भाषाएँ जानने वाले पाठक या श्रोता सम्पादिका की चेतना में उभरने लगे और एक ही बात को दो जानी-पहचानी भाषाओं में सुनने से बात मन में अधिक गहरी पैठती है, यह स्वानुभव आड़े आ गया । केवल हिन्दी के पाठकों की इसके कोई क्षति प्रायः नहीं होगी । इस बात का ध्यान रखने की कोशिश की गई है कि अंग्रेजी अंशों का शब्दार्थ अथवा भावार्थ हिन्दी अंशों में अवश्य रहे । बहुत स्थलों पर मूल में इस दृष्टि से कई हिन्दी अंश कोष्ठकों (brackets) में या सीधे वाक्यों, वाक्यांशों के रूप में जोड़े भी गये हैं । फिर भी कहीं कोई अंश हिन्दी में यदि न्यून रह गया हो तो सम्पादिका क्षमाप्रार्थिनी है ।

नदी के सहज प्रवाह में कोई कृत्रिम खण्ड बनाने की दृष्टि से नहीं, चालू विषय का संकेत मात्र देने के लिये सभी पन्नों पर शीर्षक लगा दिये गये हैं । पुस्तक के पन्ने उलटते-पलटते समय या एक बार पढ़े हुऐ अंश में से कोई स्थलविशेष खोजते समय ये शीर्षक कुछ उपयोगी रहेंगे ऐसी आशा है ।

पुनरुक्ति वाक्य की, वाक्यांश की या कथ्य (content) की - किसी बात पर ज़ोर देने के लिये, उसे हृदयंगम बनाने के लिये या स्मृति में दृढ़ करने के लिये - उपयोगी होती है । श्रोताओं के प्रति स्नेहशील वक्ता के लिये वह सहज होती है । उस का लिखित रूप शायद समग्र संवाद के सौन्दर्य की कुछ क्षति करता हो, किन्तु इसका समूचा दोष सम्पादिका पर है । उसे ऐसा लगा कि पुनरुक्ति का जो प्रयोजन 'श्रोता' के लिये है, वही पाठक के लिये भी हो सकता है । पाठकों की राय यदि ऐसी होगी कि पुनरुक्ति अवधान में बाधा या बोझ बन जाती है तो अगले संस्करण में तदनुसार व्यवस्था की जाएगी । प्रस्तुत संस्करण में तो सम्पादिका केवल अपने अनुभव से प्रेरित

रही है, (किसी की राय जानने की सुविधा नहीं मिल सकी है), पाठकों का अनुभव उससे भिन्न होगा तो वही उसे मान्य होगा ।

पुनरुक्ति वाली बात उदाहरणों पर भी लागू होती है । वक्ता की इच्छा थी कि सब उदाहरण हटा दिय जाएँ । किन्तु उदाहरणों का जो मूल्य श्रोता के लिये है, वही पाठक के लिये भी होगा; यही प्रतीति उदाहरण हटाने में बाधक रही ।

कहीं-कहीं वक्ता के मुख से अपने जीवन या व्यक्तित्व के संबंध में कुछ बातें अनायास निकल गई हैं । उन्हें हटा देने में वक्ता की इच्छा का पालन होता । किन्तु यहाँ भी पाठकों के प्रति सम्पादिका का पक्षपात प्रबल हो उठा; ऐसे पाठकों का ध्यान आ गया जो पहली बार वक्ता का परिचय पाएँगे । इसलिये यहाँ भी वक्ता के प्रति अन्याय ही हुआ ।

सत्य के विनियोग में देश, काल, पात्र की सापेक्षता करुणाशील वक्ता की चेतना में अवश्य रहती है । पाठकों का उस सापेक्षता की पृष्ठभूमि से परिचय कराने के लिये प्रवचनों के स्थान, काल और श्रोतृमण्डल का संकेत दे दिया गया है । बम्बई के शिबिर और व्याख्यानों की तिथियों में, अनिवार्य कारणवश, कुछ भूल हो गई है । पाठक कृपया निम्नलिखित सही तिथियाँ 'नोट' कर लें -

शिबिर	-	१७/१९-११-१९६७
प्रथम व्याख्यान	-	१७-११-१९६७
द्वितीय व्याख्यान	-	१८-११-१९६७
तृतीय व्याख्यान	-	१९-११-१९६७

प्रस्तुत संवादों का स्थान गुजरात रहा है । इसलिये भाषा में कहीं-कहीं गुजराती का प्रभाव सहजरूप से आ गया है । हिन्दी का 'राष्ट्रभाषा' रूप-'राष्ट्र' की सभी भाषाओं द्वारा समृद्ध होना चाहिये और हो सकता है, ऐसा सम्पादिका का विश्वास है । इसलिये कुरूपता के लिये 'कद-रूपता' और 'अखिलता' के लिये 'अखिलाई' इस प्रकार के शब्द ज्यों-के-त्यों रखने में उसे संकोच नहीं हुआ; अपितु जान-बूझ कर ही उसने ऐसा किया है ।

मुद्रण की शुद्धि की ओर यथासम्भव पूरा अवधान दिया गया है। फिर भी छोटी-मोटी भूलें प्रमादवश अवश्य रह गई होंगी। आधुनिक औषधों के नामों का शुद्ध रूप मालूम न होने के कारण सम्पादिका को पाण्डुलिपि का ही अनुसरण करना पड़ा है; सम्भवतः उन नामों के मुद्रण में प्रमादवश नहीं, अज्ञानवश भूल रह गई होगी। सुधी पाठक सभी भूलों का कृपया मार्जन कर लें ऐसी प्रार्थना है। इसी प्रसंग में तारा यन्त्रालय को, मुद्रण में हार्दिक सहयोग के लिये, धन्यवाद दिये बिना बात अधूरी रह जायेगी।

ऊपर लिखि त्रुटियाँ तो सम्पादिकाको स्वयं विदित हैं, लेकिन उनके अलावा और बहुत-सी त्रुटियाँ हो सकती हैं, जिनका उसे भान तक न हो। पाठक सभी त्रुटियों पर अपनी राय जाहिर करेंगे तो सम्पादिका पर बहुत अनुग्रह होगा। वक्ता की अपेक्षा पाठकों की राय कुछ विषयों में अधिक मूल्यवान् हो सकती है; किन्तु एक बात में वक्ता ही एकमात्र प्रमाण है और वह निम्नलिखित है।

वक्ताके प्रति और किसी जिम्मेदारी का पालन तो नहीं हो सका, किन्तु इस बात का पूरा ध्यान अवश्य रखा गया है कि किसी भी अंश में वक्ताके अभिप्राय का या उसके अभिप्रेत बल-अबल का व्याघात न हो। फिर भी यदि ऐसा व्याघात या विपर्यय हुआ हो तो वह अपराध अक्षम्य होगा।

अन्त में एक परम पुनीत कर्तव्य के सुखद पालन का अवसर सम्पादिका को विशेष सौभाग्य से मिला है और वह है पूज्यपाद विभूति-स्वरूप म० म० श्री गोपीनाथ कविराज के प्रति वक्ता की विनम्रता कृतज्ञता और सश्रद्ध प्रणाम का निवेदन।

शिवरात्रि, शनिवार,
१५ फरवरी, १९६९

प्रेमलता शर्मा
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी-५

|| हरिः ॐ तत् सत् ||

द्वितीय-संस्करण-निवेदन

''मन के उस पार'' - पुस्तक का प्रथम संस्करण १९७५ से ही दुष्प्राप्य, फिर अप्राप्य हो गया था । बहुत से नये पाठकों ने विमल वाङ्मय के इस प्रथम हिन्दी-प्रकाशन की सानुरोध माँग की थीं, किन्तु तुरन्त द्वितीय संस्करण हो न पाया था । आज वह प्रकाश में आ रहा है, इस से सहृदय आनन्दित होंगे । जिन मित्रों (विशेष रूप से राजकोट के श्री शशिकान्तभाई महेता) के आर्थिक सहयोग से यह प्रकाशन सम्भव हुआ है उनके प्रति हम कृतज्ञ हैं ।

प्रकरणों के अन्त में तथा पुस्तक के अन्त में भी श्री० विमला जी के ही अन्य दो अप्राप्य संकलनों ('मौन के अनुनाद' तथा 'पावक स्फुलिङ्ग') में से कुछ अंश उद्‌धृत किये गये हैं । आशा है इन अंशों के पुनः प्रकाशन से उन पाठकों को आनन्द होगा जिन्हें वे अप्राप्य संकलन प्राप्त नहीं हो सके हैं । ''मौन के अनुनाद''-रूप कवितायें व काव्यात्मक वाक्य तो विशेष रूप से 'विमलवाणी' के हिन्दी में प्रथम उन्मेष हैं ।

इस संस्करण में रही सभी त्रुटियों के लिये (कुछ परिस्थिति-प्राप्त व्यग्रता में खिन्न) सम्पादिका (ऊर्मिला) का मन सभी पाठकों से क्षमा-याचना करता है एवं 'जीवन-विभु' से आर्त्तिभरी प्रार्थना करता है कि 'मन के उस पार' का जीवन इस प्राणधारी के द्वारा भी जिया जा सके ।

यहाँ जो कुछ रुचिर व सुन्दर बन पड़ा हो उस का श्रेय प्रथम संस्करण की सम्पादिका प्रो० प्रेमलता शर्मा को, तथा सम्यक् मुद्रण का श्रेय तारा-यन्त्रालय, वाराणसी को हैं ।

अषाढ़ी पूर्णिमा
१८-७-१९८९

उर्मिला शर्मा

तृतीय संस्करण

प्रकाशकिय

लम्बे समय से अप्राप्य 'मन के उस पार' पुस्तक का तृतीय संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें आनन्द हो रहा है। पिछले संस्करणों में रही त्रूटियाँ सुधारी गई है। फिर भी मुद्रा राक्षस के कारण छुट गई त्रूटियों के लिये हम पाठकों के क्षमा प्रार्थी हैं। कुछ उद्‌धृत अंश पन्नो की संख्या नियोजन करने हेतु हटाये गये हैं।

ईश्वर की असीम कृपा से 'मन के उस पार' के पुन: प्रकाशन के यज्ञकार्य की प्रेरणा जिज्ञासु मित्रों को हुई। हमें श्रद्धा है कि यह पावन करनेवाली वाणी जीवन साधकों को अन्तरयात्रा में सहायभूत होगी।

श्री रामनवमी

२०१३

विमल प्रकाशन ट्रस्ट

अनुक्रमणी

१ : स्थान - अहमदाबाद

(१)		१-३५
	(क) प्रवचन	१-१६
	(ख) प्रश्नोत्तरी	१७-३५
(२)		३६-७२
	(क) प्रवचन	३६-५२
	(ख) प्रश्नोत्तरी	५३-७२
(३)		७३-१०४
	(क) प्रवचन	७३-९०
	(ख) प्रश्नोत्तरी	९१-१०४

२ : स्थान - संस्कारतीर्थ, आजोल (गुजरात)

(१)		१०५-११४
	(क) दोपहर की सभा	१०५-१०७
	(ख) सायंकाल की प्रार्थना-सभा	१०८-११४
(२)		११५-१५०
	(क) प्रात:काल की प्रार्थना-सभा	११५-१२५
	(ख) प्रात:काल द्वितीय सभा प्रश्नोत्तरी	१२६-१४१
(३)	प्रात:काल की प्रार्थना-सभा	१४२-१५०

३ : स्थान - मुंबई

(१)	प्रथम प्रवचन	१५१-१६४
(२)	द्वितीय प्रवचन	१६५-१८८
(३)	तृतीय प्रवचन	१८९-२०७

सम्पूर्ण विमल वाङ्मय (हिन्दी) २०८

म० म० पूज्यपाद श्री गोपीनाथ कविराज

आत्मजा के सश्रद्ध विमल-वन्दन

: १ :

स्थान : अहमदाबाद
तिथियाँ - २०/२२-१-१९६८

(क) प्रात:काल, संवाद दिनांक - २०-१-१९६८

फूलों की सुगंध से अंदाज़ किया जा सकता है कि उस वृक्ष के बीज में, जड़ों में किस प्रकार का रस संचार करता होगा। शब्द तो प्रकाश के किरण हैं। किरणों पर से अंदाज़ लगाया जा सकता है कि जिस प्रकाशपुंज में से किरण निकलते हैं, उस पुंज में कितनी गहराई और कितनी शक्ति भरी है। लेकिन किरण सूर्य नहीं हैं, और पुष्प या फल वृक्ष की समग्रता नहीं है।

शब्दों का यह जो व्यापार दो-तीन दिन हम लोगों के बीच चलेगा, उस व्यापार में आप भी उतना ही सावधान रहेंगे जितनी कि सावधानता वक्ता की रहेगी।

इस देश में, 'धर्म' और 'अध्यात्म' इन दोनों के बारे में एक बहुत बड़ी ग़लतफ़हमी, ग़लत धारणा है। धर्म अध्यात्म नहीं है। धर्म अलग वस्तु है, अध्यात्म उससे नितान्त भिन्न है।

जल का धर्म है प्रवाहित होना; पृथ्वी का धर्म है स्थिर रहना; अग्नि का धर्म है उष्णता देना। उसी प्रकार मनुष्य का धर्म है - चिन्तन करके, मनन करके, जो उपादान उसको मिला है, जो शरीर मिला है, जो बुद्धि मिली है, जो मन मिला है, जो कुछ उसको प्रभु की ओर से दिया गया है, निसर्ग की ओर से मिला हुआ है, उसका सम्यक् उपयोग करना। यह तो धर्म हुआ। इसका अध्यात्म से कोई सम्बन्ध नहीं है।

शरीर में छिपी हुई अनन्त शक्तियों का जिसने विकास कर लिया है - यह मानना ज़रूरी नहीं है कि इस प्रकार के विकसित व्यक्ति का आध्यात्मिक जीवन से कोई सम्बन्ध है। शरीर में छिपी हुई अनन्त शक्तियों का विकास करना और उस विकास को उपलब्ध होना मनुष्य का धर्म हो सकता है। लेकिन उसका अध्यात्म से कोई सम्बन्ध नहीं है।

मनुष्य को मन मिला है, शरीर से भी, अधिक शक्तियाँ, यह जो मन नाम का करण मिला है, इन्द्रिय मिला है, साधन मिला है, उसमें छिपी हुई हैं । लेकिन मन की अनन्त शक्तियों का विकास जिसने पा लिया है - यह मानने की आवश्यकता नहीं कि ऐसा मानव आध्यात्मिक है । चेतन मन की शक्तियाँ हैं, अचेतनमन की शक्तियाँ है; चेतन-अचेतन से भी गहराई में जो अवचेतन है, उसमें भी अनन्त शक्तियाँ हैं । लेकिन इन शक्तियों के विकास का धर्म से भले ही सम्बन्ध हो, अध्यात्म से नहीं है ।

बुद्धि का धर्म है देखना । बुद्धि देखेगी अनन्त विषयों का बहिरंग और अन्तरंग । अनन्त विषयों का ज्ञान बुद्धि से प्राप्त होगा - लेकिन यह मानने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसा ज्ञानी व्यक्ति आध्यात्मिक होगा ।

धर्म में और अध्यात्म में जो नितान्त भिन्नता है इसकी ओर आज संकेत करना चाहते हैं । नहीं तो भूल से धर्म को ही अध्यात्म समझ बैठेंगे और जीवन उसीमें व्यतीत होगा । यह तो कर्तव्य है । शरीर में, मन में, बुद्धि में जो शक्तियाँ हैं, उनका समग्रता में विकास उपलब्ध करना, यह मानव का धर्म है । इसमें उसने कोई बहुत बड़ी बहादुरी की है या कोई विशेषता उसमें है, ऐसा मुझे दिखता नहीं है । यानि, गुलाब का पौधा है - उस पर गुलाब के फूल हैं, तो उसकी सुगंध, उसका सौरभ, उसकी सुन्दरता का आस्वाद हम लेंगे; लेकिन यह न कहेंगे कि गुलाब के फूल के खिलने में कोई विशेष पुरुषार्थ हैं । वह तो धर्म है । जल का स्रोत है, प्रपात है, प्रवाह है, प्रवाह की गति से आनन्द होगा, शीतलता मिलेगी, उससे ताज़गी मिलेगी-लेकिन यह भी नहीं मानेंगे कि जलस्रोत ने बहुत बड़ा पुरुषार्थ किया कि जल प्रवाहित होने लगा ।

उसी प्रकार मानव का जो धर्म है, जो कुछ उसको निसर्ग की ओर से मिला है, उसका समग्रता में विकास उपलब्ध करना कोई बहुत बड़े पुरुषार्थ की बात नहीं है । यह तो होना ही चाहिये । न करें तो दोष है । करें तो उसमें कोई विशेषता नहीं है ।

आगे इससे बढ़ें, तो पता चलेगा कि सुख की खोज भी अध्यात्म नहीं है । जाने क्यों, सनातन काल से यह भ्रम संसार के अनेक देशों में फैला हुआ है कि मानव-जीवन का प्रयोजन सुख की खोज है, सुख की प्राप्ति है । सुख तो एक संवेदना है । शरीर को, मन को अनुकूल संवेदना मिले तो उसे सुख कहते हैं । प्रतिकूल संवेदना हो उसको

दुःख कहते हैं, सुख और दुःख न जीवन के तथ्य हैं, न उनकी खोज जीवन का प्रयोजन है । निषेध की बात नहीं कर रही हूँ कि सुख का निषेध किया जाय । बिलकुल नहीं । शरीर के विकास के लिये, मन के विकास के लिये, बुद्धि के विकास के लिये साधन उपलब्ध कर देना, मङ्गलमय और सुन्दर साधनों से जीवन को अलंकृत कर देना, यह तो धर्म में निहित है । उसका समावेश धर्म में है । लेकिन इन साधनों से सजा हुआ जीवन आध्यात्मिक जीवन है, यह हम न मानें । नहीं तो, आज जहाँ भौतिक जीवन शारीरिक और मानसिक सुखों की एक चरम सीमा पर पहुँच चुका है, ऐसे देशों में फिर जीवन स्वस्थ होता, आन्तरिक स्वस्थता होती, और सामूहिक जीवन में भी स्वस्थता का संचार होता । लेकिन वह होता हुआ नज़र नहीं आता है, इसका कारण यह है कि शरीर को सुख प्राप्त करा देना विज्ञान की सहायता से, यह तो धर्म है । यह न करेंगे तो दोष है । जिस समाज में शारीरिक सुखों का निषेध किया जाता होगा वह समाज अधार्मिक है । शारीरिक और मानसिक आवश्यकताओं की जहाँ निन्दा होती होगी, उन्होंने जीवन को समग्रता में देखा नहीं है । जीवन में निषेध के लिये अवकाश है ही नहीं । जीवन में किसी चीज़ की ओर से विमुख होने के लिये गुंजायश है ही नहीं । अभिमुखता जीवन है, विमुखता मौत है, मृत्यु है । लेकिन यदि यह मान लिया जाय कि सुख की उपलब्धि ही अध्यात्म है, तो फिर हम एक बहुत बड़े भ्रम में फँस जायेंगे ।

सुख का साधन जुटाते-जुटाते ज़िन्दगी निकल जायेगी, जीने का आनन्द उपलब्ध नहीं होगा । इसलिये दूसरा विषय चिन्तन के लिये आपके साथ छोड़ देना चाहते हैं कि जीवन का प्रयोजन सुख नहीं है । शारीरिक और मानसिक आवश्यकता है, और उसकी वैज्ञानिक, सुसंस्कृत पूर्ति हो, यह धर्म तो है - लेकिन वह जीवन का प्रयोजन नहीं ।

सुख की जो आवश्यकता है, उसकी पूर्ति समुदाय में रहते हुए, समाज में रहते हुए किस प्रकार मनुष्य करता है, इसी पर उसका civilisation, इसी पर उसका culture है । यानी, जिस समाज में मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति एक दूसरे के सहयोग में से की जाती है, वह समाज सुसंस्कृत होगा । और जिस समाज में कुछ समूहों के लिये सुखसाधन उपलब्ध हैं और कुछ के लिये नहीं हैं - एक दूसरे का शोषण

करके जिसमें पूर्ति की जाती है वह असभ्य समाज होगा । Uncivilised होगा, barbarian होगा - जिसमें आज दुनिया जी रही है । लेकिन, यह जो धर्म है, समाज में रहते हुए जिसका पालन करना अनिवार्य है, जो संस्कृति की, सभ्यता की जड़ है, वह अध्यात्म नहीं हैं । यह जब तक समझ में नहीं आयेगा तब तक मनुष्य धर्म को अध्यात्म समझेगा । धर्म और नीति, ये जहां एक से अधिक व्यक्ति उपस्थित हैं, वहाँ निर्माण हो जाते हैं । अकेला एक व्यक्ति रहता हो तो नीति शब्द का कोई अर्थ नहीं । Morality is a thing which comes into being as soon as there are more human beings than one. एकान्त में नीति के लिये अवकाश नहीं । ये सब व्यक्तिगत धर्म हैं, सामाजिक धर्म हैं । लेकिन इनको, मेहरबानी करके आप Spiritual enquiry आध्यात्मिक जिज्ञासा, मत मानियेगा । यह सब इसलिए कह रही हूँ कि लोग समझने लगे हैं कि हम सब आध्यात्मिक जिज्ञासा रखने वाले हैं, प्रवचन सुनने जाते हैं और सत्संग करने जाते हैं । लेकिन भीतर जिज्ञासा का जन्म न हुआ हो, धर्म में, नीति में और सुख में ही उनकी आंतरिक परितृप्ति होती हो, तो सत्संग और प्रवचन सुनना बेकार जायेगा । जिसको भूख ही नहीं है उसके सामने पंचपकवानों का थाल रखने पर भी वह खा नहीं पायेगा, वह खायेगा तो अपने साथ भी अन्याय, और जो परोसा हुआ भोजन है उसके साथ भी अन्याय ।

इसलिये पहली खोज यह करनी चाहिये कि भाई, मुझे अध्यात्म की ज़रूरत है जीवन में ? मुझे जीवन के लिये यह जो एक नया आयाम है - a new dimension of life which is neither biological, nor psychological, nor intellectual - एक ऐसा जीवन का आयाम जो शारीरिक, मानसिक या बौद्धिक नहीं है, इस आयाम की ज़रूरत है ? या मैं तृप्त हूँ ? स्वस्थ सुन्दर शरीर है, हृष्टपुष्ट है, सुख के साधन उपलब्ध हैं, परिवार है, समाज में प्रतिष्ठा है, पैसा है - इसमें मैं तृप्त हूँ ? या इन सब के बीच रहते हुए भी मुझे असंतोष है ?

असंतोष का वरदान न मिला हो, ब्रह्म-जिज्ञासा, अध्यात्मजिज्ञासा का वरदान न मिला हो, तो एक नहीं सेंकड़ों आत्मोपलब्ध व्यक्तियों के प्रवचन सुनेंगे - शब्द के और विचार के प्रवाह में तैरने का मज़ा मिलेगा, यह एक सूक्ष्म प्रकार का उपभोग है - Inexpensive indulgence; लेकिन है । तो, जब सोचा गया कि कुछ मित्र जो

यहाँ रहते हैं, उसके साथ बैठेंगे दो तीन दिन, और विचार करेंगे, तो हृदय में यह प्रेरणा उठी कि पहले पूछूँ कि अध्यात्म की आप को ज़रूरत है ? क्या ज़रूरत है ? क्यों ज़रूरत है ? उसके बिना नहीं जी सकते हैं ऐसी कोई तड़प है भीतर ? बेचैनी है ? ऐसी बेचैनी, जैसी किसी प्रेमी को अपने प्रेमिका के विरह में होती हो, इतनी बेचैनी है ? किसी बालक को अपनी माँ से अलग होने पर होती हो, इतनी भी बेचैनी है ? कि बेचैनी नहीं है, असंतोष नहीं है, लेकिन ऊब आते हैं ऐन्द्रिय सुखों से, तो उस उद्वेग में से कभी-कभी झाँकने की इच्छा होती है कि और भी कुछ है ? - उद्वेग में से या असफलता में से उठनेवाली यह जो इच्छा है - यह जिज्ञासा नहीं है। वह इच्छा बुरी नहीं है - हो सकता है कि उस इच्छा में से जिज्ञासा का जन्म भी हो। लेकिन सफलता के झूले पर झूलते हुए अगर असफलता का धक्का लग गया तो फिर उसके विरत हो गये और देखने लग गये कि और कोई सुख है ? ऐन्द्रिय सुखों की जो सीमा है, उस सीमा पर पहुँच गये हैं। अब ऐन्द्रिय सुखों से कुछ आराम नहीं मिलता है तो इन्द्रियों के परे कोई सुख है ? लेकिन चाहिये सुख ही। यह जिज्ञासा नहीं है।

ब्रह्म-जिज्ञासाया अध्यात्म-जिज्ञासा एक ऐसी पवित्र अग्नि है, जो सारे जीवन के आन्तर-बाह्य को जला देती है। मैं जब हज़ारों लोगों को प्रवचनों में जाते हुए देखती हूँ, मन्दिरों में जाते हुए देखती हूँ, मस्जिदो में नमाज पढ़ते हुए देखती हूँ तो मैं भीतर ही भीतर काँप उठती हूँ कि हे प्रभो, ये सब लोग अपने जीवन के प्रति क्या खेल कर रहे हैं ! ये खेल कर रहे हैं; क्योंकि एक बार उसका स्पर्श हो जाय, तो सवाल उठते हैं कि - सारी अनेकता के भीतर से कोई एकता प्रवाहित हो रही है, या नहीं ? इन इन्द्रियों को विषय के संसर्ग में से जो सुख मिलता है, इस सुख का जन्म कहाँ है, विषय में है या इन्द्रिय में है ? इन इन्द्रियों का संचालन करने वाली ताकत कौन-सी है ? जिसके सहारे यह श्वास लिया जाता है वह श्वासोच्छ्वास की क्रिया करने वाली शक्ति कौन-सी है ? यह ऊर्जा कौन-सी है ? यह ऊर्जा कौन सी है जो अणु-रेणु में प्रकाशित है - जिसकी झलक देखते हैं; ओत-प्रोत है संसार जिसके तेज से, वह ऊर्जा कौन-सी ? वह शक्ति कौन-सी ? एक बार यदि ये प्रश्न उठें तो इन प्रश्नों का उठना ही आपके जीवन का जो status quo होगा, उसको उलट-पुछट कर फेंक देगा। इससे बहुत बचकर रहना चाहिए ! यह हो नहीं सकता कि सत्य की जिज्ञासा हृदय में जागृत हो

और जैसा जीवन जिज्ञासा के जन्म से पहले चल रहा था वैसा ही चले, असम्भव है। हो ही नहीं सकता। और यदि वह होता है तो मान लेना चाहिए कि यह 'जिज्ञासा' नहीं है। यह समस्त प्राणों की पुकार नहीं है। यह समस्त व्यक्तित्व की भूख नहीं है। एक बौद्धिक या मानसिक अनुरंजन का प्रकार है।

तो, उपभोग की आकांक्षा, मानसिक या बौद्धिक उपभोग की आकांक्षा एक वस्तु है और जिज्ञासा दूसरी वस्तु है। नये-नये विचारों की, बुद्धि के लिये उतनी ही लालसा हो सकती है, जितनी किसी आज कल के लड़के-लड़की को नये-नये कपड़ों की हो! वस्त्रों का शौक और विचारों का शौक, - उसमें बहुत अन्तर नहीं है। धन का संग्रह, अलंकारों का संग्रह, वस्त्रों का संग्रह, नये-नये फ़ैशन के साथ चलने का आग्रह और नये-नये विचारों को खोजने का और उनके संग्रह का बुद्धि का आग्रह -इसके पीछे जो चित्त है, उस चित्त की दशा में बहुत फ़र्क नहीं है।

ख़तरनाक है वह चीज़ क्योंकि स्थूल का संग्रह तो एक बार छूट भी जायगा, सूक्ष्म का संग्रह ऐसा चिपक जाता है, कि चमड़ी उधेड़नी पड़ती है, तब वह निकलता है। क्योंकि इस विचारों के संग्रह में से जो एक व्यक्तित्व बनता है, जो personality बनती है, उसको हम अपना स्वरूप समझने लगते हैं। कोई कितना भी नादान हो, वस्त्रों को 'मैं वस्त्र हूँ' यह तो नहीं मानेगा; 'मैं धन हूँ' जह तोनहीं मानेगा; 'मैं मकान हूँ' यह तो नहीं मानेगा।

मकान छूट सकते हैं, धन छूट सकता है -लेकिन विचार और भावना, इनका जो संग्रह है, यह ऐसा चिपक जाता है, जैसे आपकी हड्डियों पर लपेटा हुआ चमड़ी का जो वस्त्र है। हाड़ को, मांस को अलग नहीं कर सकते हैं, वैसे ही फिर विचार के संग्रह को अलग नहीं कर सकते हैं। मान लिया जाता है कि यही मेरा व्यक्तित्व है और personality को अपना स्वरूप समझा जाता है। संस्कारों का संग्रह, विचारों का संग्रह, भावनाओं का संग्रह, संतों के जीवन चरितों में उनकी जो अनुभूतियाँ विश्वास में आती हैं - उन अनुभूतियों का संग्रह-यह अध्यात्म नहीं हैं। यह संग्रह बड़ा घातक हो सकता है। इसलिये मैंने कहा कि जिस प्रकार शारीरिक उपभोग हैं - यानी श्रवण हैं, श्रुति है - आपका घ्राण है, आपके नेत्र हैं - ये जिस प्रकार उपभोग में लुब्ध हो सकते हैं - उसी प्रकार आपका मन और बुद्धि भी उपभोग में लग सकते हैं और गत

दो-एक शताब्दियों में मनुष्य ने यही समझा कि मैं पशु-योनि से भिन्न हूँ - क्योंकि मैं सोच सकता हूं। मेरे बुद्धि है, मेरे मन है, इसलिये बुद्धिको संस्कारों से भर देने में मानव ने जीवन की सार्थकता मानी।

यह नहीं कह रही हूँ कि उसको प्राकृत रखा जाय। संस्कार तो जीवन का सौन्दर्य है। अनाज पर संस्कार करके अन्न बनाते हैं, आहार करते हैं। कोई नहीं कहेगा कि उसे कच्चा ही चबाते चलो। यह तो ठीक है - वह तो धर्म है। लेकिन संस्कार के संग्रह को यदि उपभोग का विषय बनाया जाय! इस विषय को आप ज़रूर गहराई से सोचें और देखे कि संस्कार भी उपभोग का विषय बन सकता है या नहीं, नये-नये संस्कार के जो नमूने हैं, Patterns of conditioning, इन संस्कारों की जो पद्धति है, संस्कार में से ही विचार की पद्धति और जीवन की पद्धति उद्‌भुत होती है, निर्मित होती है - तो इन पद्धतियों को भी विलास का, उपभोग का, शृङ्गार का विषय बनाया जा सकता है या नहीं, और उसके विलास में हम अपने जीवन को किस प्रकार व्यतीत करते हैं ? फिर कभी हमको वैष्णव घर में जन्म हुआ है - वह संस्कार है; जैन घर में जन्म हुआ है - वह संस्कार है; शैव घर में पैदा हुए हैं - संस्कार है, - शरीर पर संस्कार है, मन पर है, बुद्धि पर है, उसमें से जीवनपद्धति बनी है, विचार की एक प्रणालिका बनी है - और जिये जा रहे हैं! 'जिये' जा रहे हैं!

उससे ऊब गये, कुछ पद्धति नई लगी, उसके पीछे दौड़े। संस्कारों को तोड़ना, मरोड़ना, फोड़ देना, फाड़ देना - यह भी एक पद्धति जीवन की है। फिर उसके संस्कार! यानी, किसी भी चीज़ के प्रति आस्था से न देखा जाय, आदर से न देखा जाय - यह भी एक सोचने की पद्धति बन सकती है।

भाई, आग्रह यदि विकृति है, तो निषेध भी विकृति है। आग्रह और निषेध ये दोनों एक ही सिक्के के दो बाजू हैं। जहाँ जिस किसी चीज़ का निषेध होगा, और निषेध हमारे जीवन की भूमिका बन जायगी, - It will become a stand in life, तो मैं समझती हूँ - आग्रह में से एक dogma आता है तो निषेध में से भी dogma का जन्म होता है - संप्रदाय का जन्म होता है और ऐसे निषेधात्मक संप्रदाय भारत के लिये नये नहीं हैं। निषेध का आचार्य चार्वाक तो था ही और इन सबका, आस्तिकों का, नास्तिकों का, आग्रहियों का, सह-अवस्थान इस विशाल देश में चलता

आया है। तो, निषेध का संप्रदाय भी बनाओगे तो ठीक है, चलेगा। लेकिन यह भी विचारप्रणाली और जीवन-पद्धति बनेगी और अध्यात्म है जीवन को किसी भी पद्धति में न बाँधने का साहस। अध्यात्म है जीवन को किसी भी प्रणालिका में आबद्ध न करने का साहस। अध्यात्म है जीवन की गति में, उसकी लय में अपने अहंकार का विलय करके गति में विलीन हो जाना - समरस हो जाना। यह भी भूल से कहा। जीवन की गति बन जाना ही अध्यात्म है।

धर्मों में से पद्धतियों का जन्म हो सकता है और सामुदायिक जीवन के लिए कुछ पद्धतियों का एक हद तक स्वीकार आवश्यक, अनिवार्य भी है। सामाजिक जीवन है, आर्थिक जीवन है, राजनैतिक जीवन है; पद्धतियों का स्वीकार किये बिना सामाजिक जीवन असंभव हो जायेगा। उसको Morality, Ethics कहिये, उसको Religion कहिये। उनका स्वीकार करना पड़ता है। क्योंकि मानव-समाज कोई पशुओं का गिरोह तो नहीं है। मानव-समाज कोई पक्षीयों का झुंड तो नहीं है। इसमें लेना है, इसमें देना है; इसमें साथ जीना है; साथ रोना है, साथ हँसना है। इसमें एक-दूसरे की वेदना से झुलस जाना है और एक-दूसरे के आनन्द से आनन्दित होना है। यह सहजीवन है, Sharing है। वहीं तो समाज है। वहाँ पद्धतियों का स्वीकार एक मर्यादा तक अनिवार्य है। लेकिन अध्यात्म के क्षेत्र में, अध्यात्म के आयाम में पद्धतियों को, प्रणालिकाओं को, यमों को, नियमों को, धारणाओं को, आग्रह को, निषेध को, अवकाश ही नहीं है।

इसलिये मैंने कहा कि आध्यात्मिक जिज्ञासा के साथ खेलना नहीं चाहिए। यदि तृप्ति है; शारीरिक, भौतिक, बौद्धिक, मानसिक उपभोग में तृप्तिहै तो प्रामाणिकता से कहना चाहिये कि हमको अध्यात्म की जरूरत नहीं है। यह सत्य क्या, यह शिवम् क्या, सुन्दरम् क्या ? जीवन की जड़में कौन-सा तत्त्व है ? यह जानने की जरूरत नहीं- यह कह देना चाहिए और प्रामाणिकता से जीना चाहिए।

हो सकता है कि वह प्रामाणिकता एक मुक़ाम पर पहुँचा दे जहाँ जिज्ञासा का भीतर जन्म भी हो। लेकिन प्रामाणिकता न हो तो आध्यात्मिक जिज्ञासा के नकाब और बुर्क़े ऊपर से ओढ़ने से पाखण्ड का जन्म होगा, दम्भ का जन्म होगा। भीतर व्यक्तित्व छिन्न-विछिन्न हो जायेगा। यह अपने आपको मनाने की इच्छा होगी कि

मेरे भीतर सत्य की जिज्ञासा है; दूसरों को दिखाने की इच्छा होगी कि मेरे भीतर सत्य की जिज्ञासा है। जिज्ञासा होगी नहीं। एक दम्भ, एक पाखण्ड ऐसा घेर लेगा व्यक्तित्व को, और आँखें खोलकर, हम अपने आपको देखें, तो पता चलेगा कि हम कहाँ तक पाखण्डी पहले ही बन चुके हैं। A spiritual enquiry also becomes a fashion of the day. May God save you from such an enquiry.

तो अपने आपको पूछना चाहिए कि मुझे जीवन में आवश्यकता किस बात की है? जिसको फुर्सत है आध्यात्मिक जिज्ञासा क्या है, यह देखने के लिये; और उस जिज्ञासा की पूर्ति के लिये जो परिश्रम करना पड़ेगा उस परिश्रम के लिये किसकी तैयारी है? समाज में चार कौड़ी नहीं मिलती हैं परिश्रम के बिना। लेकिन अध्यात्म में तो बिना परिश्रम के हम चाहते हैं।

जो मानते हों कि आत्मा की उपलब्धि, सत्य की उपलब्धि, परिश्रम के बिना होती है, तो जहाँ तक मेरा देखना है, जितना कि जीवन को देख चुकी हूँ और जी चुकी हूँ, उसमें यह नहीं पाया कि परिश्रम के बिना भी आत्मोपलब्धि होती है। इसमें कोई shortcut नहीं है, Formula and blue-prints नहीं हैं जो हाथ में दिये जायें आपके कि 'ये लो, कुछ जोड़ है, ले लो।' नहीं हो सकता है। यहा ऐसा आदान-प्रदान भी नहीं है कि गुरु बनकर शिष्य को कुछ दिया जाय।

हाँ यह हो सकता है कि आत्मोपलब्ध व्यक्ति के सहवास में यदि जिज्ञासु जाय तो उस व्यक्ति के भीतर जो आनन्द की हिलोलें उठती रहती हैं, लहरें उठती रहती हैं, उनके तुषार जिज्ञासु तक पहुँच जायें! बगीचे में फूल हैं और आप यहाँ बैठे हैं और फूल की सुगन्ध आप तक पहुँचती है तो आत्मोपलब्ध व्यक्ति के सहवास में बैठ कर उसके आनन्द, शान्ति और प्रसाद के तुषार आपको क्यों न मिलेंगे? जरूर मिलेंगे। लेकिन जैसे शास्त्रीय संगीत में यदि राग का ज्ञान न हो, राग का या उस रागिणी का जो व्यक्तित्व है, उसकी जो खुमारी है, उसकी जो छटायें हैं, nuances हैं, उनसे परिचित न हो तो हमारे लिये तीव्र स्वर क्या और कोमल स्वर क्या, और मुलतानी राग क्या या तोडी राग क्या, भैरवी क्या, नीलाम्बरी क्या, हमारे लिये सब समान है।

सुनने वाले के जो कान हैं, वे खूबियों को पकड़ लेंगे । आप भी बैठे हैं, वह व्यक्ति भी बैठा है । हमारे लिये सितार भी बजती रहे कि बीन बजे, या तानपुरा बजे, हारमोनियम बजे, हमारे कान पकड़ नहीं पायेंगे ।

इसी प्रकार जिज्ञासा की जागृति जिसके हृदय में, अन्त:स्तल में हो चुकी है ऐसा व्यक्ति यदि आत्मोपलब्ध व्यक्ति के सहवास में हो, तो तुषार पकड़ लेगा । जो उन्मेष है, उसके उसको लाभ ज़रूर हो सकता है - और हो सकता है कि जिज्ञासा का जन्म हो तो उसकी गति बढ़ जाये - Accelerating the speed - ।

लेकिन अध्यात्म क्षेत्र में ऐसा आदान-प्रदान नहीं है कि एक वस्तु उठाई और आपके हाथ में रख दी । यह नहीं हो सकता । यहाँ उधारी का सौदा नहीं । न जिज्ञासा उधार ली जा सकती है, न जिज्ञासा की पूर्ति उधार दी जा सकती है । सत्य की अनुभूतियों का आदान-प्रदान नहीं है । खरीद और बिक्री भी नहीं है । यह तो हरेक को अपने ही भीतर खोजते हुए अनुभूति तक पहुँचने की चीज़ है । और दुर्भाग्य यह है कि उसके लिये हमारी तैयारी नहीं है ।

उपजीविका के लिये धनोपार्जन करना है, २४ घण्टे में से १२ घण्टे काम करना पड़े तो करेंगे । वह Compulsion है न ! अनिवार्यता है न ! नहीं कमायेंगे तो कल अन्न नहीं मिलेगा । मकान का किराया नहीं चुकाया जायेगा । इसलिये उसमें हम समय देंगे । परिवार है, परिवार के लिये परिश्रम करना है,परिश्रम करेंगे । समाज है, समाज में रहना है, उसकी courtesies हैं, social calls हैं, उसके रस्म हैं, रिवाज हैं - उनका भी पालन होगा; समाज में रहना है, नहीं तो समाज क्या कहेगा ? लेकिन सत्य की कोई जिज्ञासा न रखें तो उसको कोई क्या करेगा ? उसकी न प्रतिष्ठा घटती है, कोई आपत्ति आती नहीं, कोई विपत्ति आती नहीं, उसके पीछे कोई external compulsion है ही नहीं । इसलिये होता यह है कि सब चीज़ों में से समय मिले तो फिर अध्यात्म की बात होगी, तो फिर जिज्ञासा के लिये समय दिया जायगा । कहते हैं न कि क्या करें, समय नहीं मिलता है । वह तो ठीक है, एक घण्टा जाकर प्रवचन सुन लिया । लेकिन बाकी हमको समय नहीं मिलता । समय नहीं मिलता है, इसीका मतलब यह है कि भीतर उसकी भूख नहीं है ।

मैं दोष नहीं दे रही हूँ । जिन के भीतर जिज्ञासा की जागृति न हुई हो, उनको दोष नहीं दे रही हूँ । फिर उनको धर्म, नीति, सामाजिक प्रतिष्ठा-इन से संतुष्ट होकर जीना चाहिए, और कहना चाहियेकि भाई, उस रास्ते हम नहीं जायेंगे । और फिर ऐसे अपने दैनिक जीवन में असंतोष पैदा करने वाले व्यक्तियों के पास आना ही नहीं चाहिये, फटकना ही नहीं चाहिये । आनन्द में रहना चाहिये । लेकिन जायेंगे, सुनेंगे, ग्रन्थ भी पढ़ेंगे, और उसके लिये समय नहीं, परिश्रम की तैय्यारी नहीं - यह चलता नहीं ।

यह सब क्यों कह रही हूँ ? कि हिन्दुस्तान में जब से आयी हूँ; (अब डेढ़ साल होने आया), तो देख रही हूँ कि हज़ारों लोग बड़े से बड़े आध्यात्मिक प्रवचनों में, सत्संगों में, शिबिरों में जाकर बैठते हैं । If spiritual enquiry also becomes a vulgar commercialised proposition - मैं समझती हूँ फिर भी दु:ख का कोई अन्त नहीं, खेद का कोई पार नहीं रह जायेगा । यह vulgarisation है ।

यह नहीं कह रही हूँ कि शिबिर न हों, प्रवचन न हों । लेकिन वहाँ तक ही, उसके उपभोग तक, यदि रुक जाना हो, सुनने को अच्छे विचार मिले अच्छे व्यक्ति के. उसको देखने को मिला है; वहाँ तक ही यदि रुक जाना है तो एक नये प्रकारका पाखंड, एक नये प्रकारका दंभ समाज में फैल रहा है । मंदिरो में जाने वालों को, मस्जिद में जानेवालों को आप कहते हैं कि पाखंडी हैं, भक्ति नहीं है भीतर । वहाँ जाकर घर की, संसार की बातें करते हैं । और नये प्रकार के ये जो प्रचार चलते हैं उनमें जाने वाले कम पाखंडी हैं ? यह एक सवाल मैं आप के सामने चिंतन के लिये रखती हूँ । क्योंकि आप मेरे स्नेही परिवार के लोग हैं, अंतरंग मित्र हैं । मैं आध्यात्मिक विषय पर बोलती नहीं हूँ, क्योंकि अध्यात्म एक नितान्त inter-personal communication का एक व्यक्तिगत विषय है, उसकी ऐसी पवित्रता है । लोग आजकल गोपनीयता को भी पाप समझने लगे हैं । वह तो व्यक्तियों को एक-दूसरे के सहवास में सहज उपलब्ध होने वाली व ऐसी पवित्र चीज़ है जिसका broadcasting नहीं हो सकता । इसलिये मैं उस पर बोलती नहीं हूँ । लेकिन मेरे कुछ मित्रों ने कहा कि नहीं, सोचिये तो सही, बोलिये तो सही । मैंने कहा, भाई,

दु:ख होगा आप लोगों को, लेकिन एक नये प्रकार के दंभ, एक नये प्रकार का पाखंड जो समाज में फैल रहा है - वह कुछ चित्त को चिंतित कर देता है कि यह क्या हो रहा है ?

तो अध्यात्म क्या है यह देखने के लिये हमने पहले धर्म से उसकी जो नितान्त भिन्नता है, उसको देखा। व्यक्तिगत और सामाजिक धर्म से वह किस प्रकार भिन्न है, इतना ही नहीं - नया परिमाण है जीवन का नया dimension है, यह आज हमने देखा। और यह देखा कि जो जिज्ञासा सत्य की जिज्ञासा है, यह जिज्ञासा एक बड़ी दाहक वस्तु है।

आप देखिये। जितने लोग इस सत्य की खोज में लगे, क्या हुआ उनका ? सुख की खोज में लगने वाला कोई खतरे में नहीं। लेकिन सत्य की खोज में लगने वाला जो व्यक्ति है - आज तक के दृष्टांत देख लीजिये आप जीवन में। चाहे वह गौतम बुद्ध हो, चाहे ईसा हो, चाहे शङ्कराचार्य हो, चाहे महावीर हो, चाहे रामकृष्ण परमहंस हो, चाहे विवेकानंद हो, चाहे रामतीर्थ हो, चाहे श्रीमद्‌राजचंद्र हो, चाहे अखा हो, चाहे ज्ञानेश्वर हो। मैं नाम कितनों के दूं ? कई हो गये हैं सत्यशोधक। लेकिन आपने देखा कि उस सत्य की जिज्ञासा ने उनके जीवन के साथ क्या किया ? वह अखा फिर सुनार नहीं रह सका। और श्रीमद् राजचन्द्र का व्यापार नहीं रह सका। नरेन्द्रनाथ दत्त की वकालत नहीं रह सकी।

मैंने कहा - वह जीवन का नया आयाम है - एक नया परिमाण है। आप यह समझते हैं कि हम दोनों में समझौता कर लेंगे; शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक उपभोग का क्षेत्र और यह आध्यात्मिक क्षेत्र, दोनों में हम समझौता करेंगे; हम दोनों में एक ऐसा समन्वय करेंगे जो आजतक नहीं हुआ है। वह हम करेंगे ! God bless you ! कीजिये; पर होता नहीं। It is an all-consuming flame; it is a passion which will consume your total personality; it will take away from you everything that you have created. जो शतकानुशतक personality को, व्यक्तित्व को आप बनाते आये हैं उसको चूर-चूर कर देगा। यह चेतावनी देती हूं मैं।

हाँ, इस अग्नि की दाहकता में से होकर, गुज़र कर, फिर जीने का साहस हो तो फिर जो स्वरूप है, उस स्वरूप में प्रतिष्ठा होगी । लेकिन इसमें से गुज़रे बिना नहीं होगी । शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक-सभी प्रकार का जो status quo है वह तो maintain होना चाहिये - status quo maintain करते हुए - (यथापूर्व बनाये रखते हुए) ।

मैं समझती हूँ कि यह एक, incompatibles को, जो एक साथ नहीं रह सकते हैं ऐसे तत्त्वों को, एक साथ लाने की कोशिश है । ऐसा क्यों होता है status quo maintain क्यों नहीं होता ? यथापूर्व को बनाये क्यों नहीं रखा जाता ? क्योंकि जीवन की सत्य की खोज के लिये अपने आप को चीर-फाड़ कर उसका विश्लेषण करना होता है । इसलिये पहले उसमें संहार आ जाता है । धारणा का प्रयत्न नहीं, विश्लेषण का प्रयत्न करना पड़ता है । खोदना पड़ता है । खोजना पड़ता है कि यह शरीर क्या है, ये इन्द्रियाँ क्या हैं, फिर श्वास के पीछे जा कर देखना पड़ता है कि श्वास कहाँ से उठता है, नीचे जाकर देखना पड़ता है कि श्वास कहाँ जाकर समा जाता है; वह कुंड कहाँ है जहाँ यह हम inhaling exhaling करते हैं । वह जाकर जहाँ समाता है, उस कुण्ड में जो शक्ति है वहण कुण्डलिनी क्या है; उसका संचार कैसा होता है; ये नाड़िया क्या हैं, यह मज्जा क्या है - तोड़फोड़ करके सबको देखना पड़ता है । हाथों से नहीं तोड़फोड़ करनी पड़ती है । समस्त मानसिक क्रियाओं को शांत होने देना होता है - और फिर मन से परे जो एक अन्धकार का सुन्दर साम्राज्य है उस साम्राज्य में संचार करना होता है । हम तो मानसिक क्रियाओं को शांत होने देने से घबराते हैं । मानसिक क्रियाओं के शांत होने को मन की मौत समझ लेते हैं । घबरा जाते हैं । मृत्यु की मङ्गलता को न हमने देखा - न समझा है । इसलिये मन की मौत ! - कल्पना से ही डर जाते हैं ।

तो, धर्म में मन की सम्यक् करनी होती है और अध्यात्म में मानसिक समस्त क्रियाओं को शांत होने देना पड़ता है । देखिये, कैसे भिन्न आयाम हैं ।

बुद्धि के सम्यक् दर्शन और शरीर से सम्यक् वर्तन धर्म है और बुद्धि की जो घृति है, स्मृति है, मेधा है, प्रज्ञा है - ये सारी जो उसकी कलाएं हैं, इन कलाओं को समेट कर बैठना, यह अध्यात्म है । परस्पर विरोधी हैं या नहीं ? आप देख लीजिये । तो

जिस प्रकार इन कलाओं को बिखर देने में शक्ति का एक प्रकार से व्यय होता है, उसी प्रकार समेट लेने में भी शक्ति का व्यय होता है - दूसरी प्रकार से होता है। फिर उस समेटी हुई शक्ति में प्रतिष्ठित होकर जीना, उसकी जो उत्कटता है, उसकी जो गहराई है, उसको बरदाश्त करना, उसके लिये अपने ज्ञानतन्तुओं को समर्थ बनाना, यह सारा अध्यात्म का क्षेत्र है जिसको साधना कहा जाता है। तो, फिर आज का जो विहार है, आज का जो व्यवहार है, इस सबसे पहले तो हट जाना पड़ता है।

लोग उसको बेकार निवृत्ति नाम देते हैं। मैं निवृत्ति शब्द से उतना ही भय खाती हूँ जितना प्रवृत्ति (शब्द) से। प्रवृत्ति और निवृत्ति ! अजीब, विचित्र !! गति में प्रवृत्ति भी नहीं है, और निवृत्ति भी नहीं है। अब स्थिति को निवृत्ति कहना हो और गति को प्रवृत्ति कहना हो तो मैं लाचार हूँ। कह लीजिये। जीवन में तो ऐसी गति है, ऐसी स्थिति है, infinite motion है, और infinite motion में और स्थिति में कोई फ़र्क नहीं है। इसलिए मैं यह कह रही थी कि अध्यात्म की खोज में एक नये परिमाण में, जीवन के नये आयाम में प्रवेश करना होता है। इसको खूब समझ लेना चाहिए। यह जो अंतर्यात्रा है - अंतर्यात्रा इसलिए कि हम इन्द्रियाभिमुख हैं, अपने को अंतर्मुख बनाना है, इतनी ही यात्रा है। नहीं तो, यात्रा शब्द भी बहुत सार्थक नहीं है यहाँ। उतना भी प्रयोजन नहीं है। लेकिन करूँ क्या ? शब्द अपूर्ण है।

शब्द एकदेशीय है। शब्द जिस ओर इंगित कर सकता है वह सत्य का सिर्फ एक अंश है। कोई शब्द नहीं है जो सत्यकी पूर्णताका संकेत आपके सामने रख सके। शब्द का जन्म जहाँ से होता है, वहाँ पूर्णता है। लेकिन अभिव्यक्ति आंशिक होती ही है। अभिव्यक्ति एकदेशीय होती ही है। इसलिए मौन में सार्वदेशिकता है और वाग्व्यापार में आंशिकता है। इसलिए मौन में चेतनाकी न सिर्फ उष्मा है, लेकिन चेतना की समग्रता की झलक है। और शब्द चाहे कितने ही निर्दोष हों, चिंतन चाहे कितना ही तर्कशुद्ध हो, फिर भी अपूर्णता की बू से वाग्व्यापार भर जाता है।

ये प्रवचन नहीं हैं और ये कोई शिबिर भी नहीं हैं। यह मित्रों का एक प्रामाणिक सहचिंतन है। सोचा यह गया है और मुझसे कहा यह गया है कि सुबह आप अपने

निवेदन को रखिये, और रात को बैठ कर चर्चा होगी। जो यहाँ पर कुछ अपरिचित, मेरे लिए अपरिचित-व्यक्ति आये हैं, उनको मैं हृदयपूर्वक धन्यवाद देती हूँ कि अहमदाबाद के हमारे स्नेह परिवार में आप भी शामिल हो गये।

यह किसी संत का, मुनिका, ऋषिका प्रवचन नहीं है। एक बहन का, अपने भाई-बहनों के साथ बैठकर, आंतरिक व्यथा और वेदना का बाँटना है। अध्यात्म की पवित्रता को, उसकी निगूढ़ता को जब कोई एक भद्दी-सी vulgar level पर लाने की चेष्टा करता है, प्रयत्न करता है, तो दु:ख होता है। इस देश में राजनैतिक और आर्थिक या सामाजिक परिस्थिति जितनी खेदजनक है, उतनी ही अध्यात्म के नाम पर और धर्म के नाम पर चलने वाली जीवनपद्धति खेदजनक है, लज्जाजनक है। उस लज्जा को, उस खेद को आपके साथ बाँट रही हूँ और कम-से-कम हम अपने जीवन को उस दंभ से, उस अप्रामाणिकता से बचा सकें - इतनी ही एक साथ बैठकर कोशिश करनी है।

अंत में, इतना ही कह दूँ कि अध्यात्म यानी सत्य की उपलब्धि। अध्यात्म यानी स्वरूप में प्रतिष्ठा। इसमें आग्रह नहीं, निषेध नहीं, भागना नहीं, हट जाना नहीं, और यह कुछ चंद व्यक्तिओं की monopoly भी नहीं। यह मानवजाति के लिये है; गृहस्थों के लिए सम्भव नहीं; तो आपके सामने एक नितान्त सामान्य व्यक्ति ही बैठी है जिसने अग्नि में जलना भी देखा है, जलने का मज़ा भी लूटा है, और जलने के उस पार जो जीवन है, मन के और बुद्धि के परे जो चेतना का साम्राज्य है उसको भी देखा है। जो कहता है कि यह सामान्य व्यक्तिका काम नहीं, वह आपको ठग रहा है। यह मानवमात्र का अधिकार है कि धर्म से परे जाकर अध्यात्म के क्षेत्र में वह प्रवेश करे।

स्वरूप में प्रतिष्ठा होने पर लाभ क्या है? स्वरूप में प्रतिष्ठा होने पर लाभ यह है - (लाभ और नुकसान की भाषा यहां तो, गुजरात में तो, बोलनी ही चाहिए! - तो लाभ यह है) कि स्वरूप में प्रतिष्ठा होने के बाद क्रियाओं का अन्त होकर स्वायत्तकर्म का प्रारम्भ होता है। स्वरूप में प्रतिष्ठा होने पर लाभ क्या है? जो आंशिकता है दर्शन की और वर्तन की, वह समाप्त होने पर हम समग्रता में ओत-प्रोत हो जाते हैं। स्वरूप में प्रतिष्ठा होने पर हम क्या हैं? सुख और दु:ख, सफलता

असफलता के परे जो आनन्द का साम्राज्य है (सुख अलग है, आनन्द अलग है) - प्रवृत्ति और निवृत्ति के परे जो शान्ति का साम्राज्य है वहाँ जाकर जीते हैं। और उस जीवन में न मस्ती है, न बेहोशी है - न होश है; वहाँ न राग है, न विराग है, न आसक्ति है, न अनासक्ति है; वहाँ बस है तो जीवन है; वहाँ बस है तो ऐसी गति है जिसके कोई हेतु नहीं, जिसके कोई दिशा नहीं।

और मैं मानती हूं कि मनुष्य वैश्विक चेतना का ऐसा मुकाम है कि जहाँ से ऊर्ध्वगति होकर इस आत्मिक क्षेत्र में जाना सम्भव है। इसकी भूख और प्यास आज सारे संसार में कहीं-न-कहीं; किसी-न-किसी रूप में उसकी ओर मनुष्य को खींच रही है। तो, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास से परे अध्यात्म के क्षेत्र में जाना है, जाना ही अपनी समस्त संभावनाओं को खिलाना है।

इसलिये यह प्रत्येक का अधिकार है, जो चाहेगा। जो चाहेगा उसके लिये वह सम्भव है।

आज प्रात:काल के लिये इस विषय को यहीं पर हम समाप्त करेंगे।

यह सहज उन्मुक्त संवाद है, प्रतिपादन नहीं। जहाँ तक बुद्धि का साम्राज्य है, वहाँ तक प्रतिपादन हो सकता है। जहाँ तक मन की पहुँच है, वहाँ तक अभिनिवेश और आवेश के साथ, आग्रह के साथ किसी विषय को रखा जा सकता है। लेकिन आवेश और अभिनिवेश, प्रतिपादन, प्रचार,-यह सब कुछ शान्त हो जाता है। बच जाता है सिर्फ सुख-संवाद। और इस सुखसंवाद में आप सब आये-आप सबको मैं हृदयपूर्वक प्रणाम करती हूँ।

(ख) सायंकाल, प्रश्नोत्तरी दिनांक - २०-१-१९६८

[श्रीशङ्कराचार्य के साधन-चतुष्टय और श्री पतंजलि के योगसूत्रों के विषय में प्रश्न था - इसके सिलसिले में कहा गया निवेदन नीचे है ।]

पहले ऐसा सोचा था कि जो विषय सुबह यहाँ रखा गया, उसके बारे में ही संध्या को चर्चा होगी । अब आपके जितने प्रश्न हैं, वे, जो हिन्दुओं के धर्मग्रन्थ हैं, उन पर आधारित हैं ।

शङ्कराचार्य के साधन-चतुष्टय की व्याख्या हो या पतंजलि के योगसूत्रों में यम-नियम की परिभाषा हो- एक विशिष्ट दर्शन पर आधारित परिभाषा है । अब यह तो नहीं हो सकता है कि यहाँ सब जो बैठे हैं वे उसे जानते होंगे । यह तो ऐसे प्रश्न पूछना हुआ कि जैसे कोई जैन व्यक्ति पूछें कि भाई हमारे आगमों के अनुसार चौदह गुणस्थान के बारे में आपका क्या कहना है ? या ग्यारहवें गुणस्थान में जाने के बाद आदमी लौटता नहीं है - उसकी गति आगे को होती है - आप क्या सोचते हैं ? तो, अब एक विशिष्ट दर्शन पर आधारित प्रश्न जो है, वह ग्रंथाधारित प्रश्न है ।

मैं उस जिज्ञासा को enquiry को सही enquiry मानती हूँ जो अपने जीवन में से उठती है । तो शङ्कराचार्य जिन्होंने नहीं पढ़ा, वे साधन-चतुष्टय क्या जानेंगे ? उनके लिये शम क्या, दम क्या, विवेक क्या, वैराग्य क्या-वे नहीं जानेंगे । तो यदि आपके जो प्रश्न हैं, उनको, पारिभाषिक शब्दों को टाल कर, आप रखेंगे तो अच्छा होगा ।

प्रश्न : What leads to अध्यात्म जिज्ञासा ? जिज्ञासा कैसे जागृत होती है ? सामाजिक और व्यावसायिक जीवन, और अध्यात्म का क्या मेल है ? ज्यादा करके व्यक्ति व्यवसायी होते हैं - तो इनके लिये अध्यात्म का कोई द्वार नहीं है ?

उत्तर : यह कहा था कि सत्य की जिज्ञासा जागृत होने के बाद जिज्ञासा की जागृति से पहले जैसा सब जीवन चलता रहा है - उसी प्रकार वह चलेगा - ऐसी अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए - यह मैं कह रही हूँ ।

यह कहा था कि सत्य क्या है, जीवन का अर्थ क्या है, बन्धन क्या है, मुक्ति क्या है -इसकी जिज्ञासा हृदय में जागृत होने के बाद जिज्ञासा की अपनी गति होती है। वह आपके मन की गति नहीं। जिज्ञासा एक बड़ा विस्फोटक तत्त्व है। उसका अपना momentum, उसका अपना dynamism, उसकी अपनी गति होती है। वह गति जब काम करने लगेगी, तो आज तक का जो जीवन है, वह वैसा ही चलेगा, वे मान्यताएं वैसे ही रहेंगी, वह सामाजिक प्रतिष्ठा वैसी रहेगी - इसकी आशा नहीं रखनी चाहिये। यह मैं कह रही थी कि यदि धन, दौलत, पारिवारिक जीवन की सुरक्षा, व्यावसायिक जीवन की सुरक्षा - इनकी आकांक्षा है, तो अध्यात्म के रास्ते से मनुष्य को दूर ही रहना चाहिये। कहने का मतलब यह नहीं है कि उस रास्ते पर वह आदमी नहीं चल सकेगा। यह कहती हूँ कि जहां सत्य की जिज्ञासा जागृत हो गई, वहां वह असत्य के, अधर्म के, अन्याय के मुकाबले में आपको पल-पल में लड़ाना शुरू कर देगी।

मान लीजिये कि आपको बोध हुआ, जीवन की एकता Unity of Life का, आपके ध्यान में आया कि Physics भी बतलाता है कि जीवन-मात्र एक है। Biology भी बतलाती है कि अणुरेणु में ओतप्रोत एक ऊर्जा है, एक Energy है। उसको आत्मतत्त्व कहिये, चैतन्य कहिये। ऊर्जा कहिये, Energy कहिये - वह एक है। सारे विश्व में एक है। इसका बोध होने पर आप किसका द्वेष कर पायेंगे ? आप किससे नफ़रत कर पायेंगे ? आप किससे स्पर्धा कर पायेंगे ?

जिस दिन बोध होगा कि शरीर और मन और बुद्धि - ये हमारे उपकरण हैं, साधन हैं, हमारा सत्त्व नहीं हैं, हमारा सत्त्व मन और बुद्धि से परे है, उस दिन फिर मानसिक और बौद्धिक महत्त्वाकांक्षा और स्पर्धा में आप किस प्रकार रहेंगे ?

कहना यह चाहती हूँ कि सत्य की जिज्ञासा जागृत होते ही आज तक का, मन ने, अहंकार ने सुरक्षा का जो किला बनाया है, जो घर बनाया है, उसकी दीवारें ढहने लगती हैं। समाज में रहेंगे; लेकिन स्पर्धा, प्रतिस्पर्धा, क्रोध, द्वेष, तिरस्कार, संग्रह, संग्रह की सुरक्षा के लिये प्रयास, राग, विराग - ये सब जो हैं -वह चल नहीं पायेगा। वह मैं कहना चाहती हूँ। ये दो चीज़े साथ नहीं चल सकतीं। यानी अध्यात्म का जिज्ञासु हो, और फिर वह nationalist भी हो ! जिसके ध्यान में यह आ जाय कि राष्ट्र की और राज्य की रेखायें मानव-निर्मित हैं और उसके आधार पर मानवों का एक

दूसरे से द्वेष करना, एक दूसरे के साथ लड़ना - यह वृथा है, तो उसके मन में petty nationalism (क्षुद्र राष्ट्रवाद) आयेगा ही कैसे ?

समाज तो ऐसे व्यक्ति से क्या कहेगा ? यह traitor (गद्दार) है ! तो समाज में देश भक्त के नाते आपकी प्रतिष्ठा तो नहीं रहेगी । फिर व्यवहार में आप करेंगे - जैसा श्रीमद् राजचन्द्र ने कभी किया था । सौदा किया और जिसके साथ सौदा हुआ था, जो देने वाला था diamonds (हीरे) का सौदा करके, - उसने देखा उसके बाद दाम बढ़ गये । prices बढ़ गयीं । वह चिन्ता में था कि contract तो श्रीमद् के साथ पहले कर चुका । न दूं तो सौदे में अप्रामाणिक रहूँगा । देता हूँ तो इतने लाखों का मेरा नुकसान होता है ।

उसकी खबर मिलते ही सुबह उठकर उसके घर जाते हैं, कागज जेब में रखकर । कहते हैं, "चिन्ता में हो, मेरे भाई ? तुम्हारी चिन्ता का कारण मैं लाया हूँ । यह सौदे का कागज है ।" फाड़ दिया । "श्रीमद् राजचन्द्र दूध पी सकता है, लहू नहीं पी सकता ।" अब क्या कहेंगे आप ? कैसा मूर्ख था ? उसका क्या दोष था ? prices बढ़ गई, तो श्रीमद् राजचन्द्र का क्या नुकसान ? उसका तो कोई गुनाह नहीं था । इतने पैसे का नुकसान किया ! वह व्यवहारी आदमी नहीं था !

इसलिये मैंने कहा कि व्यावहारिक मान्यताएं और सत्य का स्पर्श, आज की सुरक्षा की भावना, इसके लिये होनेवाला प्रयास, पुरुषार्थ, इसकी qualitative गुणात्मक भिन्नता रहगी ।

संसार में रहते हुए, सत्य के रास्ते पर चलना हो तो, आज जिसको संसार सफलता-विफलता कहता है, सम्मान-अपमान कहता है, सुख-दुःख कहता है, उस परिभाषा से ऊपर उठना होगा । संसार में रहेंगे, काम करेंगे । लेकिन इसका जो जीवन का मूल्यांकन है, उस मूल्यांकन पर ऐसा व्यक्ति चल नहीं पायेगा ।

आप कह रहे थे कि सत्य की जिज्ञासा का जन्म कैसे होगा ? उसके लिये कोई तैयारी करनी पड़ती है या नहीं ? पारिभाषिक शब्द मैंने इसलिये नहीं टाले हैं कि उन शब्दों की कोई सार्थकता नहीं है । शब्द बड़े महत्त्वपूर्ण हैं । यम-नियम हो, धारणा-ध्यान हो, प्रत्याहार हो, ये शब्द जो हैं, ये बडे अर्थ-गंभीर हैं, लेकिन उस चर्चा में नहीं उतरना चाहती हूँ ।

सत्य की जिज्ञासा के लिये कोई तैयारी चाहिये या नहीं ? उसके लिये कोई pre-requisites हैं, उसके लिये कोई अनिवार्यता है - आवश्यकता है ?

ज़रूर । जिज्ञासा की जागृति के लिये पहली आवश्यकता यह है कि जीवन से जो भय है उस उस भय को निकाल देना । जीवन के स्पर्श से हम बहुत डरते हैं हमने जीवन को एक अंकगणित, बीजगणित, भूमिति का ग्रंथ समझ लिया है । या कोई तर्कशास्त्र का ग्रंथ समझ लिया है, कि उसमें सब जितने प्रश्न और उत्तर लिखे हुए हैं उनको याद कर लेंगे और जैसे-जैसे समस्या खड़ी होगी, वैसे-वैसे समस्या का समाधान करते जायेंगे । इतना जीवन से भय है कि जीवन जीना समस्याओं को, चुनौतियों को सामने उपस्थित करेगा । उनके प्रतिकार का, कल की, परसों की, अगले साल की, अगले जन्म की समस्याओं का, समाधान आज तैय्यार रखना चाहते हैं । Ready-made formula, blue-prints, plans - इन सब की खोज किस लिये ? जैसे घर-गृहस्थी बसानी है तो चलो भाई, एक साल भर का अनाज रखो । संसार में चलना है, business करना है, medical line में जाना है, engineering में जाना है, तो उसकी जानकारी, उसका ज्ञान प्राप्त करो । वैसे हमे अध्यात्म को भी समझ लिया है । यहाँ भी blue-prints काम देंगे ! आत्मा की उपलब्धि के लिये भी हम कोई न कोई नुस्खे निकालेंगे ! मैं यह कह रही हूँ कि जीवन के स्पर्शसे हम डरेंगे नहीं । यह निर्भयता, यह अभय पहले होना चाहिये । हम तो बच्चों को डरना ही सिखाते हैं । सारी की सारी शिक्षण-पद्धति कुछ नहीं - जितना शिक्षण आज दिया जाता है समाज में, यह systematic development of fear-complex and fear-psychosis है । बच्चों को समाज से डरना, लड़का है तो लड़की से डरना, लड़की है तो लड़के से डरना, अपने आप से डरना, अपने शरीर से डरना, अपने मन से डरना, और बचाव की पूरी तैय्यारी रखना सिखाया जाता है ! जैसे कोई लड़ने के लिये जाते हैं, तो लड़ने का साज़ सारा शरीर पर चढ़ाते हैं । चेतन अचेतन मन में यह विकार उठेगा, तो ऐसा प्रतिकार करो । वह विकार उठेगा तो वैसा प्रतिकार करो । यह सब तैय्यार करके, रटरटा के लड़के को बड़ा कर दिया । मान लिया हाँ, अब जीने की तैय्यारी है ! इसका मतलब है कि कहीं से, किसी भी झरोखे से जीवन की - हवा, पवन, वहाँ तक पहुँचे ही नहीं !

तो आध्यात्मिक जिज्ञासा के रास्ते में ये जो संग्राम की तैय्यारियाँ हैं ये सबसे बड़ी बाधा हैं। जीवन संग्राम करने की वस्तु नहीं है। जीवन संघर्ष करने का तत्त्व नहीं है। जीवन समझने का, आनंद लूटने का और लुटाने का एक पवित्र अवसर है, जो जन्म के बाद मनुष्य को मिलता है।

यह अभय पैदा करना पड़ेगा। डरे हुए लोग क्या अध्यात्म की खोज करेंगे? जो भयग्रस्त लोग हैं, जिन को मृत्यु का भय है, जिनको हानि से भय है, जिन्होंने जीवन को एक सौदे की चीज़ समझ लिया है, भक्ति भी सौदा, ज्ञान भी सौदा, साधना भी सौदा, तपस्या भी सौदा, इतना करेंगे तो इतना मिलेगा, इतना करेंगे तो इतना मिलेगा -

ऐसे भयग्रस्त मानस में और भय से अपने आपको बचाने के लिये संघर्ष की तैय्यारी रखने वाले मानस को सत्य की जिज्ञासा का स्पर्श नहीं हो सकता You have to expose yourself completely to the touch of life. और क्यों डरते हैं - मालूम है? क्योंकि जीवन में पुनरावृत्ति नहीं होती, जीवन में प्रतिक्षण नवीनता है। यह जो जीवन का अपूर्व सौंदर्य है कि कल का क्षण अभी नहीं, अभी का क्षण एक घण्टे बाद नहीं। तो आप तैयारी कर रखते हैं आज के अनुभव पर, कलके अनुभव पर, लेकिन आज के अनुभव पर की हुई तैय्यारी आनेवाले कल काम नहीं देती। तो, जीवन की यह जो नित्य नवीनता है, नूतनता है, इसमें उसका सुन्दर स्वरूप छिपा हुआ है, यह जो जानेगा, वह फिर अपनी सुरक्षा और बचाव की तैय्यारी नहीं करेगा। अध्यात्म यानी जीवन के प्रतिक्षण आलिङ्गन और स्पर्श के लिये तैय्यार रहना।

"जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ;
मैं बौरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ।"

यह किनारे बैठने वालों का धंधा नहीं है जीना। वे तो किनारे पर बैठकर हिसाब लगायेंगे - पानी यहाँ इतना गहरा है, वहाँ उतना गहरा है। इस पानी में calcium ज्यादा है, इसमें iron ज्यादा है। हिसाब लगायेंगे कि इस नदी का प्रवाह कहाँ से शुरू हुआ था - गंगोत्री से हुआ कि जमनोत्री से हुआ! इसका volume कितना है? इसकी speed कितनी है? बैठे, philosophy बनायी, किनारे पर बैठे। लेकिन ऐसे philosophies या theologies लिखने वालों ने कभी जीवन में छलांग लगाकर इसका शीतल स्पर्श नहीं पाया। उसकी ताजगी नहीं पायी।

इसलिये, भाई, अध्यात्म तो जीवन से आलिंगन करनेवालों का खेल है । उसके लिये बहादुरी चाहिये, शूरता चाहिये, वीरता चाहिये, कायरता calculations; हिसाब लगाना-नक्शे-blue-prints तैय्यार रखना, निष्कर्ष उधार ले-लेकर उनकी भी एक जंत्री बना लेना, सूची बना लेना, यह अध्यात्म नहीं हो सकता । इसमें धर्माचरण होगा । इसमें नैतिक आचरण होगा । इसमें सामाजिक संबंधों की मर्यादाओं का पालन होगा । किन्तु यहाँ हद से बेहद में और बेहद से अनहद में जाने का सवाल है ।

दूसरी तैय्यारी आप जो पूछ रहे हैं सत्य की जिज्ञासाके लिये, वह तैय्यारी यह है कि जो साधन मुझ को मिले हैं - आखिर सत्य की जिज्ञासा भी पूरी करनी, खोज करनी होगी, तो शरीर से काम लेना है । इस शरीर में रहना है, मन है, बुद्धि है - ये जो उपकरण मिले हैं - इनकों स्वस्य रखना, सुन्दर रखना, निरामय रखना - यह है दूसरी तैयारी । आजकल लोगों को बड़ा भ्रम हो गया है कि अध्यात्म के लिये कुछ नहीं करना पड़ता ! यह तो बस एक प्रवचन सुन लिया - और एकदम - Switch on and off ! हो गया वह ! यह सिर्फ़ शब्दों के व्यापार से उपलब्ध होने वाला तथ्य है । इतना अध्यात्म सस्ता नहीं है कि कुछ भी न करना पड़े इसके लिये ।

मैंने कहा था सुबह कि परिश्रम करना पड़ता है । अब कोई कहेगा, कि यम-नियम के द्वारा करो, आहार विहार और निद्रा के संतुलन में से करो । लेकिन मैं समझती हूँ कि आज के जमाने में छोटे-छोटे लडकों-बच्चों को, सब लोगों को जब विद्यालयों में पाठ पढाते हैं -physiology सिखाते हैं -hygiene सिखाते हैं - biology सिखाते हैं - दुनिया भर के ग्रंथों का पाठ तो करते हैं । एक गधे का बोझ लाद-लाद कर तो बच्चे स्कूल जाते हैं । इसलिए यह जरूरी नहीं है कि कोई एक व्यक्ति बैठकर उनको यह बतायें कि तुम ऐसा खाना खाओ, ऐसा भोजन करो । यह कोई कहेगा क्या कि-'मैं नहीं समझ सकता हूँ कैसा भोजन करूँ ?' लेकिन इतने सब साधन उपलब्ध होने के बाद भी कोई विचार नहीं करता, यह दुर्भाग्य है, कि मेरे शरीर के लिये किस प्रकार का आहार अनुकूल है, मेरी प्रकृति कैसी है - कफ प्रकृति है ? वात प्रकृति है ? पित्त प्रकृति है ? - प्रकृति को समझने के बाद उसके अनुकूल आहार और उसके अनुकूल प्रमाण में उसको दिया, अब उसको यम कहो, नियम कहो,-न कहो-, तुम्हारी non-conformism की और एक भाषा निकालो । मुझे भाषा से लड़ना-भिड़ना नहीं है । लेकिन यह कहूँगी कि ध्यानावस्था में प्रवेश करना यानि

निर्विचार अवस्था में जीवित रहना - यह कमज़ोरों का काम नहीं है । उसके लिये फौलाद जैसे ज्ञानतन्तु चाहिये - nervous system like steel.

तो अध्यात्म की जिज्ञासा के लिये शरीर का और मन का स्वास्थ्य और सन्तुलन आवश्यक है । यह नहीं कहती हूँ कि उसे साधने पर यह प्राप्त ही होगा । लेकिन सुबह जिस चीज़ का मैंने उल्लेख किया था कि शारीरिक और मानसिक अनन्त शक्तियाँ हैं । Harmonious development of the infinite powers of the mind and body -उन शक्तियों का विकास कर लें - यह तो धर्म है । न करें तो दोष । करें तो उसमें पुरुषार्थ नहीं । आप जब पूछते हैं तो कहती हूँ कि अध्यात्म की, सत्य की जिज्ञासा में इसकी मदद होती है । इसके बिना भी हो सकता है, अपवादभूत, लेकिन सौ में से निन्यानवे व्यक्तियों के लिये शरीर और मन का स्वास्थ्य और संतुलन तैय्यारी है ।

यह (तैय्यारी) कैसे की जायेगी - किसी प्रकार की कोई Gymnastics करेगा, कोई योगासन करेगा, कोई प्राणायाम करेगा, किसी को आठ घंटे निद्रा चाहिये, किसी को छ: घंटे निद्रा चाहिये । हम यह किसी के लिये तय नहीं कर सकते हैं । आध्यात्मिक साधना नितान्त व्यक्तिगत विषय है । एक व्यक्ति दूसरे को कोई पथ नहीं बतला सकता है कि मुझे छ: घंटे निद्रा चाहिये, इसलिये तुम भी छ घंटे की निद्रा में चला लो । लेकिन हाँ, उस व्यक्ति को खोजना चाहिये कि मेरे शरीर को और मेरी जीवनचर्या को, कितनी निद्रा आवश्यक है । यह फैसला करें । उसके बाद प्रमाद करें - तो गुनाह हैं । मैं नहीं बताऊँगी । वह व्यक्ति तय करें । ये आहार हैं । इतना आहार का प्रमाण है । वैज्ञानिक दृष्टि से शरीर को, मन को कोई नहीं देखते । Suppression. denial, वैराग्य, निग्रह, आत्मपीड़न-इनकी आलोचना सब करते हैं । और उच्छृंखल भोगवाद, उत्तान भोगवान-इसको स्वतन्त्रता मानते हैं । यह नहीं चलेगा । तो सत्य-जिज्ञासा के लिये शारीरिक और मानसिक आवश्यकताओं की तरफ वैज्ञानिक दृष्टि से देखना और उनमें सन्तुलन उपस्थित कर देना - इसकी बहुत मदद होतीहै, हो सकती है । आपका यही न सवाल था ?

आपने कहा था कि आप के पास, ये जो शङ्कराचार्य के साधन चतुष्टय के निर्देश हैं - या यमनियम के निर्देश हैं - इनसे कोई quicker (अधिक तेज़) हैं ? - यह आपने एक प्रश्न पूछा ।

अब quicker (अधिक तेज़) हैं कि slower (अधिक धीमा) है - यह तो मुझे मालूम नहीं। लेकिन हाँ, एक प्रकार आज़माया जा सकता है, प्रयोग किया जा सकता है, सत्य की खोज एक प्रायोगिक विज्ञान है - experimental science है और अपने शरीर के भीतर, मन के भीतर ही वह प्रयोगशाला है जहाँ प्रयोग करने होते हैं। दूसरों के किये हुए प्रयोगों का कोई वर्णन आपको किसी मंज़िल तक पहुँचा नहीं सकता। प्रयोग यह करने लायक है कि शरीर को और मन को चौबीस घण्टे में कुछ समय निकाल कर स्वस्थ रहने का मौका देना चाहिये। इन्द्रियाँ जो मिली हैं न, इन इन्द्रियों को रात-दिन जो काम में लगाये रखते हैं - आँख से देखते ही जाते हैं, देखते ही जाते हैं, देखते ही जाते हैं, कान से सुनते ही जाते हैं, नाक से सूँघते ही जाते हैं - मन से सोचते ही जाते हैं। तो आपकी इन्द्रियाँ एसी जर्जर हो जाती हैं। और मन से इतना काम लेते हैं कि सामने कोई करने का काम न हो, तो स्मृति के साथ खेलते हैं। छोटे बच्चे खिलौने के साथ खेलते हैं न ? मैंने ऐसे कोई मनुष्य नहीं देखे कि जो खिलौने के साथ नहीं खेलते हैं ! अब, स्मृति के साथ, दु:ख की स्मृति के साथ खेलते हैं, सुख की स्मृति के साथ खेलते हैं - इतना नहीं, तो कल क्या होगा, परसो क्या होगा, फिर क्या होगा, आगे क्या होगा - एक महीने के बाद, दो महीने बाद - भविष्य के स्वप्न देखते हैं। बेचारे मन को कोई आराम नहीं देता। मैंने अपने मन के साथ निर्दयता न करने वाले मनुष्य बहुत कम देखें हैं। चौबीस घण्टे काम में लगायेंगे। रात को बिस्तर में सोये हैं तो चेतन मन को सोने देंगे, तो अचेतन मन से स्वप्न देखना शुरू कर देते हैं। कभी चौबीस घण्टे में एकाध घण्टा तो ऐसा निकालना चाहिये कि जब बैठे हों शान्त- आँख देख नहीं रही हैं, कान सुन नहीं रहे हैं, घ्राण का, सूंघने का यह कष्ट है - वह नहीं दे रहे हैं। मन को सोचने का कष्ट नहीं दे रहे हैं। श्वासोच्छ्वास जो हैं - उसको तो ऐसी बेरहमी से, ऐसी क्रूरता से काम में लाते हैं। उसमें कोई संगीत नहीं, उसमे कोई लय नहीं है। कितना श्वास लेना चाहिये - कितना बाहर छोड़ना चाहिये, कोई नहीं देखता। अपने लिये सोचने को और देखने को फुर्सत किसको है ? सबको दुनिया की पड़ी है। सुख-सुविधाओं का, शारीरिक और मानसिक सुख-सुविधाओं का सामान जुटाते-जुटाते ज़िन्दगी निकल जाती है - जीने की फुर्सत ही नहीं है। ऐसा समय निकालना चाहिये भाई, जब आप शान्ति से - आप बैठे रहिये, आप खड़े रहिये, आप लेटे रहिये - किस position में posture में आप हैं, इससे हमें कोई वास्ता नहीं।

हाँ, इतना कहेंगे कि आपकी पीठ की जो रीढ़ (spine) और गरदन है - वे सीध में हों। तो, जो blood-circulation है, जो रुधिर-नि:सरण है, वह निर्विघ्न रीति से चलता है। और आपकी श्वास की जो गति है, उसमें धक्का नहीं लगता है। जो झुककर बैठते हैं, उनकी श्वास की गति में लय नहीं आता। इसलिये इतना ही कहेंगे-लेटना है तो सीधे लेटो, खड़े होना है तो सीधे खड़े हो जाओ, बैठना है तो सीधे बैठो। अपनी-अपनी पसन्द की बात है। लेकिन ऐसा कुछ समय निकलना चाहिये जब आप शरीर को, शरीर के स्नायुओं को, मज्जाओं को, glands को, ग्रन्थियों को, nerves को ज्ञानतन्तुओं को, मन को, सबको शान्ति दें। सावधान होकर इन वाहनों को - आपका जो वाहन है शरीर, आपका जो वाहन है मन और बुद्धि, इसको ज़रा आराम तो दो। एक घण्टा। अब इनको जब आप आराम देते हैं - मन से सोचते नहीं है, वह न सोचने की अवस्था है, यदि आप सिर्फ़ मन हो और सिर्फ बुद्धि हो, तो फिर न सोचने की अवस्था में तो मृत्यु होनी चाहिये न ? वह तो होता नहीं है। न सोचने की अवस्था में भी जीवित रह जाते हैं। इसका मतलब है कि मन भी एक आवरण है। तन जैसे आवरण, वैसे मन भी आवरण है। और आवरण के भीतर भी जीवन है। तो, तन और मन के आवणणों के भीतर जो छिपा हुआ जीवन है, उससे साक्षात्कार वहां होता है। चौबीस घण्टे में कुछ समय ऐसा निकालें - खोज करने के लिये कि मन की क्रियायें और शरीर की क्रियायें शान्त होने पर होता क्या है ? वह जब देखने में आयेगा, मानसिक क्रियाओं के शान्त होने पर चेतना में जो घटित होता है, उसका साक्षात्कार होगा - तो जो सत्य का चसका है, उसका जायका है, उसका लुत्फ़ है, उसका मज़ा है वह आने लगेगा। कमरे में अन्धकार है और खिड़की खोल दी। बहुत थोड़ी सी खोली है और एक प्रकाश किरण आयी। कहते हैं, 'हां, हाँ, सूर्योदय हो गया है, बाहर प्रकाश है।' वैसे ही अन्तर्मुख होकर मानसिक क्रियाओं के उपशम में जो एक गति अनुभव में आती है, उस गति को देखने के बाद फिर ध्यान में आता है कि अरे ! ये तन के और मन के और बुद्धि के हिसाब में लगे रहें - यह तो ठीक नहीं है। वह तो करना चाहिये। लेकिन, सत्त्व हमारा भीतर पड़ा है। वह घर है हमारा मकान है, वह हमारा मकान है। वह हमारी जड़ है। वह हमारा बीज है।

तो, इसका एक प्रयोग करके देखने लायक चीज़ है - हो सकता है या नहीं ? फिर वह जो चेतना का साक्षात्कार होता है, इस चेतना का साक्षात्कार फिर खुली

आँख से रहकर होता है या नहीं ? शरीर से हिलते हुए, चलते हुए, मुंहसे बोलते हुए भी, इसमें हमारा निवास रह सकता है या नहीं ? - फिर तो । जो स्पर्श यहाँ हुआ था, इस स्पर्श को जीवन के हर क्षेत्र में देखने कौ जो चेष्टा है, जिसको लोग साधना कहते हैं, वह फिर शुरू हो जाती है ।

प्रश्न : धर्म का आचरण करते-करते ही अध्यात्म तक पहुँच सकते हैं या नहीं ? इस आशय का प्रश्न था ।

उत्तर - सुबह की सभा में यह कहा गया था कि धर्म एक वस्तु है और अध्यात्म दूसरी । जहाँ तक स्मरण है - यह कहा गया या कि जल का धर्म है प्रवाहित होना, पुष्प का धर्म है सौरभ देना । पृथ्वी का धर्म है स्थिरता में रहना । इस प्रकार मानव का धर्म है - दृष्टि से सम्यक् देखना और शरीर से सम्यक् व्यवहार करना । लेकिन ये जो सम्यक् दर्शन और सम्यक् वर्तन हैं - अपने-अपने धर्मशास्त्र के अनुसार करने वाला व्यक्ति - यह जरूरी नहीं है कि आध्यात्मिक अनुभूतिसंपन्न हो । यह कहा था ।

यह जरूरी नहीं है कि जो बहुत नैतिक व्यक्ति है, सदाचारी है, लोग जिसको पुण्यशील कहते हैं, लोग जिसको सज्जन कहते हैं - ऐसा नैतिक और सदाचारी व्यक्ति, यह जरूरी हीं है कि आध्यात्मिक भी हो । मैंने कहा था कि अध्यात्म जीवन का एक नितान्त भिन्न आयाम है, परिमाण है, dimension of life है । अब वह बहन पूछ रही हैं कि धर्म का आचरण करते-करते अध्यात्म तक पहुँच सकते है या नहीं ? धर्मपालन में से ही अध्यातम में प्रवेश हो, इसका रूपांतर हो सकता है या नहीं अध्यात्म में ? -

मुझे बहुत खेद है कि जहाँ तक जीवन को देखा और समझा - धार्मिक या नैतिक आचरण करनेवाले अध्यात्म में पहुँच ही जाते हैं ऐसा पाया नहीं क्यों ? क्योंकि धर्माचरण में शास्त्रों को प्रमाण और व्यक्तियों को प्रमाण मानना अनिवार्य हो जाता है । एक उदाहरण दूँ । मनुस्मृति है । अब आप और मैं कोई स्मृति लिखने के लिये तो नहीं बैठेंगे । जो धार्मिक Scriptures हैं, वे सामुदायिक जीवन के लिये नियम बनाये गये, कौटिल्य ने एक धर्मग्रन्थ-शास्त्र लिखा । तो नीतिशास्त्र और धर्मशास्त्र - ये हैं शास्त्र । पण्डितों ने बनाये । अब इन लोगों को प्रमाण मानकर, अपनी स्वतन्त्रता को कुछ मर्यादित करके, दूसरे लोगों की स्वतन्त्रता का संरक्षण करते हुए मनुष्य जीता है ।

समाज में जीना होता है - you have relegate certain powers - जैसे Politics में करना पड़ता है, वैसे सामाजिक जीवन में आप एक-दूसरे के लिये, जैसे कुटुम्ब में आप करते कुटुम्ब के लिए, वह जो इकाई है - कुटुम्ब की जो इकाई है उसकी रक्षा के लिये आप अपने अधिकार, अपना स्वातन्त्र्य - इसको स्वेच्छा से छोड़ते हैं। और कुछ मर्यादाओं का स्वीकार करते हैं। ऐसे धर्म में करना होता है।

तो आपने पहले तो शास्त्र को प्रमाण माना या शास्त्र स्वयं पढ़कर समझने की बुद्धि न हो तो किसी व्यक्ति को प्रमाण माना - वहाँ आपने सत्य की खोज नहीं की। प्रमाण मानकर आप चले। जैसे आपको geometry में करना पड़ता है। यह point है, तो point की definition यदि आप नहीं मानेंगे तो geometry आगे सीख नहीं सकते हैं। Point को - without breadth ऐसा एक unit है, space and time के focus में, - if you are not willing to presume that such a unit or such an entity, without length breadth can exist, इतना नहीं मानेंगे तो आप भूमिति नहीं सीख सकते। Trigonometry भी नहीं।

उसी प्रकार, धर्मशास्त्रों में, विभिन्न धर्मों में, कुछ उन्होंने प्रमाण मान लिये है। आपको मालूम हैं न, - हिन्दू लोगों की कुछ परिचित है परिभाषा, इसलिये कहती हूँ - वह प्रत्यक्ष को प्रमाण मानते हैं, अनुमान को मानते हैं - इस प्रकार प्रमाण मानकर फिर धर्माचरण करते हैं। ऐसा ही जैनधर्म में होगा, ऐसा ही बौद्धधर्म में होगा। तो धर्माचरण के लिये इस प्रकार की authority को मानना, इस प्रकार की sanction को मानना अनिवार्य हो जाता है। जैसे Indian constitution आपने और हमने नहीं लिखा। लेकिन उस code के यो नियम हैं - उनको तोड़कर आप चलेंगे तो आप को सज़ा होती है। कैद में जाना होता है। ये तो मानवनिर्मित सामाजिक जीवन की व्यवस्था के लिये बनाये हुए code languages हैं। इनका सत्य की खोज से कोई सम्बन्ध नहीं है। अध्यात्म तो है - सत्य की व्यक्तिगत खोज और अनुभूति। It is a personal discovery of the ultimate reality of the world. इसमें किसी की authority मानने से चलता नहीं। किसी को प्रमाण मानने से चलता नहीं है। वहाँ तो पग-पग पर और पल-पल में research student जैसा जाग्रत् रहकर बैठना पड़ता है। और देखना होता है। इसलिये, मैंने कहा कि धर्म जीवन का एक आयाम है, और अध्यात्म जीवन का दूसरा आयाम है। उनमें विरोध नहीं कह रही हूँ मैं। लेकिन

एक मर्यादा है । अब आप कहेंगे कि जो शास्त्रवचन हैं उनमें से जितना हमको तथ्य अनुभव में आया, उतने का हमने आचरण किया - बाकी हमने छोड़ दिया - परंपराओं को छोड़ दिया - संप्रदायों को छोड़ दिया - तो फिर आप की सत्य की खोज शुरू हुई । फिर आपने शास्त्रों को प्रमाण नहीं माना । आपने व्यक्ति को प्रमाण नहीं माना, आपने धर्म में भी सत्य की खोज को लेकर प्रवेश किया । ऐसे व्यक्ति को समाज कभी धर्मशील नहीं कहेगा ।

उदाहरण मैं दूं आप को । आज तो समाज कुछ बदल गया है । लेकिन पंद्रह साल पहले तक, दस साल पहले तक, यह माना जाता था कि मातृत्व के बिना स्त्री के जीवन की सार्थकता नहीं है । तो कोई लड़की कहे कि विवाह नहीं करना है, तो वह कितना ही शुद्ध जीवन व्यतीत करती हो, समाज में उसको प्रतिष्ठा मिलना बहुत मुश्किल होता था । वह किसी के साथ हँसे, बोले तो संदेह की निगाह से देखा जाता था । समाज की दृष्टि से वह धर्माचारिणी नहीं । क्योंकि उसने विवाह नहीं किया, किसी पुरुष के रक्षण में न रही, मातृत्व उसने नहीं धारण किया, तो समाज की दृष्टि से ऐसी व्यक्ति अधार्मिक है । आप देखिये । कोई भी, धर्म के जो विधियुक्त अनुष्ठान होते हैं न, rituals होते हैं, उसमें ऐसी स्त्रियों का प्रवेश नहीं है । यज्ञ करना हो, होम करना हो, हवन करना हो, वे कहते हैं - ''उसको नहीं, वह नहीं चलेगा ।'' तो धर्म की दृष्टि से, समाज की दृष्टि से वह अधार्मिक है । और उसने यदि सोचा कि, 'नहीं, यह तो मेरा जीवन है - मैं जिऊंगी; विवाह की आकांक्षा नहीं है - नहीं करेंगे', तो समाज की दृष्टि अलग हो गई । धर्माचरण करना होता तो वह मर्यादा मानकर उसमें चलती । मैं धर्म शब्द का प्रयोग किस अर्थ में कर रही हूँ यह आप देख लीजिये । धर्म शब्द का प्रयोग मैं इस अर्थ में कर रही हूँ कि परस्पर व्यवहार के लिये सर्वसंमत कुछ जो नियम बनाये गये हैं - उसको मैं कह रही हूं । तो ऐसे आचरण करनेवाले अध्यात्म के जीवन तक पहुँच नहीं पाते हैं ।

प्रश्न : सत्य के आचरण के लिये, 'ऐसा करना चाहिए', 'ऐसा करने से उसकी मदद होती हैं - (थोड़ी-सी) - यह नहीं है ?'

उत्तर : मदद होनी चाहिये, यह तो नहीं कहा - हो सकती है यह कहा । किसीने प्रश्न पूछा था कि इससे मदद हो सकती है या नहीं ? मैंने कहा कि हो सकती है । यह कहा कि अनिवार्य नहीं है । लेकिन इसमें भय कहाँ ? अभी मैं यह कहूँ कि आप

यदि यहाँ बैठे हैं सुनने के लिए - आप का शरीर स्वस्थ होगा तो आप ठीक तरह से सुन पायेंगे - और अगर सिर में दर्द है, पेट में कुछ कब्ज़ है, कहीं पीठ में दर्द है तो आप यहां बैठे हैं, शब्द कानों तक पहुँचते हैं, बुद्धि उसका अर्थ भी बतलाती है, लेकिन बोध भीतर उठता नहीं है । क्योंकि शरीर में है distraction ।

तो, यदि मैं कहूँ कि श्रवण के लिये - For the art of listening poise of the body or health of the body is indispensable - शरीर की स्वस्थता श्रवण के लिये आवश्यकता है - यह कहूँ तो उसमें भय कहाँ आया ? उसमें भय आता है ? मान लीजिये कि आप को नींद नहीं पूरी मिली है, दो तीन रातों से, और फिर आप जाकर बैठे हैं । तो कान सुन रहे हैं । कानों का धर्म है शब्द को सुनना । तो श्रुति सुन रही है और बुद्धि को आदत है कि स्मृति में से शब्दों का अर्थ निकाल-निकालकर लगाते जाने, और उसको categories में, label में, बाँटते जाना । वह भी होगा । लेकिन बोध भीतर नहीं उठेगा, क्योंकि निद्रा के अभाव में उतनी तरलता, उतना अवधान वहाँ पर है नहीं कि उसको आत्मसात् कर लें । तो यह यदि कहूँ कि भाई, निद्रा का अभाव हो, अन्न का अभाव हो पेट में, शरीर में स्वस्थता का अभाव हो तो सत्संग नहीं हो सकता । तो यह क्या भय दिखलाना हुआ ?

प्रश्न : Everybody is a little conscious about his activity. He likes, for example, to feel from the humanity point of view, leaving aside to humanity. He just argues that whatever I do, I should not hurt somebody else, - I should be honest and all that. Has it got any relation with अध्यात्म ? Or [is it] just a make believe story of humanity and helping others and doing your best and doing good to others and all that ? Am I clear in what I ask ?

उत्तर : आप कह रही हैं, कि धर्म की द्रष्टि को अलग छोड़ दीजिए । लेकिन एक मानवजाति का सवाल सामने आता है कि सच बोलना चाहिये - सबके साथ प्रेम से रहना चाहिये - कर्तव्य का विचार आता है समाज के प्रति - इस विचारका अध्यात्म के साथ क्या संबंध है ? संबंध है या नहीं ?

देखिये जहाँ प्रेम है, वहाँ कर्तव्य के लिए अवकाश है ? आप का किसी व्यक्ति से प्रेम है - माता का पुत्र से, भाई का बहन से है - पति का पत्नी से है। मित्र का मित्र से है प्रेम। जब उस मित्र के साथ आप का व्यवहार होता है तो आप को सोचना पड़ता है कि इस व्यक्ति को दु:ख न हो ? अनुभव है न, इसलिये कहती हूँ। यह 'प्रेम'-जो चार दिन का मोह है तो भी यह सब चलता है, नखरा सब चलता है। तो, प्रेम में तो होता ही है। ऐसे ही अध्यात्म के क्षेत्र में हेतु के लिये कोई, - motive के लिये कोई अवकाश नहीं कि मैं किसी को दु:ख न दूँ, सबके साथ प्रेम से रहूँ, सब का हित मेरे द्वारा हो,-यह जो हेतु हैं-even the noblest possible motive cannot enter the realm of love. Love is a realm where there is no direction and no motive.

तो, ये हेतु और प्रयोजन, मानव जाति का विचार, बहुजनहिताय बहुजनसुखाय, ये सब मैं करूँ, तो 'मैं' रहा,-यानी 'अहम्' रहा, 'करना रहा' और 'किसी के लिये' करना रहा। त्रिपुटी बन गई न ! त्रिकोण बना कि 'मैं करूँगा', 'ऐसा व्यवहार करूँगा' कि किसी को' दु:ख नहीं होगा। इतना consideration है। अब यह जो triangle है, यह जो त्रिपुटी है-यह आध्यात्मिक जीवन में नहीं है। आध्यात्मिक जीवन में स्वकेन्द्रित सभी हेतुओं का विलय हो जाने के कारण शेष रह जाता है प्रेम का सहज प्रवाह, जिसमें से तन मन की सभी धाराओं में से झंकृत होता है जीवन का संगीत। उसमें दूसरों को दु:ख देने की संभावना ऐसे व्यक्ति में, रहती नहीं। मुझसे किसी को दु:ख होने की संभावना तब तक है, जब तक अहंकार शेष है, और अहंप्रेरित क्रिया होती है। action और activity, कर्म और क्रिया में अंतर है। अहंकेन्द्रित जितनी हैं वे क्रियायें हैं। और आत्मा में से जो जन्म लेता है वह संपूर्ण कर्म है। इसलिये मैंने कहा कि धर्माचरण एक अलग आयाम है, जिसमेंसे मनुष्य सीख सकता है। लेकिन धर्माचरण और अध्यात्म एक नहीं हैं। तो, यह तो हेतुओं का साम्राज्य है। लोग कहते हैं कि बुरे हेतुओं को हटाओ, अच्छे हेतुओं को लाओ, यह सारा द्वैत का साम्राज्य है।

प्रश्न : उत्तर में ही प्रश्न को दोहरा दिया गया है।

उत्तर : कह रहे हैं कि स्मृति के बिना और भविष्य काल के सपने के बिना, नाम-रूप के बिना, किसी भी वस्तु को देखना कैसे संभव होता है ? क्या उसके लिये

खास अभ्यास करना पड़ता है ? क्योंकि आप जानते हैं न,-आज जो हम देखते हैं-बड़ी मज़े की चीज़ है -।

लोग समझते हैं 'हम देखते हैं' । 'हम सुनते हैं' । 'हम समझते है' । यह सब कुछ नहीं होता है । असल में 'इसका' नाम table है' यह बचपन से बतलाया गया है । इसलिये मैं इसको table कहती हूँ । यह table है कि नहीं-यह मुझको मालूम नहीं है । लेकिन वस्तुओं के आकार, प्रकार नाम और गुण-मेरे मस्तिष्क में बचपन से भर दिये गये हैं । इसलिये मैं उनको re-cognise करती हूँ, पहचानती हूँ । बुद्धि को यह आदत हो गई है बचपन से, और मेरे मातापिता को आदत थी, उनके माता-पिता को आदत थी, उनके माता-पिता को आदत थी, तो बुद्धि को ऐसा अभ्यास हो गया है । मातापिताओं की आदते भी तो बच्चों में उतरती हैं, पुरखों की उतरती हैं । जिस समाज में पैदा हुए हैं वहाँ की, ये सब आदतें लग गई हैं । तो, वस्तुओं के आकार, प्रकार, नाम, गुण-ये हमारे लिये पहले से ही सब निश्चित किये हुए हैं-तो, तमाशा तो यह है कि cognition का हमें मौक़ा ही नहीं मिलता है, हम सिर्फ़ re-cognise करते हैं । जिस प्रकार के संस्कार भर दिये गये हैं -उनके अनुसार हमारी पहचान है । अब ये सब आदि मानव से लेकर आज तक, सारे संसार में जो मानवीय जीवन का विकास हुआ है, उसमें जो अनंत अनंत संस्कारों की राशि- आज जो हम खड़े हैं जहाँ पर, उसमें भर दी गई है-वह हमारे भीतर पड़ी है । कुछ संस्कार चेतन मन में हैं । कुछ संस्कार अवचेतन मन में हैं । तो, यह re-congnition जहाँ तक है वहाँ तक cognition तो नहीं है । जहाँ तक आप वस्तुओं को आपको बतलाये गये नामों से और गुणों से अलंकृत करके ही देख सकते हैं, वहाँ तक आपका जो सत्य स्वरूप है उसका दर्शन नहीं होता । और अध्यात्म है नाम के, रूप के, गुणों के जितने वस्त्र हैं उनको उतार करके सत्य को अनावृत रूप में देखना । आप कहते हैं कैसे होगा ? यह कैसे होगा ?

तो पहले तो यह समझ में आने की चीज़ है, यह देखने की चीज़ है- इसका बोध, इसका प्रत्यय होना चाहिये कि मुझे देखना नहीं आता है । मुझे सुनना नहीं आता है । मुझे पहचानना नहीं आता है । मेरा जो उपकरण है-the instrument of perception is not equal to the task of perceiving. यह तो मालूम होना चाहिये न ! ऐसा गर्वहरण होता है भाई, एक बार जो अध्यात्म के रास्ते पर चल पड़ा

न, घमंड चूर-चूर हो जाता है। जिस मन के भरोसे चलना है, उस मन की मर्यादायें उसको दिखने लगती है--जिस बुद्धि के भरोसे जाने लगता है उस बुद्धि के दोष दिखने लगत हैं-बड़ी मुश्किल में मनुष्य आता है। पहले यह पहचानना चाहिए कि 'मैं जो कुछ देख रहा हूँ'-यह देखना मुझे आता नहीं है। नाम और रूप के बिना मैं देख नहीं सकता। विचार के बिना, हेतु के बिना मैं देख नहीं सकता। आप सोचिये, कल ही उठकर प्रयोग कीजिये कि सुबह से रात तक जितने व्यक्तियों से आप मिलेंगे, या जितनी वस्तुओं के साथ आपका संबंध आयेगा, उन वस्तुओं और व्यक्तियों के साथ आपका अहेतुक संबंध है कि सहेतुक संबंध है ? संसार से अल्प भी सुखेच्छा रहेगी, तब तक निर्हेतुक संबंध, व्यक्तियों से, वस्तुओं से, होता ही नहीं। क्योंकि हमको तो प्राप्त करना है, हर व्यक्ति से कुछ प्राप्त करना है। हर वस्तु से कुछ प्राप्त करना है। हम तो सब चारों तरफ कमाई की दृष्टि से देखते हैं और हेतु के चश्मे से जब देखते हैं न, तो फिर व्यक्ति का दर्शन नहीं होता-आप बैठे हैं न, लेकिन आपके दर्शन मैं नहीं कर पाती क्योंकि मेरे मनमें हेतु है कि मेरा जो संवाद चल रहा है आपको प्रिय लगे, फिर आपकी आँखों में और चेहरे में स्मित की झलक उठे यह सारा हेतु है-मुझे प्रतिसाद मिले, और response मिले, फिर response should be eloquent in the lines of your face - यह सारा हेतु मन में हो तो मैं आपको अवश्य देख नहीं सकती हूं। मैं तो अपना हेतु project करती हूँ आपके ऊपर। आपके साथ अन्याय करती हूँ। आप देखेंगे कि सुबह से रात तक, पति पत्नी के साथ, माँ-बाप बेटे के साथ, भाई-भाई के साथ, एक दूसरे को सचमुच देखता है या अपने हेतु और अपनी स्मृति में जो कुछ भरा हुआ है, उसके चश्मे लगा-लगाकर देखता है। तो फिर वैसा ही काला-हरा-पीला-लाल उसको दिखता है। तो पहली चीज़, एक बोध कि हम-देखना जानते नहीं- We do not know how to observe-do not know how to look at a thing.

यह जिस दिन मालूम होगा न, क्या हालत होगी मनुष्य की! कितनी नम्रता उसमें आयेगी। जब उसको मालूम होगा कि यह देखने का तरीका नहीं है, सत्य के स्पर्श का यह साधन नहीं है, तो साधन कैसे बनेगा ? तो मैं, हेतु रहित, without the motive, जी सकता हूँ या नहीं ?

आप कह रहे हैं न, कि अभ्यास का विषय है या नहीं ? अभ्यास तो बाद में आयेगा। पहले, जीवन में व्यक्तियों के और वस्तुओं के साथ हेतु-पूर्वक संबंध या

निर्हेतुक संबंध-इन दोनों के बीच मनुष्य को साहस करके देख लेना चाहिये । अब यहां पर एक बात और clear कर दूं, साफ कर दूं । नौकरी करते हैं-व्यापार करते हैं-घर में बैठे हैं- काम करना है- रसोई बनानी है- तो अब सब्ज़ी कितनी लेनी है, चावल कितने लेने हैं-यह तो देखना पड़ता है । कपड़े धोने हैं, साबुन कितना लेना है यह देखना पड़ता है । मैं इस बात में नहीं बोल रही हूं । इस विषय में नहीं बोल रही हूं । मैं यह कह रही हूँ कि जहां आपको किसी प्रकार का दायित्व नहीं है, किसी प्रकार की responsibility नहीं है आपके ऊपर-ऐसे क्षणों में भी आपका व्यक्तियों के और वस्तुओं के साथ जो संबंध आता है-वहाँ निर्हेतुकता से देखते हैं कि सहेतुक देखते हैं-इसका थोड़ा-सा प्रयोग करके देख लें । यह कहने का कारण है ' आप microscope रखिये । microscope के नीचे कोई एक वस्तु रख लीजिये । उसको आप आंख से देखें । शास्त्रज्ञों का कहना है-वैज्ञानिक, शास्त्रज्ञ यानी scientist अर्थ में बोल रही हूं-वैज्ञानिकों का कहना है कि जो व्यक्ति देख रहा है, उस व्यक्ति के जैसे विचार होंगे, उसका परिणाम microscope के नीचे रखे हुए पत्ते पर होता है- if you keep even a leaf of flower -वे कांपने लगते हैं । व्यक्ति क्रोधी हो-तो उसकी आंखों में से जो क्रोध के स्पंदन पहुँचते हैं दृष्टि में, उसके श्वासोच्छ्वास में से;- वह कांपने लगता है अपनी जगह । इस व्यक्ति की आँख के बदले microscope के साथ आप computer machine जोड़ दीजिये । तो, उसके जो पत्ते के vibrations हैं-स्पंदन हैं-वे अलग होंगे । इतना हमारे देखने का वस्तु पर परिणाम होता है । तो जहां हम देखने गये, वहां हमारे विकार और विचार उस पर थोपने गये । और वह कांपने लगा । उसका जो यथार्थ स्वरूप है-उसकी जो वास्तविकता है- वह दिख ही नहीं सकती है -क्योंकि निर्हेतुक, निर्विकार, निर्विचार दृष्टि नहीं है । यह पहले तो समझ में आना चाहिये न ! निर्विकारता और निर्विचारता का महत्त्व क्या है ? महत्त्व इसलिये है कि फिर आपके द्वारा किसी पर आक्रमण नहीं होगा । हिंसा नहीं होगी आप से । निर्विकारता और निर्विचारता ही अहिंसा है । जब तक विचार है तब तक हिंसा है । जब तक विकार है तब तक हिंसा है । क्योंकि ऐसे विकार में और विचार में व्यक्ति के श्वासोच्छ्वास, उसकी उपस्थिति, उसका हलन-चलन सभी का परिणाम होता है । यह चिंतन करके, यह समझ करके, जब चलने लगेंगे तो ऐसे क्षण आयेंगे कि २४ घण्टे में आधा घण्टा, एक घण्टा आप बैठेंगे तो, आप बुद्धि और मन को बिना उपयोग में

लाये देख सकेंगे । लेकिन यह यदि समझे नहीं हैं और फिर शरीर को स्वस्थ बैठा करके, आंख बंद करके, बैठे हैं-कुछ नहीं होगा । The pre-requisite of every step is the understanding of that step.

स्मृति, भूतकाल की,-उसके साथ हम क्यों खेलते हैं ? और भविष्य के सपने हम क्यों देखते हैं ? इसको समझना होगा । यानी मेरे मन में स्मृति नहीं आनी चाहिये-ऐसा उनका निषेध करके उनको हटाया नहीं जा सकता । लेकिन वहाँ मन क्यों दौड़ता है ? भविष्य भी उपस्थित नहीं है, भूतकाल भी उपस्थित नहीं है । फिर मेरा मन वर्तमान को देखने के बदले भूतकाल या भविष्य काल की ओर जाता क्यों है ? बच्चा जब खेलता है-खेलते समय उसको खाने पीने की याद नहीं । माँ बुलाती है दस बार-"बेटा, चल खाने, चल खाने ।" "आता हूँ, आता हूँ ।" खेल से प्रेम है न ! सिनेमा देखने के लिये आजकल के लड़कों को, लड़कियों को भेजिये । खूब Suspense का खेल है, ऐसे tensions हैं ! भेजिये उनको ! वहाँ उनको कुछ नहीं याद आयेगा । और school की किताब उनके हाथ में दे दीजिये । फिर तो भूतकाल की स्मृति भी और भविष्य काल के सपने भी brooding over the past and dreaming over the future किताब दे दीजिये हाथ में कि शुरू । क्योंकि किताब से प्रेम नहीं है । यदि एक दूसरे से प्रेम करने वाले यानी एक दूसरे से प्रेम जिनको है-ऐसे व्यक्ति बैठेंगे तो भूतकाल को और भविष्य काल को वहाँ प्रवेश नहीं है । हमारे जीवन में इनको प्रवेश मिलता है इसका मतलब है-वर्तमान से हमें प्रेम नहीं है । वर्तमान में हमे आनन्द नहीं है-इसलिये पलायन करते हैं, कभी भूतकाल की गुफा में और कभी भविष्य-काल की । जिसको वर्तमान में आनन्द आता है, उसका मन तो आता ही नहीं न ! उपन्यास दे दीजिये-नवलकथा दे दीजिये किसी को पढ़ने के लिये । रातभर बैठकर पढ़ जायेंगा । शुरू किया है तो खत्म करेंगे ही ।

उसे खत्म किये बिना सोयेंगे नहीं । उस समय फिर दूसरे दिन कहेंगे कि थकान नहीं आई है मुझे । क्योंकि उसके पसंद की किताब थी न ! और वही, परीक्षा है दूसरे दिन, विषय तैयार करना है । पढ़ना है तो चार बार माँ के पास चाय-कॉफी माँगेगा-ऐसा बोझ हो गया है । जिस को जीवन से और जीने से प्रेम है, उसकी कुरूपता, कदरूपता, सुन्दरता-उसके सुख, उसके दुःख, उसकी तीक्ष्णता, उसकी कोमलता;-जीवन की समग्रता में जिसको जीवन से प्रेम है वह भूतकाल में जायेगा नहीं और भविष्य में

आश्रय खोजता नहीं है । वह वर्तमान के प्रत्येक क्षण की मुठ्ठी में जो प्रभु का सन्देश है, उसको देख-देखकर खुश रहता है । तो पहली चीज़ मैंने आपको बताई और दूसरी यह चीज़ बतलाती हूँ कि देखना चाहिये कि जीवन से हमें प्रेम है या नहीं । यह जो जीवन मिला है,- या तो जन्म हुआ ही है, मरते नहीं हैं-तो चले जा रहे हैं जीते-जीते,-वह जीना नहीं है । मरते नहीं हैं, इसलिए शरीर को घसीटते चल रहे हैं-प्राण जाने के बाद चार लोग कंधे पर उठाकर ले जाते हैं और हम दो पाँव पर उसको घसीटते हैं । यह शवयात्रा है-यह शिवयात्रा नहीं है । तो सोचने का, देखने का सवाल यह है-Do we love life ? जीवन से मुहब्बत है या नहीं ? जीवन से प्रेम है या नहीं ? यह जीवन क्या है ? और यदि जीवनकी समग्रता से प्रेम नहीं है, और मैं चाहूँगा वैसा जीवन मुझे मिलना चाहिये मुझे पसंद है ऐसे मित्र मिलने चाहिये, मैं खुश रह सकता हूँ ऐसी परिस्थिति बनानी चाहिये, 'मैं, मैं चाहता हूँ' ऐसा-यानी जीवन का dictator यदि मैं बन जाता हूँ । तब तो, ऐसा व्यक्ति जो है-वह क्या करेगा ? जीवन की समग्रता को छोड़कर उसके किसी अंश को पकड़ लेगा । सुन्दरता का प्रेम, सौन्दर्य का प्रेम यानी कदरूपता से नफरत और घृणा यदि है-तो उसके जैसा अरसिक व्यक्ति नहीं । मुझे जो पसन्द है, मेरी जो choice पसंदगी-है, मेरी पसंदगी की वस्तुयें, मेरी पसन्दगी के व्यक्ति, मेरी पसन्दगी का वातावरण- यह खोजने वाले जो हैं-वे जीवन के प्रेमी तो नहीं है -वे जीवन का अनादर करते हैं । सामने जो आया, उसका अर्थ समझकर जीना ही जीना है ।

जीवन से एक बार प्रेम हो जाय, ऐसे व्यक्ति को फिर पलायन की आवश्यकता नहीं रहेगी । लेकिन किसको प्रेम है जीवन से ! और जीवन ही प्रभु है । जीवन से बाहर कहीं प्रभु नहीं है । सुन्दरता में भी प्रभु की आँखों की झलक है, तो कदरूपता में भी प्रभु का निःश्वास हैं । जिसको आप सज्जन कहते हैं उसके सौजन्य में यदि प्रभु की उपस्थिति का सौरभ-तो जिसको दुर्जन कहते हैं उसमें भी कन्दर्प (प्याज़) की बू भरी हुई है ।

(क) प्रात:काल संवाद दिनांक-२१-१-१९६८

आँख है, रूप का भोग कर लिया। श्रुति है, श्रुति से नाद का भोग किया; घ्राण है, गंध का भोग किया। गुजराती भाषा में भोग शब्द का प्रयोग होता है। तो आप लोग, जब भोग शब्द का प्रयोग होगा, तो उसका हिन्दी में जो आशय है, connotation है-उतना ध्यान में रखें।

यह मान लिया कि मन से और बुद्धि से, जो इन्द्रियों के अतीत सृष्टि है, उसका उपभोग करना अध्यात्म है। Passion for the transcedental experiences is not spirituality. अतीन्द्रिय अनुभूतियों की आकांक्षा और अभिलाषा अध्यात्म नहीं है।

यह समझने की बहुत आवश्यकता है। क्योंकि अध्यात्म के नाम पर उन अनुभूतियों के पीछे आदमी दौड़ता रहता है। यानी इन्द्रियो के प्राकृत जीवन से ऊपर उठ कर वह अतीन्द्रिय सृष्टि में अपने अहंकार को लेकर विचरण करता है। घूमता रहता है अनुभूतियों की खोज में।

आप देखेंगे। थोड़ी भी रुचि जिसकी सत्य की ओर हो गई है; थोड़ी भी रुचि आत्मा की ओर हो गई; ऐसे सत्याभिमुख और आत्माभिमुख लोग अतीन्द्रिय सृष्टि में खो जाते हैं। यानी इन्द्रियों के उपभोग जो करते हैं, उनका नशा तो क्षणिक है। इसलिये उस नशे से मुक्त होना कठिन नहीं। लेकिन अतीन्द्रिय सृष्टि में जो अनुभूतियाँ आती हैं, उनका नशा काफी देर तक चलता रहता है। और उस नशे में झूमने वाले, उस मस्ती में फँसने वाले कितने ही साधक नज़र आते हैं। तो जहाँ तक अनुभूति की संभावना है, अनुभव लेने वाला मौजूद है, उपस्थित, -समझ लेना कि वह प्रदेश अध्यात्म का नहीं है।

कल कहा गया था कि धर्म के क्षेत्र में मानसिक क्रिया के लिये अवकाश है, अध्यात्म में समस्त मानसिक क्रियाओं के शांत होने की आवश्यकता है। लेकिन लोग कहते हैं-"मैं ध्यान करने बैठा, और मुझे नाद सुनाई दिया।" तुमने ख़ाक ध्यान

किया भाई ! "मैं ध्यान करने बैठा, और मुझे कृष्ण की मूर्ति दिखी। ईसा दिखे। बुद्ध का साक्षात्कार हुआ।" अरे, मन का खेल था रे ! रूप है, आकार है, नाद है, गंध है-इनकी अनुभूतियाँ तूने अतीन्द्रिय क्षेत्र में कीं।

कल जैसा कहा गया था प्रारम्भ में-ये सभायें प्रतिपादन की सभायें नहीं हैं। आत्म-साक्षात्कार, आत्मरति, प्रतिपादन का विषय नहीं है। इसमें संवाद हो सकता है। लेकिन प्रतिपादन नहीं। प्रतिपादन बुद्धि की मदद से, तर्क के सहारे, भूतकाल में घटित घटनाओं के आधार पर हो सकता है। लेकिन फिर आपने आत्मा को और आत्मदशा को भी बुद्धि का विषय बना लिया-जो वह है ही नहीं। इसलिये जो यहाँ कहा जायेगा-या कहा जा रहा है-उसे प्रतिपादन के अर्थ में मत लीजियेगा। इसीलिये कल रात को शङ्कराचार्य के या पतञ्जलि के प्रश्न उपस्थित होने पर कहा गया कि इस प्रकार की चर्चा यहाँ नहीं होगी। यहाँ किसी विषय का प्रतिपादन करके किसी के परिवर्तन की अभिसंधि रखकर हम नहीं आये हैं।

सब से बहुत विनम्र अनुरोध है कि वे इस भ्रम को हटा दें कि अध्यात्म में मानसिक कर्म के लिये अवकाश है; कुछ प्राप्त करने का है, कुछ अनुभव करने का है। आत्मसाक्षात्कार प्राप्त नहीं करना पड़ता। आत्मा का अनुभव करना नहीं पड़ता है। अनुभव करना, अनुभूति को प्राप्त करना-यह सब मन के स्तर पर खेलना हुआ। It is a mental activity. ऐंद्रिय अनुभूति हो या इन्द्रियातीत अनुभूति करते हों; जहाँ तक अनुभूति है, वहाँ अनुभूति करने वाला, अनुभव लेने वाला अहंकार उपस्थित है। उसके स्थूल विषयों को हटा दिया और सूक्ष्म अव्यक्त सृष्टि को उपभोग का विषय बना लिया। आप यह न समझें कि जितना व्यक्त है और इन्द्रियगोचर है उतना ही जगत् है। यह न समझें। यह व्यक्त की छायामात्र है। तो व्यक्त सृष्टि से हट कर जब अव्यक्त में प्रवेश करते हैं, तो अनन्त प्रकार अनुभूतियाँ होती हैं। लेकिन उन अनुभूतियों का आत्मसाक्षात्कार से, निर्वाण से, मुक्ति से, आत्मदशा से, साक्षित्व से कोई सम्बन्ध नहीं है। साक्षित्व में अनुभव कौन करेगा ? कर्तृत्व की भावना न हो, और कर्ता उपस्थित न हो तो,-भोक्ता उपस्थित न हो तो-अनुभव कौन करेगा ?

लेकिन इस देश में लोग समझते है कि जिनको कुछ अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ होती हैं-वे लोग आध्यात्मिक हैं। हम लोग अपनी शक्तियों का विकास नहीं करते हैं। और कुछ लोग उन शक्तियों का विकास कर लेते हैं। यहाँ बैठे देहली में क्या हो रहा

है, लंदन में क्या हो रहा है, देख लिया- clair-voyance । सुन लिया कलकत्ता में क्या होता है- clair-audience । अब ये दूरश्रवण और दूरदर्शन जो हैं इन से ही लोग समझते हैं-ओहो ! बड़ा पहुँचा हुआ पुरुष है ! यहाँ बैठे-बैठे कलकत्ते का हाल देख लिया ! उसको कृष्ण का सगुण साक्षात्कार हुआ । बहुत पहुँचा हुआ । उसने भगवान् महावीर के दर्शन किये हैं ! गौतम बुद्ध के दर्शन किये हैं ! भाई किये होंगे । सिनेमा के नट-नटियों को देखने के बदले उनको देखना-यह तो अच्छा, सात्त्विक विषय हुआ । लेकिन वह अध्यात्म नहीं है । आत्मा के क्षेत्र में अनुभूति को अवकाश नहीं । आत्मा के क्षेत्र में कुछ प्राप्तव्य नहीं, कुछ कर्तव्य नहीं । यह बोध जब तक स्पष्ट नहीं होगा, साधना शुरू ही नहीं होती है । क्योंकि कदम ग़लत रास्ते पर पड़ते हैं ।

और फिर ''मुझे अनुभव हुआ,-नाद का रूप का, गंध का; दूसरे को नहीं हुआ''-तो अहंकार पुष्ट होता जाता है-पुष्ट होता जाता है !

घोर संसार में फंसे हुए कम से कम इतना तो जानते हैं कि हम फंसे हैं । अतीन्द्रिय अनुभूतियों में अटके हुए लोग यह भी नहीं जानते हैं कि हम फँसे हुए हैं । तो फिर उनका जो अहं-पवित्रवाद है- Self-righteousness-Obsession of self-righteousness-बढ़ता जाता है । उनक जिन अचेतन मन की शक्तियों का उन्होंने विकास किया है, उन शक्तियों के सहारे दूसरे अज्ञानी लोगों का शोषण करते हैं और अध्यात्म एक व्यवसाय बन जाता है Professional spiritualists । कोई पैसे के सहारे शोषण करता है । कोई सत्ता के सहारे शोषण करता है । कोई विद्वत्ता के सहारे शोषण करता है और इस देश में अतीन्द्रिय अनुभूतियों के आधार पर शोषण करने वालों का भी एक वर्ग खड़ा हो गया है, एक जमात खड़ी हो गई है ।

सत्याभिमुख और आत्माभिमुख लोगों को जमात से सावधान रहने की बहुत आवश्यकता है । लेकिन क्या करें ! हम इतने लालची लोग हैं, इतने लोभी लोग हैं कि हमने यही मान लिया है कि 'हम आत्मा का अनुभव प्राप्त करें' । ''आप को कुछ अनुभव हुआ ?''-लोग पूछते हैं । यानी अनुभव का होना ही 'पुरावा' (गुजराती में सबूत-) हो गया !

तो आज के प्रात:काल पहला निवेदन यह है कि अध्यात्म मानसिक कर्म का विषय नहीं है-इसको साफ़ समझ लें ।

धार्मिक कर्मों में, कृत्यों में, आप पूजा करते हैं। चंदन लेंगे, पुष्प लेंगे, पूजा करेंगे; कीजिये। उपासना में माला चढ़ायेंगे, चरण छूयेंगे। यह उपासना है। और आप जानते हैं कि अध्यास के बिना उपासना होती नहीं है। किसी पर किसी का आरोप करना। निर्गुण निराकार पर सगुण साकार का हम आरोप करते हैं, उपासना के लिये मूर्तियों का निर्माण करते हैं-वह भी एक तरीक़ा है। लेकिन उपासना अध्यात्म नहीं है। 'चित्तशुद्धयर्थ कर्माणि' । कर्म का प्रयोजन चित्त-शुद्धि है। फिर वे होम-हवन करते हैं, मंदिर में जाकर पूजा करते हैं या जप करते हैं-जप भी कर्म है, उसका प्रयोजन सिवा चित्त-शुद्धि के और कुछ नहीं। और चित्त-शुद्धि यानी ? चित्त में उठने वाली वृत्तियों की शुद्धि। जितनी वृत्तियाँ चित्त में उठती हैं, उनका परिमार्जन उपासना के द्वारा हो सकता है। लेकिन भावनाओं का परिमार्जन अध्यात्म नहीं है। विचारों की परिष्कृति अध्यात्म नहीं है। वहाँ तो निर्विचार की अवस्था है। वहाँ तो भावनाएँ शांत हो जाने पर महाभाव का उद्भव है।

इसलिये अध्यात्म को मानसिक कर्म का विषय न समझें। यह सौ बार दुहराने की इच्छा होती है। नहीं तो लोग कहेंगे-ध्यान कैसे करते हैं ? अरे भाई, ध्यान भी करने का विषय हो जाय, तब तो मुसीबत का कोई पार नहीं। पूजा की जा सकती है, ध्यान किया कैसे जाय ! प्रार्थना की जा सकती है। जहां तक वाणी का व्यापार और मन का व्यापार चल सकता है, इन्द्रियों का व्यापार चल सकता है, वहां तक कर्म है। जहाँ यह कहा जा रहा है कि मन के द्वारा आत्मा की उपलब्धि नहीं हो सकती, वहां फिर पूछते हैं, 'ध्यान कैसे करें ! और फिर ध्यान की प्रक्रिया क्या होगी ! और ध्यान की प्रक्रिया हम सिखाते हैं या आप हमको सिखाइये !' ये सब जो अनुचित, ग़लत प्रश्न हैं- वे सब उपस्थित क्यों होते हैं ? क्योंकि अधिष्ठान में एक भ्रम है, एक ग़लत धारणा है कि मानसिक कर्म के द्वारा आत्मा की उपलब्धि हो सकती है।

बहुत विनम्रता से इस तथ्य को ग्रहण करना चाहिये कि तन में रहते हुए, मन के द्वारा हम जीते हैं। The via-media of existence for us is mental action. हमको अभी तक जो मन से परे जीवन है, इस जीवन का परिचय नहीं है। इसलिये हम जी रहे हैं सुबह से रात तक मन के द्वारा। मन के माध्यम से। और इस माध्यम के द्वारा हम आत्मा को उपलब्ध करना चाहते हैं। वह नहीं होगा, वह कभी नहीं होगा।

अतीन्द्रिय सृष्टि में क्या-क्या घटित होता है और अतीन्द्रिय क्षेत्र की अनुभूतियाँ कितनी मधुर होती हैं, कितनी मादक होती हैं, इसका वर्णन तो बड़ा रोचक लगेगा, आप लोगों को । मैं उसका वर्णन करने लगूं तो, बड़ा मधुर भी लगेगा, लेकिन उस वर्णन में समय का अपव्यय करना-मैं समझती हूँ कि-कोई आवश्यक नहीं । बम्बई जा रहे हैं । आप सावधान हैं । मन का कान के साथ और आँख के साथ संबंध बना है, मन उपस्थित है कान में, आंख में, नाक में, तो अहमदाबाद से बम्बई तक की यात्रा में दोनों तरफ जो दिखेगा, वह आपकी आँख देखेगी । जो शब्द सुनाई पड़ेंगे, कान सुनेगा । लेकिन बम्बई जाते हुए आप दोनों तरफ के दृश्यों में खो नहीं जायेंगे कि यह दृश्य अच्छा है, इसलिये अब यहाँ उतर जाओ ! आप कहेंगे नहीं, जाना तो बम्बई है । दृश्यों को देखेंगे । इस प्रकार जो बहिर्मुख दृष्टि को अंतर्मुख बनाते हैं, और अन्तर्यात्रा पर चल पड़ते हैं उन्हे अतीन्द्रिय सृष्टि में से होकर गुज़रना पडता है; तो वे अनुभूतियाँ आयेंगी । लेकिन वहाँ रुकना नहीं है । वहाँ फँसना नहीं है । और भूल से उनको आत्मा की अनुभूति समझना नहीं है ।

तो फिर क्या करना है ? करना यह है कि मानसिक क्रियाओं को शान्त होने का अवसर देना चाहिये । यही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है । मानसिक क्रियाओं को शान्त होने का अवसर देना-परम पुरुषार्थ है । साहस इसमें बहुत आवश्यक है । लोगों ने सोचा, कि अच्छा, मन से नहीं मिलता है, तो हम मन से लड़ेंगे- हम मन से संघर्ष करेंगे । मन को हम दबायेंगे । मन को कुचलेंगे ! मन में उठने वाले विचारों को और विकारों को हम यम-नियमों के द्वारा दबा देंगे ।

सदियाँ बीत गई । शायद सहस्रावधि वर्ष पश्चिम में और पूरब में हो गये हैं । मानव लड़ता रहा, मन से । मन को न कोई मार सका है, न कोई जीत सका है । और जिन्होंने मन को मार डाला, उनके व्यक्तित्व में कुंठा उत्पन्न हो गई, -कुंठित-क्षतविक्षत जीवन हो गया ।

तो क्या करें ? मन के द्वारा यदि होता नहीं है तो मन के साथ क्या करें ? तो कृपा करके, मन को शत्रु न समझें । मानसिक विकार या विचार संघर्ष करने की वस्तु नहीं है । संघर्ष करने लगेंगे तो होता क्या है ? आप ज़रा थोड़ा ध्यान दें कि शतकानुशतक, आदि मानव से लेकर आज तक आप के मन में और बुद्धि में जो संस्कार भर दिये गये हैं- computer में, electronic brain में, you feed in the information.

In the same way. conditionings have been fed in the human brain, ये सारे के सारे मस्तिष्क में भरे हुए संस्कार हैं, इनका अपना एक momentum, इनकी अपनी एक गति है । तो आप चेतन मन के सहारे अचेतन के साथ लड़ने लगेंगे । यानि बुद्धि की मदद से अचेतन मन के साथ आप लड़ने लगेंगे । जिन क्षण आप मन को शत्रु समझेंगे उस क्षण आप संघर्ष में उतरेंगे । और आपके पक्ष में कौन है ? आप की बुद्धि है; उसकी विचार करने की शक्ति है । और उधर ? उधर है जन्मजन्मान्तर, यानी मानव के जन्म-जन्मान्तर कह रही हूं-आप लोग अपने को भले ही समझ लें कि मैं एक व्यक्ति हूँ । आप और हम कुछ नहीं हैं । वैश्विक चेतना की उत्क्रान्ति में कड़ियां हैं। न इस शरीर में हमारा अपना कुछ है, न मन और बुद्धि में कुछ अपना है । जो transmit होता हुआ आया है, पीढ़ी-दर-पीढ़, जो हम लोगों को दिया गया है, उसका पुंज मात्र है ।

आप अपने अहंकार और बुद्धि की मदद से अचेतन में पड़े हुए संस्कार-पुंज के साथ, संस्कार-भण्डार के साथ संस्कारकेन्द्र के साथ अब लड़ने पर उतर गये । और देखा होगा कि उन विकारों को, उन विचारों को दबाने वाले एक क्षेत्र में दबाते हैं, तो दूसरे क्षेत्र में विकार दूसरे रूप से खड़ा हो जाता है । काम को दबाने गये तो क्रोध के रूप में काम ही धधक उठा । इसलिये आपने देखा होगा कि अध्यात्म के नाम पर साधना करने वाले साधकों में, ब्रह्मचारियों में, संन्यासियों में, मठों में बैठने वाले, मन्दिरो में बैठने वाले महन्तों में, मुनियों में अहंकार का दर्प इतना आता है, -कि उनके श्वास से हम झुलस जाते हैं । उनके पास बैठने पर श्वासोच्छ्वास से झुलस जाते हैं । अन्तरंग झुलस जाता है । क्योंकि उन्होंने कहीं-न-कहीं संघर्ष करके, किसी न किसी तत्त्व को अपने भीतर दबाने का, निग्रह से, आत्मपीड़न से, प्रयत्न किया । वहां दब गया, दूसरे रूप में फूट पड़ा । फिर घर और गृहस्थी नहीं, तो मठ और मन्दिर, और आश्रम और संस्था और केन्द्र... । अहंकार बड़ा चतुर है मेरे भाईयो । बड़ा चतुर, बड़ा कुशल । वह अपने लिये क्षेत्र बना लेगा । विवाह नहीं करते हैं और घर नहीं बसाते हैं तो चलो, मैं तुमसे आश्रम बनवा लूं । And the sense of belonging - Someone belongs to me and I belong to them-मेरे भी कोई हैं और मैं भी किसी का हूँ ! मेरी विचार-पद्धति और जीवन-पद्धति के अनुसार चलने-वाले मैंने तैय्यार किये । लेकिन अहंकार तो बैठा ही है ।

'मैंने इतने लोगों का परिवर्तन किया।' ओ हो हो हो। अहंकार को दूसरों के साथ लड़ने के लिये और विजय प्राप्त करने के लिये स्थूल क्षेत्र मिल गया। Gratification of ego whether it is in the sensual world or in the transcendental world is not spirituality at all.

मन के साथ लड़ा नहीं जाता। मन के साथ लड़ेंगे, संघर्ष करेंगे तो अहंकार कोई न कोई क्षेत्र खड़ा कर देगा जहाँ वह विकार और विचार आकार अपना राज्य फिरसे स्थापित करे। ऐसा न होता, मित्रो, तो संप्रदाय नहीं बनते, तथा संप्रदायों की स्पर्धा और प्रतिस्पर्धा नहीं चलती। धर्म को institutionalised [संस्थागत] करने वालों ने पाप किया होगा तो अध्यात्म को संस्था का रूप देनेवाले महापाप करते हैं। Organising and institutionalising spirituality is a crime which cannot be wiped; there is no Ganges with which you can wipe that crime, that sin.

[अध्यात्म को संगठन का, संस्था का रूप देना ऐसा अपराध है जो कभी धुल नहीं सकता। ऐसी कोई गंगा नहीं है जो उस अपराध को, पाप को धो सके।]

निवेदन यह था कि मन से लड़ा नहीं जाता है। आपने देखा है - जितने व्रत करने वाले, नियम करने वाले लोग हैं उनको ज़रा, अगर आप कह सकें तो कहें कि अपने आप को ज़रा बारीकी से देखें, सूक्ष्मता से देखें। उनका अहंकार क्या-क्या उनके साथ करता है यह देखें। मैंने ब्रह्मचर्य धारण किया, मैंने संन्यास धारण किया। मैंने त्याग किया है। मैंने बाधा ली है। और वह त्याग करने का जो कर्म है - उसी का अहंकार। 'येन त्यजसि तत् त्यज' इसलिये जिस मन के द्वारा तू त्याग करता है रे, उस मन को ही तू छोड़ डाल। तो मन के साथ लड़ने से आप मन के स्तर पर ही रहेंगे। यानी अचेतन मन की कर्म-परम्परा एक प्रकार की, और चेतनमन की कर्म-परम्परा संघर्ष के लिये दूसरे प्रकार की। अब व्यक्तित्व छिन्नविछिन्न होकर बंट गया, दो हिस्सों में। एक- The momentum of the unconscious और दूसरा momentum of the conscious mind. तो अचेतन मन की, संस्कारों की जो गति हैं-उस गति को रोकने के लिये, मोड़ने के लिये आपने चेतन मन में एक artificial-एक कृत्रिम गति निर्माण की। संकल्प, प्रतिज्ञा, व्रत नियम, यम-सब निर्माण किये। यह जो चेतन मन

के स्तर पर निर्माण होता है इसको कहा जाता है- आदर्श और ध्येय । अचेतन मन में जो पड़ा हुआ है यह तथ्य है आपके जीवन का । और जो नया निर्माण किया है, नयी गति, उन्माद, नया आवेश, नया अभिनिवेश-वह है आदर्श का । फिर आदर्शों के सहारे तथ्य से लड़ने जाते हैं । और जीवन भर संघर्ष चलता रहता है । ऐसे संघर्ष में जी नहीं पाते है, तनाव को लेकर । यानी पूरे व्यक्तित्व में एक प्रकार का तनाव आ जाता है । तो तनाव को लेकर जीने वाले जी नहीं पाते, क्योंकि जीवन सहजता में है । प्रयास में नहीं ।

जीवन सहज है जी, जीवन सरल है । और प्रयास जटिलता को लाता है, complexity को लाता है । इसलिये कहा कि मन से लड़ना नहीं है । फिर मन के साथ क्या करना है, भाई ? उसको जीतना नहीं है, उससे लड़ना नहीं है । और उसके द्वारा आत्मा की उपलब्धि नहीं होती है तो क्या करना है ?

'करना' यह है कि पहले यह जो मन है उसके साथ परिचय प्राप्त करना है । अभी तक आपका जो मन के साथ परिचय है ग्रन्थों के द्वारा है । पुस्तकों में पढ़ा है, साधुओं से सुना है - इस लिये आपने मान लिया मन है, और मन में उठने वाली जो वृत्तियाँ हैं उनकी जानकारी संगृहीत करके रखी है । मन को कभी देखा है आपने ? आपके पास है फुर्सत मन को देखने की ?

मन में विषाद उठा । विषाद की वृत्ति उठी । यानी मन ही विषादाकार हो गया । तो यह विषाद क्या वस्तु है ? कभी अपने मन से पूछा-हे मेरे मित्र, यह क्रोध क्या वस्तु है ? यह क्यों उठा भाई ? कभी देखा है कि यह क्रोध उठा तो उठा कहाँ से और सारा चित्त क्रोधाकार कैसे हो गया ? और फिर इस क्रोध के उठते ही मेरे सारे शरीर पर bio-chemical परिणाम क्या-क्या हो गया, उष्णता कैसे बढी, आँखे कैसे लाल हुई, नसों में तनाव कैसे आया, वाणी का संयम कैसे छूटा, -ओ हो हो हो, पल भर में, temporary insanity (अस्थायी पागलपन) पर आ गया ।

कभी देखा है ? दिन में दस बार क्रोध आता होगा । लेकिन मन से कभी आपने नहीं पूछा होगा कि-''भैया, हे मेरे मित्र, हे मेरे प्यारे सखा, यह क्या हो गया मुझे ?'' कभी मन के लिये करुणा आयी आपके मन में ? कभी अपने मन से मैत्री की आपने ? प्रेम किया है अपने मन से ?

बेचारे के बारे में ग्रन्थों में पढ़ा सुना, लेकिन उसको देखा नहीं कभी, दर्पण में तन को खूब देखतो हो। कभी ध्यान के दर्पण में मन को भी देखा ?वह फुर्सत नहीं है।

"तो क्या, हमको क्रोध आयेगा तो वहां उसी क्षण हम रुक जायेंगे ? और मन के क्रोध को देखेंगे ?हमको तो काम करना है।" करो भाई ! किये जाओ, किये जाओ ! और जीने के नाम पर अपने शव को ढोये जाओ, ढोये जाओ !

यह जीवन नहीं है। तो, पहले मन से परिचय कर लेना चाहिये। कभी किया है ? कि सोते हैं तो यह मन शांत क्यों नहीं रहता ? यह सपने क्यों दिखाता है ? यह क्यों काम करता है ? यह स्वप्न क्या चीज़ है ? स्वप्न कहां से आता है ? कभी घड़ी भर शान्ति से बैठे हैं ? और आपने देखा कि मन में क्यां-क्या उठता है ? एक विचार उठा, दूसरा विचार उठा, तीसरा उठा। उनका duration (अवधि) क्या है ? उनकी frequency (आवृत्ति) क्या है ? objects of thought (विषय) क्या हैं ? कभी पूछा ?-देखा ?

शरीर को सजाने के लिये सबके पास समय है। शरीर को खिलाने पिलाने के लिये तो दुनिया की सारी कोशिशें हैं। लेकिन आपके जीवन में सबसे उपक्षित कोई तत्त्व है तो आपका मन है। और बिना सोचे-समझे, बिना उसको देखे, उस ग़रीब के साथ सब लड़ने पर उतरते हैं धर्म और अध्यात्म के नाम पर। इतना बेक़सूर, इतना बेगुनाह, ऐसा मासूम, ऐसा निरीह मन है-उसी से लड़ने लगे। बेजुबां जो है। चाहे जितनी शिकायत करो, प्रतिवाद तो कर नहीं पायेगा।

इसलिये पहले उससे परिचय प्राप्त करना चाहिये। कितने स्तरों पर मन एक साथ काम करता है ? सुबह से रात तक जो आप जीते हैं तो चेतन स्तर पर क्या होता है-उनमें विसंवाद है, विसंगति है, विरोध है, कि संगति है ? समन्वय है, सामञ्जस्य है ? देखना चाहिये।

पहले देखो तो सही। मन में कोई वृत्ति उठी कि उस वृत्ति को सुना हुआ नाम देकर उसकी निन्दा न करो या प्रशंसा न करो। यही तो मैं कह रही हूँ कि चित्त में उठने वाली वृत्तियों को, बिना उनकी प्रशंसा किये और बिना उनकी निन्दा किये, ज़रा देखो तो सही। ये जो स्पंदन, ये जो vibration उठते हैं, इनको देखना है। तो यह मन से

परिचय पाने का मतलब क्या है ? Psychology की किताब उठा करके chapters on mind and I-consciousness पढ़ना, यह परिचय नहीं है । फिर 'ज़ेन-बुद्धिस्ट' क्या कहता है मन के ऊपर, और 'पतंजलि का योग शास्त्र, मन के बारे में क्या कहता है ! और 'चित्त-वृत्ति-निरोध किस प्रकार बतलाया गया है' - psychology की किताबें पढ़ना मन का परिचय पाना नहीं है । मन जब गतिमान है - In the very movement of mind, observe it, मन की जब गति चलती है दिन भर में, उस गति में उसको देखो ।

इसलिये ध्यान कभी चौबीस घण्टे में आधा घण्टा बैठकर करने की क्रिया नहीं है, ध्यान तो एक जीवन के प्रति द्रष्टिकोण और अवस्था है, दर्शक की, द्रष्टा की । साक्षित्व की, द्रष्टा की अवस्था में रहना ध्यानावस्था है । घड़ी, आधी घड़ी, कमरा बंद करके, कुछ अतीन्द्रित अनुभूतियों का आस्वाद लेना ध्यान करना नहीं है । ध्यान एक अवस्था है जी ! ध्यान एक दशा है । जिस दशा में प्रवेश होने के बाद निवृत्ति नहीं है । बच्चा है, जवान हो गया । अब आप कहेंगे, फिर से बच्चा हो जाओ । तुम बालक थे, और बालक से युवावस्था मेन आ गये हो, अब बालावस्था में वापस चले आओ । युवावस्था से कोई निवृत्ति है ? युवावस्था में से निवृत्ति नहीं है-क्योंकि बालक से जब युवक बना, it was a total growth, (समग्रता को लेकर बढ़त हुई थी) इसी प्रकार ध्यानावस्था समस्त व्यक्तित्व का विकास है, परिपाक है । It is a kind of maturity into which you grow. फिर ध्यान का लगना और छूटना और ये सब जो शब्द-प्रयोग हैं, असम्बद्धहो जाते हैं । They are irrelevant to the state of meditation. Meditation is not an action. It is the state of total being. समस्त व्यक्तित्व की एक अवस्था का नाम, एक दशा का नाम ध्यान है, वह कोई क्रिया नहीं है ।

तो मैं कह रही थी कि प्रारम्भ करना है तो मन का परिचय पा लेना चाहिये और सुबह से रात तक फिर आपको सावधान रहना पड़ेगा कि यह मन करता क्या है ? क्या करता है और कैसे करता है, इसको देखना है । प्रयोग करके आप देखिये । आप देखेंगे तो पता चलेगा कि जिस पल में क्रोध उठा, द्वेष उठा, ईर्ष्या उठी, किसी प्रकार की वृत्ति-अब मैं वृत्तियों के नाम ले रही हूं, जो आपके परिचित हैं । असल में वृत्तियों में न क्रोध है, न द्वेष है, न ईर्ष्या है, लेकिन फिर भी वे नाम ले रही हूं जो

आपके परिचित हैं । तो ईर्ष्या उठी । अब ईर्ष्या उठने के बाद आपने देखा कि ईर्ष्या उठ रही है । अवधान के आलोक में विकार को लाने के बाद विकार की आधी शक्ति ख़त्म हो जाती है । आप करके देखिये । लोग कहते हैं, हाँ, देखा । देखने से क्या होगा ? और जब कहेंगे कि चार आने खर्च करने पर तुझे चार रुपये मिलेंगे तो हम करके देखेंगे । नहीं तो नहीं देखेंगे । अवधान के आलोक में विचार या विकार को लाने से उस विचार या विकार की जो शक्ति है, और गति है-वह आधी कम हो जाती है । घट जाती है । अनवधान के अंधकार में विकारों की पुष्टि है, अवधान के आलोक में उनका क्षय है ।

पहले उनको देखना चाहिये । यह नहीं कि 'तुम बुरे हो तुम हट जाओ यहाँ से ।' यह मत कहिये । 'हट जाओ' कहने से वे अपने पाँव और जमाकर खड़े हो जायेंगे । 'तुम यहाँ से हट जाओ'-यह कहने से काम नहीं चलता । ऐसा क्यों है ? आपके ध्यान में बात आयी ? क्योंकि 'तुम यहाँ से हट जाओ' कहने के लिये मन के एक हिस्से को लेकर मानसिक क्रिया करनी पड़ती है । 'हट जाओ' कहना पड़ता है ।

मैं न कहती हूँ कि उसका स्वीकार करो और न ही कहती हूँ कि उसका त्याग करो या निषेध करो । सिर्फ कहती हूँ कि देखो तो सही ! मन के साथ परिचय और मैत्री होने के लिये मन की क्रियाओं को पहले देखना चाहिये । Firsthand discovery of every movement to the mind. फिर आप देखेंगे कि आपके मन में, आपको जो मालूम नहीं है ऐसी कितनी ही वासनायें, कितने ही विकार, कितना ही ऐसा कूड़ा-कर्कट, कचरा भरा पड़ा है जिसको लेकर जी रहे हैं । अभी हमको मालूम नहीं है । आपने और हमने अपनी एक प्रतिमा (image) बना ली है 'हम अच्छे हैं ! हम सुसभ्य हैं ! हम भले हैं ! हम जानते हैं कि प्रेम क्या है !' With the help of wishful thinking, every human being has created an image of himself. अपना वास्तविक परिचय उसको है नहीं । शरीर का थोड़ा बहुत होगा । थोड़ा बहुत कहती हूँ । शरीर का परिचय रखने वाले भी मैंने बहुत कम देखें हैं । लेकिन मन का परिचय रखने वाले हज़ारों में एकाध ।

मन को देखने से यदि ग्लानि हुई तो समझ लेनाकि अहंकारकी चेष्टा है । आपकी जो प्रतिमा आपने बनाई, वह टूट रही है-इसलिये ग्लानि और विषाद है । I

am trying to discriminate introspection from observation. (मैं अन्तर्निरीक्षण की अवलोकनसे भिन्नता स्पष्ट करने की कोशिश कर रही हूँ।)

हिन्दी भाषा में विषय को रखने का तो मेरा अभ्यास भी नहीं है और हिन्दी के शब्द लेने जाऊँ तो किस शब्द के साथ कौन-से सहचारी भाव जुड़े होंगे-कौन-से सहचारी विचार अनिवार्य रूप से आपके मन में आयेंगे, इसका मुझे अंदाज़ नहीं आता है। इसलिये हिन्दी भाषा में बोलते समय भीतर ही भीतर कुछ झिझक-सी रहती है-शब्द, जो चाहिये-जिस वज़न का चाहिये-वह शब्द पड़ रहा है- या कुछ ज्यादा भारी शब्द निकल रहा है या हल्का शब्द पड़ रहा है -मुझे मालूम नहीं। आख़िर शब्द तो क्या हीरा माणिक मोती हैं। तोल-तोल कर रखने पड़ते हैं।

हीरा परखे जौहरी, शबद को परखे साध।

हर शब्द का, आप जानते होंगे न,-हर शब्द का रूप है, हर शब्द का रंग है, हर शब्द का रस है, हर शब्द का गंध है; हर शब्द का वज़न है। ऐसा मत समझिये कि शब्दों के रस, रूप और गंध नहीं है। तो यह शब्दों का विनिमय जो है-व्यापार है-यह कोई खेल तो है नहीं कि उठाये और फेंक दिये। तो बड़ा संकोच रहता है, क्योंकि इस व्यापार में हम कुशल नहीं हैं। शब्दों से परे जो नि:शब्द की भाषा है वहाँ तो हम मछली जैसे तैर लेते हैं। लेकिन जहाँ शब्द की सृष्टि में उतरना पड़ता है, पल-पल में संकोच रहता है-पता नहीं, ठीक पड़ रहे हैं या ग़लत। बड़े डरते है इसमें।

मन के साथ मैत्री करने के लिये, परिचय पाने के लिये उसका निरीक्षण तथाकथित जागृति में-(जिसको आप लोग जागृति कहते हैं। दिन में १२ घण्टे हम जाग रहे हैं-यही आप समझते हैं न ?) और तथाकथित निद्रा में मन को देखना पहला क़दम है। मानसिक क्रियाओं के शांत होने का जो अवसर है-वह अवसर कैसे निर्माण करेंगे, वह मौक़ा कैसे बनायेंगे ? इसलिये कह रही हूँ कि पहला क़दम है जागृति और निद्रा में मन को देखना।

मैंने कहा-'तथाकथित जागृति और तथाकथित निद्रा।' क्योंकि हमें न निद्रा लेना आता है, न जागृत रहना आता है। ये बिस्तर लगायेंगे और जाकर शरीर को लिटा देंगे इससे थोड़े ही सोना होता है ? आंख बन्द कर लेने से निद्रा लेना नहीं होता है। भाग्यशाली ऐसे कौन होंगे, जो निर्दोष और नि:स्वप्न निद्रा ले सकते होंगे। रात

के आठ घण्टे में से छः घण्टे तो सपने देखते रहते हैं । सपने लेना तो निद्रा नहीं न ! बिस्तर के साथ भी बेईमानी हम लोग करते हैं । बिस्तर तो भाई, सोने के लिये है । तंद्रा में पड़े रहने के लिये बिस्तर नहीं है । आलस्य में, जड़ता में, पड़े रहने के लिये बिस्तर नहीं है । लेकिन हमको तो वस्तुओं के साथ प्रामाणिक रहना, न्याय करना-(अपने ही साथ न्याय नहीं करते हैं, तो वस्तुओं के साथ कहाँ !)-आता ही नहीं । न अन्न के साथ हम न्याय करेंगे, न उसका उचित सम्मान करेंगे, न निद्रा का, न वस्तुओं का । ऐसे जिये जा रहे हैं-पता नहीं क्यों, इसको हम जीना कहते हैं ।

जीना एक कला है, कहा है न, एक संगीत है जीवन । लेकिन हम तो ऐसे हैं कि हमारे तार जितने भी है-तन के, मन की वीणा के-उनको कौन सुर में बाँधना है ? संगीत का जलसा हो तो आधा-आधा घण्टा एक-एक घण्टा, वह तबले को मिला रहे है, वह सितार को मिला रहा है, वह तानपुरे को मिला रहा है, वह सारंगी को मिला रहा है । उसके लिये समय है । लेकिन अपनी जो वीणा है जीवन की, उसको-वह जो साज़ दिया हुआ है, उसे मिलाने की परवाह किसे है ? क्योंकि मिला है न, मुफ्त में-वह ख़रीदना तो नहीं पड़ता । वहाँ तो पच्चीस रुपये का टिकिट लेना पड़ता है-इसलिये वहाँ शान्ति से बैठेंगे-तीन घण्टा, चार घण्टा । यह तो मुफ्त में मिला हुआ है साज ! इसकी क़द्र कौन करेगा ।

कह रही हूँ कि निद्रा लेना भी मालूम नहीं और जागृत रहना भी मालूम नहीं । इन्द्रियों की गुलामी में और उनकी हकूमत में रहने वाले जागृत हैं ? अभी जीभ ने कहा कि भजिया खिलाओ तो भजिया खिला दिया । अभी कान ने कहा कि 'सिलोन' संगीत सुनना है तो वह सुना दिया । अब मन ने कहा bore हो गये हैं-अकेले नहीं बैठा जाता-मित्रों को खोजो, 'कम्पनी' खोजो ! निकले हैं । हरेक क्रिया इन्द्रियों के dictation में हुकूमत में, चलती हैं । और कहते है कि हम जागृत हैं ।

यह परवशता में बहते जाना जागृति नहीं है, और निद्रा भी नहीं है । इसलिये जन्म और मरण के झूले पर झूलते हैं, जीवन का स्पर्श पाते नहीं हैं । और अध्यात्म है जीवन का स्पर्श पाना, जीवन के, अनावृत जीवन के आलिङ्गन में अपने आप को खोदेना । न वहाँ प्राप्त करना है, न वहाँ संग्रह करना है । जीने के लिये त्याग और भोग दोनों ही irrelevant हैं ।

तो पहले प्रारम्भ करना चाहिये निरीक्षण से । मन की क्रियाओं का तटस्थ निरीक्षण । यह निरीक्षण करना है आपको बिना प्रयास किये । यानी 'साक्षित्व का अभ्यास करो' नहीं कह रही हूँ, क्योंकि ऐसा कहने से आप क्रिया से अलग होकर बैठ जायेंगे कमरे में और कहेंगे कि अब तो मैं साक्षित्व का अभ्यास कर रहा हूं ।

यानी तैरना सीखना है और नदी में छलांग नहीं लगायेंगे । तैरना तो सीखना है, लेकिन कमरे में गद्दे बिछा कर वहाँ तैरने का अभ्यास कर रहे हैं । ऐसा नहीं । तैरना सीखना है तो भाई, पानी में कूद पड़ो । गद्दे बिछाकर यह Frog stroke है, यह back stroke है, और यह free style हैं- सब अभ्यास कर लो । पानी देखने पर-उसमें पाँव रखने की हिम्मत नहीं होती । तो आत्मा का परिचय पाने के लिये भी पहले यह जो मन का सागर है, उसमें गोते लगाने पड़ेंगे । देखना पड़ेगा कि क्या है, क्या नहीं ?

सब किताबें उठा कर हटा कर, अपना ही निरीक्षण पहले शुरू करो । इस निरीक्षण में होगा क्या ? एक तो सावधान रहना पड़ेगा । प्रमाद से, आलस से, तन्द्रा से नहीं चलेगा । वह प्रमाद-रहित जीवन की ओर संकेत है । लोग कहते हैं न जैन परिवारों में कि भगवान महावीर की क्या शिक्षा थी ? ''प्रमाद रहित जीवन'' । और प्रमाद क्या है ? सिर्फ़ कन्द नहीं खाना और मूल नहीं खाना, और रात्रि को भोजन नहीं करना, यह नहीं । यह भी हो सकता है,- उसका निषेध नहीं कर रही हूँ । कह रही हूँ कि अनवधान प्रमाद है । अवधान सहित जीना, सावधान रहना-इसको अंग्रेज़ी में awareness कहते हैं । जागृति में और अवधान में मूलतः फ़र्क है । लोग समझते हैं-जागृति याने awareness । नहीं, नहीं । ऐसा नहीं है । सावधानता awareness है ।

तो २४ घण्टे की सावधानता निरीक्षण के लिये अनिवार्य होने के कारण निरीक्षण करते-करते सावधान रहने की शक्ति आप की बढ़ती है । सावधान रहने के लिये, साक्षित्व के लिये, स्वतन्त्र प्रयास नहीं करना पड़ता । यह सावधानता की शक्ति आपकी बढ़ती जाती है । अब जो विकार उठता है या जो विचार उठता है उसकी प्रशंसा नहीं करनी है, निन्दा नहीं करनी है । निरीक्षण करना है । यानी निरीक्षण के लिये Suspension of mental activity-यह दूसरी चीज़ बिना प्रयास के सधने

लगती है । निरीक्षण में, जो आप के मानसिक कर्म हैं-क्रिया हैं-Suspension उनका हो जायगा कि नहीं ! Introspection नहीं करना है । उसकी निन्दा भी नहीं करनी है । उसका judgement-उसका निर्णय भी नहीं करना है । देखना है ।

निरीक्षण में मानसिक क्रियाओं का शान्त होना नहीं है । अभी शान्त नहीं हुई हैं । सिर्फ Suspension है; मानसिक क्रियाओं का स्थगन हो जाता है । तो एक तरफ मानसिक क्रियाओं का स्थगन, दूसरी तरफ सावधानता की शक्ति-ये दोनों आप में बिना प्रयास के बढ़ते जाते हैं । विषय को यहाँ समेटना पड़ेगा । प्रारम्भ किया था कि अध्यात्म का क्षेत्र मानसिक कर्म का क्षेत्र नहीं है । इसमें कुछ प्राप्त करने का नहीं है -कुछ कमाने का नहीं है । इसमें कुछ अनुभव लेने का नहीं है । बड़ी निराशा होती है लोगों को ! कि यह क्या है- अध्यात्म में अनुभव नहीं ? अनुभूति नहीं ? फिर तो सारा romance चला गया।

'भाई, देह के सहारे जो उपभोग करते हैं-उससे ज्यादा romance तो मन के साथ जो अनुभव करते हैं-तो आप सब romance हटाते जा रहे हैं ! अनुभव का क्षेत्र नहीं-ऐसा कह रहे हैं !' मैंने कहा- 'जी हाँ, अनुभव का क्षेत्र नहीं है ।' मानसिक कर्म नहीं-इसी में यह अर्थ उद्‌बोधित होता है कि भाई, यह अनुभव का विषय नहीं है । अतीन्द्रिय अनुभूतियों का अर्थ है-आपके अचेतन में जो पड़ा हुआ है उसका साक्षात्कार । कोई बहुत मुश्किल बात तो नहीं है । कृष्ण रूप से साक्षात्कार करना, राम रूप से साक्षात्कार करना । जिसका अध्यास करोगे उसका साक्षात्कार कोई बहुत मुश्किल तो नहीं है । यह तो बच्चों का खेल है! करके देखो । उसमें भी आनन्द आता है । जिस चीज़ का निदिध्यास करोगे, उसका सामने आ जाना-कोई कठिन बात नहीं । उसके लिये कहीं जंगल में नहीं जाना पड़ता है । करके देखो । हो जाता है । नाद सुनना है, अनहद को सुनना है-अनहद भी कोई mysterious चीज़ रहस्यमयी कोई और गूढ़ वस्तु नहीं है, आहत नाद, अनाहत नाद-दो प्रकार के नाद हैं । तो आप के दो होठों के मिलन से जो नाद निकलता है वह आहत है । इसलिये शब्द आहत नाद है । आहत माने प्रहार में से निकलने वाला । वह शुद्ध नाद नहीं है । और अनाहत-जिसमें प्रहार नहीं है-अनाहत है, विशुद्ध है । तो ऐसे नाद आप की नाड़ियों में पड़े हैं, इसमें कौन-सी बड़ी बात है ! जरा शान्ति से बैठकर आप भीतर के नाद को सुनना चाहेंगे-तो श्वासोच्छ्‌वास की गति के आधार पर वह भी सुन सकेंगे । नाड़ियों में बहने वाले जो

नहीं है । लेकिन उस ज्योतिर्मयी अग्निशिखा को देखना या भीतर के अनाहत को सुनना-यह अध्यात्म नहीं है । Refining the sensitivity and having transcendental experiences-यानी आपकी संवेदन-शक्ति को परिस्कृत और परिमार्जित बनाकर, इन्द्रियातीत सृष्टि में विहार करते हुए अनुभूतियों का उपभोग करना यह अध्यात्म नहीं है । पहले यह विषय रखा । फिर कहा कि यह मानसिक कर्म नहीं है-मन के साथ क्या करें ? हमने कहा-लड़े नहीं । वह बेगुनाह है, उससे लड़ने की कोई ज़रूरत नहीं है । उसको सिर्फ़ पहले देखो । उसके साथ मैत्री हो सकती है या नहीं-हम विचार करेंगे । उसके साथ मैत्री हो सकती है । और आपने कभी मित्रों को देखा है-सच्चे मित्रों को ? आप के किसी मित्र के साथ बैठेंगे, तो आपको बोलने की ज़रूरत पड़ती है ? अरे भाई, मित्रता भी तो कहाँ दुनिया में देखने को मिलती है ! विचारों की समानता से एक दूसरे के तरफ़ खींचे गये-कहते हैं हमारी मैत्री है ! कुछ नहीं भाई, विचारों का आकर्षणहै । रूप के आकर्षण से या गुणों के आकर्षण से एक दूसरे से निकट आये-वह मैत्री नहीं । मैं सोपाधिक तथा कथित मैत्री की बात नहीं कह रही हूँ । मैं उस मित्रता की बात कर रही हूँ, जहाँ समग्रता में एकता का अनुभव होता है । बैठे हुए दो हैं, पर अनुभूति में एक है । ऐसे मित्र जब बैठते हैं-तो बोलने की इच्छा भी नहीं होती है । घूमने जायेंगे घण्टों-एक शब्द भी नहीं बोलेंगे । दिनों तक, सप्ताहों तक साथ रहेंगे-हो सकता है-बोलने की ज़रूरत भी नहीं पड़े । शब्द का अन्तर भी जिस मित्रता की निगूढ़ता में सहन नहीं होता-ऐसी मित्रताको आप अनुभव करके देखें ।

ऐसी यदि मन के साथ मैत्री होगी, मित्रता होगी, तो अब आपका मन अपने आप ही फिर शान्त बैठेगा । आप के प्रेम के कारण मन इस प्रकार शान्त हो जायेगा कि उसके अस्तित्व का आपको आभास तक नहीं मिलेगा । मरेगा नहीं । मन का लय नहीं करना है, मनोलय नहीं, मन पर विजय नही, मन के साथ मैत्री और प्रेम, जिस प्रेम में मन को अपने आप स्वयं ही शान्त होने की प्रेरणा होगी । मन की शान्ति में फिर चेतना का जो आविष्कार होता है-उसके बारे में कल प्रात:काल सोचेंगे ।

(ख) सायंकाल, प्रश्नोत्तरी दिनांक-२१-१-१९६८

प्रश्न : "विश्वचेतना की उत्क्रान्ति की हम कड़ियाँ मात्र है"-ऐसा आज सुबह आपने कहा। क्या उत्क्रान्ति, evolution, becoming के लिये विश्वचेतना में भी कोई अवकाश है ? being में भी becoming के लिए कोई अवकाश है ?

उत्तर-नहीं। becoming -कुछ बनना-ऐसा अभिप्राय है ? नहीं becoming, यानी कुछ बनने का अर्थ मुझे अभिप्रेत नहीं था। लेकिन जिसको अंग्रेज़ी में unfoldment कहते हैं। Evolution presupposes involution. तो जो एक वैश्विक चेतना है, उसकी क्रमश: अभिव्यक्ति हो रही है -उस अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में in the process of that unfoldment, man is a link as a human being- इतना मेरा अर्थ था। इसमें इसको कुछ बनना है ऐसा नहीं-जो भीतर है उसको प्रकट होने देना है। और उसके व्यक्त होने में, उसके प्रकट होने में, जितनी कठिनाइयाँ होंगी, जितनी रुकावटें होंगी-उनको हटाना है, उनको हटाते जाना है।

उसमें दूसरा एक अर्थ शायद मेरे मन में होगा-क्योंकि इस समय मुझे स्मरण नहीं है-किस सन्दर्भ में कहा था,-लेकिन इस सन्दर्भ में शायद कहा होगा कि आदिमानव-पहला जो कोई इन्सान हुआ हो, उससे आज तक जो कुछ मनुष्य ने किया है, पूर्व के देशों में, पश्चिम के देशों में, मनुष्य ने सभ्यता के नाम पर, संस्कृति के नाम पर, जितने संस्कार अपने शरीर पर, मन पर और बुद्धि पर किये हैं, उन सभी संस्कारों का जिसको आप residue कहेंगे, वह हमारी प्रत्येक की चेतना में पड़ा है। मेरे साथ कठिनाई यह है कि हिन्दी मातृभाषा नहीं है मेरी, तो मुझे शब्द ढूँढने में बड़ी दिक्कत होती है। इग्लिश में बोलना होता तो शायद कठिनाई नहीं होती, क्योंकि शिक्षण उस भाषा में हुआ है।

तो, जो पहला इन्सान हुआ होगा, आप जिसको stone age कहेंगे, copper age कहेंगे, - जितने ages हुए, युग हुए, उनमें जो-जो मानव ने किया है, उस सबके

स्वयम्भू नाद हैं-रक्त का जो अभिसरण हैं न, blood circulation है, यह विभिन्न नाड़ियों में विभिन्न गति से बहता है। भीतर की सृष्टि भी बड़ी 'रोमान्टिक' सृष्टि है आप की। तो उसमें कुछ स्वयम्भू नाद हैं। आठ प्रकार के, दस प्रकार के। तो बाहर के नाद नहीं सुने, भीतर के सुन लिये। इसमें कौन-सी बड़ी बात है। इसमें कहाँ का अध्यात्म आया।

प्रकाश है। तो जिस प्रकाश के सहारे आप की आँख बाहर का रूप देख सकती है-वह भीतर का प्रकाश देखना कौन-सी बड़ी बात है ? अतीन्द्रिय अनुभूति है-देख लो। देखने की इच्छा हो तो। ज्योति के स्वरूप में देखो। लेकिन यह ज़रूर है कि ऐसा एक आलोक है; आप के आँख के और मन के पीछे बैठा हुआ ऐसा कोई प्रकाश है जिसके सहारे आप अंधकार को भी देख सकते हैं। देखा है कभी अंधकार को ? अंधेरे को देखा है ? आप के अहमदाबाद शहर में तो क्या देखने को मिलेगा ! सारे रास्ते पर रोशनी ही रोशनी ! आकाश को देखने का अवसर नहीं।

कुछ मित्रों के साथ कुछ रोज पहले रात को निकली। तो मैंने कहा कि-''भाई, मुझे अहमदाबाद से कुछ दूर ले चलो जहाँ अँधेरे के सुभग दर्शन हो सकें। जहाँ aggressive offensive lights won't offend you. वहाँ ले चलो।'' लेकिन अँधेरे के दर्शन के लिए मुझे भागना पड़ा दूर आपके अहमदाबाद से। कभी आप आधी रात उठकर जाइये, कहीं ऐसे क्षेत्र में जाइये, दूर जाइये, जहाँ अँधेरे के दर्शन होंगे। फिर आप सोचिये कि अंधकार को मैंने कैसे देखा ?

न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकम्।
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
(मुण्डकोप० २-२-१०)

अरे, वहाँ चन्द्र नहीं, सूर्य नहीं। तारे नक्षत्र नहीं। अग्नि नहीं है। फिर किस ज्योति से देख रहे हो ? तो वह भी तत्त्व है।

लालटेन का काँच होता है न, उसकी चिमनी। यदि मैला हो तो भीतर की ज्योति का प्रकाश बाहर दिखता नहीं है। उसमें कालिख लग गई हो तो ज्योति होने पर भी प्रकाश बाहर नहीं आता है। वैसे विकारों की और विचारों की कालिख लग गई हो-तो उस ज्योति का प्रकाश दिखता नहीं, लेकिन देखना चाहो तो कोई असम्भव

संस्कारों का रस आप में और हम में पड़ा हुआ है। इसलिए जब अचेतन मन खेल करने लगता है और 'दृष्टान्त' होते है, दर्शन होते हैं, Visions आते हैं, transcendental experiences आते हैं-हमको लगता है कि भाई, हमारा, हमारे परिवार का, हमारी जमात का, हमारे धर्म का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है, और ये experiences हमको क्यों आये ? ये अनुभूतियाँ हमको क्यों आई ? वे आती हैं इसका एक कारण है कि प्रत्येक मनुष्य के भीतर वह भण्डार पड़ा हुआ है। और जब उसको मौक़ा मिलता है प्रकट होने का, चेतन मन जब शान्त हो जाता है, तो ये अचेतन में पड़ी हुई चीज़ें निकलकर बाहर आती हैं। उसी प्रकार जितने मनुष्य के विकार हैं, वासनायें, विचार है, वे सभी हमारे भीतर पड़े हैं, मनुष्य जाति के। तो जब बुद्धि, वह जो संस्कारपुंज है, संस्कारों की जो राशि अचेतन में पड़ी है, उसके लड़ने लगती है-प्रतिकार करने लगती है, या उनको दबाना चाहती है-(बुद्धि) उनको दबा नहीं पाती। क्योंकि इन भावनाओं की, विचारो की और विकारों की जो गति है-वह गति एक सनातन काल से चली आई है। और बुद्धि का बल इस जन्म से शुरू हुआ। आप लड़ना चाहते हैं अचेतन के साथ। तो, मैंने शायद यह कहा होगा ठीक स्मरण नहीं हैं, लेकिन शायद यह कहा होगा कि अचेतन में पड़े हुए विकारों के साथ लड़ना उनको संघर्ष का विषय बनाना, यह कोई बहुत समझदारी का काम नहीं है। इस अर्थ में शायद कहा होगा !

प्रश्न : विचार का उद्भव कैसे होता है ? और उसमें शब्द का हिस्सा कितना है ? शब्द यानी word. विचार के उठते ही शब्द उठता है या शब्द बाद में उठता है ?

उत्तर : विचार का उद्भव कैसे होता है ? विचार उठता है कैसे ? और विचार का उठना जो है, उसको शब्द कब प्राप्त होता है ? वह शब्द का स्वरूप कब लेता है ? जब स्पंदन उठता है तो शब्द को साथ लेकर उठता है या पहले स्पंदन है और जन्म लेने के बाद जब वह प्रकट होने के रास्ते से चलने लगता है तो बीच में कहीं उसको शब्द मिलता है ? बात क्या है ? बड़ा सुन्दर प्रश्न है।

पहले, सामान्यतया जिसको हम विचार करना कहते हैं और जिसको विचार समझते हैं-वे विचार होते हीं हैं। वे होती हैं हमारी प्रतिक्रियायें। बौद्धिक प्रतिक्रिया-

intellectual reaction, भावनात्मक प्रतिक्रिया-emotional reaction, इनको हम विचार समझते हैं। जो दिन भर हमारे भीतर चलता है-विचार करने की शक्ति-जिसको स्वतन्त्र विचार कह सकेंगे-thought as such कहेंगे-उसकी शक्ति शायद हजार में एकाध व्यक्ति विकसित करता है। लेकिन हम जिसको कहते हैं-या तो हम जो घटनायें हो गई हैं उनकी जो याद है-स्मृति है-उनके साथ खेलते हैं, तो कहते हैं कि हम विचार कर रहे हैं। वह विचार नहीं है।

भूतकाल की घटनायें घटित हो गई। घटना चली गई, स्मृति रह गई। वे संग्रहीत हैं! आप जानते हैं न, कि मनुष्य के पास यह मस्तिष्क, जिसको brain कहते हैं-वह एक ऐसी चीज़ उपलब्ध हो गई है कि इस मस्तिष्क के गोलकों में- brain cells में-स्मृति, ज्ञान, अनुभव रसायन के रूप में संग्रहीत हो जाते हैं। All human knowledge and experience get reduced to certain chemicals which are stored in your brain-cells. जो कुछ आप ज्ञान प्राप्त आप करेंगे, जो कुछ भी अनुभव करेंगे,- वह घटना निकल जाती है ज्ञान देने वाला व्यक्ति निकल जायगा-सामने से; उसकी जो स्मृति है वह मस्तिष्क में जाकर संग्रहीत होती है के chemical रूप में, रसायन के रूप में। और आप को मालूम होगा कि इस स्मृति को आप निकाल सकते हैं। extract कर सकते हैं, और दूसरे आदमी में inject भी कर सकते हैं। Transmission of memory and knowledge. आज विज्ञान यहाँ तक पहुँच गया है। तो हमारे मानव मस्तिष्क में इतने सारे विचार, विकार सनातन काल से चलते आये-संगृहीत होते गये-और generation to generation, पीढ़ी-दर-पीढ़ी, वे transmit सञ्चरित होते चले आये हैं।

किसी ने कोई शब्द कहा। 'राम' कहा। तो हिन्दू मन को आनन्द होगा। यदि कोई जानता नहीं है रामायण को-ईसाई हो, मुस्लिम हो, बौद्ध हो, जैन हो-तो स्पंदन पैदा नहीं होगा। भावनात्मक स्पंदन reaction उसमें नहीं उठेगा। कहना यह चाहती हूँ कि इस प्रकार संगृहीत अनुभव और ज्ञान पड़ा हुआ है। जब आपको बाहर से कहीं धक्का मिलता है और स्मृति में संगृहीत वे प्रतिक्रियायें जाग उठती हैं तो आप कहते हैं कि मुझे विचार आया। जिनको हम विचार कहते हैं- all of them mostly are reactions वे प्रतिक्रियायें हैं। वे विचार नहीं हैं। क्योंकि वे स्वायत्त नहीं है। वह

unearned income (बिना कमाई का धन) है। वह हमारे पुरखों का, पूर्वजों का कमाया हुआ हमारे पास आया है।

किसी ने कोई शब्द कहा। लोगों ने उसको अपशब्द गाली कहा है। किसी ने उस शब्द का उच्चारण किया तो क्रोध उठा। अब यह क्रोध भी स्वायत्त नहीं है। आप को किसी ने-जिसको गाली कहते हैं-वह गाली दी और आपको क्रोध आया। आप समझते हैं कि मुझको क्रोध आया। बिलकुल नहीं। वह क्रोध भी आपका नहीं है। It is a mechanical action - एक यांत्रिक प्रतिक्रिया है। जिनको प्रशंसा समझा जाता है-वे शब्द किसी ने उच्चारण किये तो गुद्‌गुदी हुई। क्योंकि उन शब्दों के सहचारी भाव भी निर्धारित किये गये हैं।

मैं समझाना यह चाहती हूँ कि-विचार के उद्भव से पहले, विचार के नाम पर विकार के नाम पर जानी जाती हैं-वे सब प्रतिक्रियाये हैं। वे सब यांत्रिक क्रियायें हैं। उनमें सहजता नहीं है। वे स्वयम्भू नहीं हैं। वे स्वायत्त नहीं हैं।

जब ये प्रतिक्रियाये शान्त हो गयीं, किसी ने उनको शान्त होने का मौका दिया-तो चेतन और अचेतन की शान्त अवस्था में फिर किसी मोज़ार्ट को, किसी बियोविन को, जिसको आप genius कहते हैं न-उसको संगीत का दर्शन होता है। विचार करना नहीं पड़ता। विचार के दर्शन होते हैं। चेतन और अचेतन की शान्ति में फिर दर्शन होते हैं किसी आइन्स्टाइन-को, किसी न्यूटन को, किसी ॲडिशन को, किसी क्यूरी को। तो पहले, विचार के उद्भव के लिये, विचार के जन्म के लिये-सच्चा विचार-हो-नक़ली नहीं, असली विचार-असली विचार के जन्म के लिये चेतन और अचेतन की शान्त अवस्था आवश्यक है। अब वह कहीं धक्का खाकर शान्ति आ गयी, थक करके, हार करके शान्ति आ गयी, स्वयमेव शान्ति आ गयी-उसमें मैं नहीं जा रही हूँ। उसमें nuances हैं, उसमें भी छटायें हैं। लेकिन इनको यहाँ खोलने का आज, मैं नहीं समझती कि, समय है। गहराई में फिर भी उतरना होगा। लेकिन इतना तो कह दूँ कि चेतन और अचेतन की उस शान्त अवस्था में फिर स्वतन्त्र स्वयम्भू विचार के दर्शन होते हैं। इसलिये उपनिषदों के लिये यह नहीं कहते हैं कि उनके रचयिता थे, उपनिषद लिखने वाले कर्ता कोई नहीं मानता है। ऋषि द्रष्टा, कहलाते हैं। 'उनको दर्शन हुआ'-कहते हैं।

अब यह किसी विचार का दर्शन कैसे होता है - जिसकी जितनी संवेदन शीलता होगी-sensitivity होगी-वह प्राकृत है, कि संस्कारित है; यानी cultured है या crude है-उस पर से फिर वह विचार का स्वरूप, विचार का प्रकार और आशय निर्धारित होता है । आपने कहा कि यह विचार जब उठता है तो क्या शब्द को लेकर उठता है ? नहीं । जो परा वाणी है - वहाँ शब्द का संचार नहीं होता है । यह स्पंदन वहाँ से उठकर ऊपर पश्यन्ती में जब पहुँचता है- यानी जहाँ तन-मन-बुद्धि, इन सबको वह छू जाता है-पहले स्पंदन जो उठा है-वह भीतर के आकाश में है । अब वह स्पंदन-जिस वीणा का मैंने उल्लेख किया होगा शायद कल-उस वीणा के तारों को छू जाता है । अब किन नाड़ियों को वह कैसे छूता है, इसके लिये फिर लेना पड़ेगा योग के विषय को । यहाँ-उतनी गहराई में, उतने विस्तार में-जा नहीं सकते हैं । संकेत मात्र कर रही हूँ, इशारा या इंगित कर रही हूँ । लेकिन वह स्पंदन जब आकाश में निर्माण होने के बाद है-जहाँ स्पर्श करता है-उस पश्यन्ती में से फिर शब्द का जन्म होता है ।

आपने जो प्रश्न पूछा है उसमें कुछ pathological, कुछ biological, कुछ psychological-इतने सारे उसके पहलू हैं । जो उसका मानसिक पहलू था-वह आप के सामने मैंने पहले रखा । लेकिन आप यदि biologically उसमें interested हैं कि यह शब्द कहां उसको प्राप्त हुआ, तो उसका पहलू रखना चाहती हूँ कि पहला उठता है विशुद्ध स्पंदन । वहाँ शब्द नहीं । वह विशुद्ध स्पन्दन मातृकाओं को कैसे स्पर्श करता है, और मातृकाओं को स्पर्श करने के बाद जो झंकार है उसका, उस झंकार में से शब्द का रूप वह बिन्दु कैसे लेता है-एक बड़ा रोचक और-पारिभाषिक विषय है it is a technical subject that you are asking me.

सबको रुचि नहीं होगी न उसमें । क्योंकि जो शरीर का शास्त्र है-जैसे physiology-hygiene सिखाते हैं स्कूल में- ऐसे इस देश में भी शरीर-विज्ञान पहले सिखाया गया है । तो उसमें ये नाड़ियाँ, उसमें जो चक्र हैं शरीर में-उन सब में उतरना पड़ता है । इन्होंने जिस आधार पर प्रश्न पूछा-अब वह सब उन चक्रों को, और नाड़ियों के विश्लेषण को, real या truthful तो आज का कोई biologist मानेगा नहीं और physiology-hygiene सीखने वाला या doctor भी मानेगा नहीं । उनके लिये तो वे रूपक हो गये । इस लिए मैंने कहा कि भाई, सामान्यतया आप जो प्रश्न

पूछ रहे हैं-उसमें इतना कहा जा सकता है। क्योंकि यह शब्द का उठना, यह स्पन्दन का उठना कौन मानता है? How that sound gets converted into a word-संज्ञा और संकेत ये शब्दमय कैसे बनते हैं? वेद लिखे गये, उससे पहले शब्द रूप नहीं था, संज्ञा थी। संज्ञाओं में से छन्दों का जन्म कैसे हुआ, यह इतिहास भी बड़ा रोचक विषय है। लेकिन सब लोग कहेंगे कि यह क्या कहा जा रहा है! इसलिए उस technical विषय में नहीं जाना चाहते।

प्रश्न : आपने कहा कि धार्मिक, नैतिक और सामाजिक जो व्यवहार करते हैं- उनका आध्यात्मिकता के साथ सम्बन्ध नहीं है, वह अध्यात्म नहीं है और जो अध्यात्म है वह मानसिक प्रक्रिया नहीं है। जो अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ करते हैं-वह अध्यात्म नहीं हैं। यह सब जो बताया-उसमें ऐसा कुछ हो सकता है कि एक की तुलना में दूसरी अवस्था अध्यात्म के ज्यादातर नज़दीक है-अध्यात्म यानी सत्य यानी ऐसा कुछ जो हम समझते हैं-इससे, एक अवस्था, ज्यादातर नज़दीक है और दूसरी दूर है? ऐसा हम समझ सकते हैं उसमें?

उत्तर : जी, हाँ। बड़े अच्छे प्रश्न आज पूछे जा रहे हैं। खुशी हुई। यह पूछा कि आप कहते हैं कि जो धर्म है वह जीवन का एक परिमाण है-एक dimension है और अध्यात्म है उस dimension से भिन्न परिमाण। भिन्न परिमाण हैं, भिन्न आयाम हैं। आप यह कहते हैं कि जो अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ हैं वे भी अध्यात्म नहीं हैं। तो फिर जो सत्य है, जो आत्मदशा है-तो एक प्रकार का जीवन उस सत्य के साक्षात्कार के अधिक निकट होगा और दूसरे प्रकार का जीवन उतना उसके निकट नहीं होगा-ऐसा कुछ तर-तम भाव है कि नहीं? भाई, have I understood?

तर-तम भाव तो है। तर-तम भाव इस अर्थ में है। मैंने धर्म शब्द का प्रयोग करते हुए उसकी एक व्याख्या यहाँ के लिए, संवाद के लिए, गृहीत मानी। व्याख्या क्या की थी? मनुष्यों के परस्पर संबंधों से संवाद और व्यवस्था निर्माण करने के लिए जो नियम बनाए गये-उस नियमावली को मैंने धर्म संज्ञा दी और मैंने यह कहा कि उसके लिए शास्त्रों के प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं। धर्म का सम्बन्ध समाजशास्त्र से आता है, कामशास्त्र, मानस-शास्त्र से आता है-अनेक शास्त्रों से आता है, नीतिशास्त्र से आता है। तो ये-मनुष्यों के परस्पर संबंधों में संवाद लाने के लिये, सहयोग निर्माण

करने के लिए, व्यवस्था के लिए-नियमावलियाँ बनाई गईं। विभिन्न देशों में, विभिन्न समय पर, विभिन्न प्रकार के नियम बनाये गये। इसलिये तो इतने सारे धर्म भी दुनिया में हम देखते हैं।

तर-तम भाव इस अर्थ में है कि जो जीवन व्यक्ति जी रहा है, उस जीवन में यदि पहले उसके अपने भीतर संवाद होगा-संगीत होगा-तो वह सत्य की खोज के अधिक निकट जाता है। संवाद और संगीत से मेरा मतलब यह है कि उसके शरीर का मन के साथ झगड़ा नहीं, मन का बुद्धि के साथ झगड़ा नहीं। वह तो जीवन जीता है उसमें भीतर ही भीतर-आप देखते हैं न-कि, शरीर के, मन के, बुद्धि के झगड़े। बुद्धि कहती है कि अभ्यास करना है, मन कहता है, कि नहीं उपन्यास पढ़ना है और शरीर कहता है कि अब तो सोना है। आलस में, निद्रा भले ही न आवे, आँख बन्द करके लेटना है। तन चाहता है आलस में लेटे रहना, मन चाहता है नवलकथा (उपन्यास) पढ़ना, बुद्धि कहती है-'परीक्षा है-तू किताब पढ़ ले।' अब इतना उनमें संघर्ष है-friction है- और इस घर्षण में लड़का पढ़ रहा है किताब। तो इस घर्षण में से जिस पढ़ाई का जन्म हुआ है, उसमें ताक़त नहीं आती। ऐसे ही बुद्धि कहती है कि-तू चोर बाज़ारी नहीं कर। तू smuggling नहीं कर। तू काला-बाज़ार नहीं कर। तू झूठ नहीं बोलना'। इसमें से विसंवाद आयेगा। इसमें से संघर्ष आयेगा। मन कहता है-"अरे, सभी करते हैं! वह मेरा पड़ोसी काला-बाज़ार करके यदि हज़ार के लाख करता है तो मैं क्यों न करूँ? वह नहीं पकड़ा गया तो मैं कैसे पकड़ा जाऊँगा! करो न, सब करते हैं! तू नहीं करेगा तो तू बेवकूफ़ है। यह कलियुग है-कहीं सत्युग है?"

तो बुद्धि कहती है कि मत कर। और शरीर को सुख-सुविधा का ज्यादा सामान चाहिये, ऐश चाहिये, आराम चाहिये। मन कहता है-'जुटा दे। उधर भी देख, कितना जुटता है! कोई ईमानदारी से नहीं कमाता! तू भी कमा ले न! बहती गङ्गा है! उसमें से तू उठा ले-जितना उठाना है! तू नहीं उठायेगा तो तू गुनहगार है।' तो फिर-वह कमाता है। कमाता है और कमाने का लुत्फ़ फिर उसको नहीं आता है, क्योंकि बुद्धि कहती है-'तू ग़लत कर रहा है।' कमाता भी है, कमाने का मज़ा भी नहीं आता, guilty conscience है और फिर उस पैसे से सामान ला-लाकर घर में जुटाता भी है। और लाये हुए सामान को सम्हालते-सम्हालते नाक में दम है। थकता भी है। और मानता है कि यही संसार है, यही जीवन है!

मैं यह कह रही हूँ कि आन्तरिक संघर्ष है-तनाव है; या आन्तरिक संवाद है जीवन में ? जिसके जीवन में आन्तरिक सामञ्जस्य होगा, संवाद होगा, उसके भीतर सत्य की जिज्ञासा जागृत होने पर गति जल्दी बढ़ सकती है । उसी प्रकार उसका जो दूसरे व्यक्तियों के साथ-(यह तो आन्तरिक संवाद और संगीत की बात कही)-अब व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध है । उन सम्बन्धों में लड़ाई, ईर्ष्या, द्वेष-ऐसा वातावरण हो तो फिर उसकी जो सत्य-साक्षात्कार की साधना चलेगी उसमें, वातावरण से सहयोग नहीं मिलता है । प्रेममय वातावरण में जो स्पंदन मिलते हैं, जो सहयोग मिलता है, वह नहीं मिलेगा ।

आप जानते हैं न कि आपके भीतर जो-जो विचार विकार उठते हैं-वे स्पंदन होकर आपके बाहर निकलते हैं । आँखों से बाहर निकलते हैं, जीभ से, जबान से बाहर निकलते हैं-आपके श्वासोच्छ्वास से निकलते हैं, आपके शरीर से निकलते हैं-बाहर आप देते ही रहते हैं जो कुछ आप हैं ।

तो यदि व्यक्ति के संबंधो में तनाव, संघर्ष नहीं होगा, घर्षण नहीं होगा, तो बाहर से भी उसको सहयोग मिलता है । अंतर का सहयोग मिलता है, बाहर का भी सहयोग मिलता है । इसलिये संवादी, संगीतमय जीवन में सत्य-साक्षात्कार के लिये objective-जिसको परिस्थितिगत कहेंगे-ऐसी अनुकूलता अधिक होती है । आप यही पूछ रहे थे कि और कुछ ?

प्रश्न-What is death ? (If) it is said that death is departing of mind, why and when does the mind depart ?

उत्तर-कहते हैं मौत क्या है ? मृत्यु क्या है ? और प्रश्न पूछने वाले भाई आगे कहते हैं कि ऐसा कहा जाता है कि मृत्यु यानी मन की बिदाई ? क्या कहना चाहते हैं भाई ?

प्रश्नकर्ता : If it is said.

उत्तर में-Who says this ? 'If ' कैसे डाला आपने ? या तो आप यह कहिये कि 'ऐसा कहा जाता है' तो आगे प्रश्न चलेगा न ? और मैं कहूँगी कि 'It is not said' । आपने यदि 'If ' रखा तो मैं वहीं रोक दूंगी न ! आप मुश्किल में पड़ जायेंगे ।

मैं रोकना नहीं चाहती। इसलिये 'If' को हटा लीजिये। तो प्रश्न आगे चलेगा। मैं नहीं कहती हूँ कि मन का departure (मृत्यु) है। आपके 'If' को लेकर उत्तर देने जाऊँ तो आपके 'If' का मैंने स्वीकार कर लिया-ऐसा होगा। मैं उसको स्वीकार नहीं करना चाहती। समझे न आप, दिक्कत आ जायेगी। सवाल ऐसा पूछिये कि 'It is said' यदि आप पूछना चाहें तो, हाँ। नहीं, तो, दूसरे ढंग से कहें।

प्रश्न : ऐसा कहा जाता है कि मौत यानी मन का अलग होना। और यदि मौत यानी मन का अलग होना है तो यह मन कब और कैसे अलग होता है ?

उत्तर : 'मौत क्या है ?'-कोई नहीं पूछता। मैं cross-examine (जिरह) करने की द्रष्टि से नहीं कह रही हूँ। लेकिन जन्म में और मृत्यु में जिज्ञासा आती है, जीवन में नहीं। जिज्ञासा की गति जीने की तरफ़ नहीं जाती है, मृत्यु की तरफ़ अभिमुख होती है- जीवन की तरफ़ नहीं। इस व्यक्ति का नहीं कह रही हूँ मैं। एक जो सहज बात उठी-जो प्रतिसाद उठा भीतर से वह रख रही हूँ।

अब यह भी सभी जानते हैं कि मृत्यु एक ऐसी घटना है जो शरीर के साथ लगा हुआ तथ्य है। बालक था, किशोर हुआ। बालपन मर गया और किशोर हुआ। युवक था। यौवन मर गया, प्रौढ़ हुआ।

प्रगल्भता या प्रौढ़ावस्था का अन्त हो गया-और वृद्धावस्था आयी। अब इन अवस्थाओं में शरीर के जो व्यक्त परमाणु हैं इन परमाणुओं का परिवर्तन तो दीखता है। बालक का शरीर और किशोर का शरीर, किशोर का और युवक का, युवक का और वृद्ध का,- इसमें बाहर का जो कलेवर है, वह एक ही होने के कारण भीतर के परमाणुओं का जो रूपान्तरित होना है-उसकी तरफ़ ध्यान कम जाता है। एक continuity का आभास होता है। उसमें एक सातत्य का आभास होता है कि जो बालक था, वही युवक हुआ, वही प्रौढ़ हुआ; वही वृद्ध हुआ। यहाँ तक चलता है।

अब यह जो अव्यक्त परमाणुओं को धारण करने वाला व्यक्त उसका ढांचा है-यह ढांचा जब गिर जाता है-तो मनुष्य कहता है कि अन्त हो गया। अब वह बोलता नहीं, अब वह चलता नहीं, अब हिलता नहीं, अब देखता नहीं, सुनता नहीं है। वह मर गया है। कौन मर गया भाई ?

बीज का अंकुर हुआ। अंकुर पौधा हुआ। पौधे का वृक्ष हुआ-और वृक्ष जीर्ण हुआ-चला गया। तो, वृक्ष के मरने में और मनुष्य के मरने में हम फ़र्क मनाते हैं। क्योंकि वृक्ष बोलता नहीं है। कम से कम हमें उसकी भाषा का ज्ञान नहीं है। इसलिये वृक्ष क्या बोलता है, और मृत्यु के समय उसको किस प्रकार की वेदना होती है-होती भी है या नहीं होती है इसका-हमें परिचय नहीं है। इस लिये वृक्ष का जो मरना है, उसके मरने में और आदमी के मरने में हमें अन्तर मालूम होता है। जो biological fact है, जो एक शारीरिक तथ्य है-वह तो यह है कि आपके शरीर में श्वासोच्छ्वास की जो क्रिया है, बन्द हो जाती है। श्वासोच्छ्वास की क्रिया जिस ऊर्जा के बल पर चलती है-वह ऊर्जा शरीर में नहीं है। क्योंकि उष्णता-उष्मा जो है, वह ऊर्जा के साथ आती है, अग्नि के साथ जाती है।

शरीर में जितनी गरमी है, वह उस ऊर्जा के कारण है, जिसे आप energy कहते हैं। अब वह ऊर्जा उस शरीर में न रही इतना ही इसका मतलब हुआ न। आप वृक्ष के लिये कहते हैं कि उसकी जड़ो में जीवनरस न रहा, इसलिये वह गिर पड़ा। वैसे ही शरीर में ऊर्जा न रही।

अब किसी को सिर पर डण्डा मार दिया-या तलवार से उसकी गरदन उतार ली, या छुरा कलेजे में भोंक दिया-ऊर्जा निकल गई। जानने के लिये आप जिस शब्द के level पर मुझे पूछ रहे हैं-उस शब्द के स्तर पर इतना ही कहा जा सकता है कि श्वासोच्छ्वास की क्रिया कराने वाली ऊर्जा का संचार शरीर में से समाप्त हो जाता है। अब इस ऊर्जा का संचार समाप्त होने के साथ यह मन कहाँ जाता है ?-यही आप पूछ रहे हैं ? यह पूछ रहे हैं कि जो मन है, जो अहंकार है-जिस केन्द्र पर खड़े होकर संसार की परिधि को खड़ा किया था-वह मन कहाँ गया ? मन में जो विचार हैं जो वृत्तियाँ हैं-वे तो नष्ट होती नहीं, आप जानते हैं। 'विचार को मरण नहीं'-कहते हैं। वृत्ति को, वासना को, विकार को मरण नही हैं तो जो वृत्तियाँ हैं, जो विचार हैं, जो विकार हैं वे सब अन्तरिक्ष में समा जाते हैं। मैं यह मान लेती हूँ कि आप यह जानते होंगे कि हर विचार का रूप होता है,-Every thought has a form. It has a colour. It has vibrations. विचार के स्पन्दन हैं। विचार के रंग हैं। विचार के आकार हैं।

आप के मन में विचार आया। उसको आप ने शब्द-बद्ध करके हमारे सामने न रखा, तो भी जिस कमरे में ३०-४०-५० व्यक्ति बैठे हैं उनके विचारों के रंग-रूप,

उनकी लहरें, उनके स्पन्दन हवा में तैरते हुए देखे जा सकते हैं। इसलिये आप कभी किसी व्यक्ति के पास बैठे हैं और आपने कुछ नहीं कहा, और आप के मन का विचार उसने पहचान लिया। आप कहते हैं-'ओ हो हो!-क्या चमत्कार है। उनके पास सिद्धि है! मैंने कहा भी नहीं, उसने पहचान लिया।' अरे, इसमें कौन-सी बहादुरी है? आपके मन में जब तक विचार उठेंगे-तब तक उस विचार का वातावरण आप के चारों तरफ़ रहेगा। वे रंग, वे स्पन्दन आप के आसपास खेलते रहेंगे। जिसने संवेदनशीलता को परिष्कृत कर लिया वह उनको देख लेगा।

विचार मरता नहीं है। इसलिये जो विचारपुंज होगा,-वह तैरता हुआ रहेगा, अन्तरिक्ष में अब यह विचारपुंज भी कहा तो 'पुंज' नाम से आप को कुछ उसकी density का आभास होता है न? क्या करें! शब्द ऐसे लेने पड़ते हैं। विचार-घनता कहने से आप को लगेगा कि विचार में density है जिसको time and space focus में पकड़ सकेंगे। ऐसा नहीं होता है। विचार तो 'ईथर' (Eather) से भी सूक्ष्म है। आप लोग 'ईथर' को सूक्ष्म मानते हैं न! 'ईथर' से भी सूक्ष्म है विचार। इसलिये विचारपुंज कहना विचारराशि कहना-ये सब शब्द-मुझे समाधान नहीं देते हैं। लेकिन मैं क्या करूँ? कौन से शब्द लूँ। आखिर जिसको आपने मन कहा, जिसको आपने अहंकार कहा, वह उस तरल द्रव्य का बना हुआ है। द्रव्य भी कहा तो फिर से density (घनता) आ गई। अब मैं क्या करूँ? चाहे जो शब्द आप ले लीजिये।

लेकिन विचार बिखर जाते हैं। आपके भीतर जो आकाश है, उसमें से बाहर के आकाश में, अन्तरिक्ष में, तैरने लगते हैं। इस लिये आपने कहा कि मन कहाँ जाता है? 'कहाँ' यानी कोई ऐसा time and space में मैं आप को point नहीं बता सकूँगी। इतना ज़रूर कहूँगी कि मृत्यु समय में जो भी विचार, विकार वहाँ रहे होंगे-(मन की गति ही विचार और विकार की गति है; विचार और विकार न हों तो मन में गति नहीं है। तब वह शान्त है) वे तैरते हैं।

आप यह पूछना चाहते थे या और कुछ?

प्रश्नकर्ता : यदि ऐसा कहा जाय कि ऊर्जा चली जाती है-तो ऊर्जा पहले चली जाती है या मन पहले चला जाता है?

उत्तर : ऊर्जा के अस्तित्व पर ही मन की गति है। ऊर्जा का संचार जिस क्षण समाप्त हुआ, उसी क्षण मन की गति आप के भीतर समाप्त हुई। 'तैरते रहते हैं'-यह भी कहा तो यह शब्द मेरा बहुत उचित नहीं है। वे जहाँ पर लटके होंगे उस समय-वहाँ रह गये। इसलिये कहीं किसी स्थान पर आप आते हैं, तो कहते हैं-भाई, अनेक साधकों ने-सन्तों ने यहाँ कुछ सद्विचार किये हैं-तो इसलिये भूमि शुद्ध है। कहीं आप जाते हैं तो कहते हैं-यह भूमि अपवित्र है। क्यों ? भूमिने क्या किया ? वही मिट्टी, वही जल तो है ! लेकिन संघर्ष के, द्वेष के, क्रोध के, विचार लेकर रहने वाले हों तो वहाँ वे विचार रह जाते हैं। घर में भी, किसी के घर में आप जाइये-तो कमरे में जायेंगे, तो दरवाजे में प्रवेश करेंगे, तो घर के वातावरण में आपको, पता चलता है कि भाई, यहाँ किस प्रकार के विचार फैल रहे हैं।

ऊर्जा का संचार जहाँ समाप्त होता है-वहाँ वह विचारों की गति भी ऊपर से बन्द हो गयी।

आप ऐसी अव्यक्त सृष्टि के सवाल पूछ रहे हैं कि mysticism में जाना पड़ेगा। मैं inferences में और गूढ़ गुंजन में जाना नहीं चाहती हूँ। कोई तो सवाल पूछो कि जीना कैसे ?

प्रश्न : यह जो बात आपने कही-मनस् का अलग होना, उसका जन्मजन्मान्तर के साथ कैसे सम्बन्ध है ?

उत्तर : आप फिर से अनुमानात्मक, सिद्धान्तात्मक प्रश्न पूछ रहे हैं। जन्म और जन्मान्तर क्या होता है ? एक जीवन का अखण्ड प्रवाह चल रहा है। तो पानी के प्रवाह पर बुद्बुदे उठते हैं। bubbles बुलबुले उठते हैं। ऐसे ये जो individuals आपके और मेरे जैसे हैं- ये जीवन के प्रवाह में, जीवन के सागर में उठने वाले bubbles हैं। वह प्रवाह खण्डित नहीं होता है।

आप यदि यह जानना चाहते हैं कि एक व्यक्ति है-उसका लिङ्ग-देह उसका वासनादेह है-वह घूमता रहता है-फिर उसी को दूसरा जन्म लेना पड़ता है-या नहीं ?

तो, मैं तो जिन्दा हूँ अभी, मर तो गई नहीं। तो मृत्यु से परे यह जो क्षेत्र है, उसके बारे में बोलूं तो कैसे बोलूं ? किसी theory को लेकर, किसी सिद्धान्त को लेकर बोलना पड़ेगा। यह सब logical speaulative thinking है, जिसमें जाना

पड़ता है। इतना अनुभव से कहा जा सकता है कि विचार के मृत्यु नहीं है। और जो भी विचार उठा है मनुष्य के मन में-वह कहीं-न-कहीं जाकर देहरूप धारण करता है। और जहां स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध होता है, उस समय जिस प्रकार की मानसिक अवस्था उस दम्पती की होगी, वह (अवस्था) उस प्रकार के विचार को आकर्षित करके इस बीज के साथ सम्बद्ध कर देगी। विचार के जन्मजन्मान्तर हो सकते हैं। व्यक्ति को हो सकते हैं या नहीं, यह कहना मेरे लिये मुश्किल है। नहीं हो सकते हैं, यह नहीं कह रही हूं।

कोई वासना उठी। अब वह वासना, if it is floating in the space, तो किसी दम्पती के रूप में वह जा करके, पकड़ कर जन्म लेगी। जहाँ जिस समय जिसकी प्रबलता हो, वहाँ। तो उसके देह धारण करने में अनेक देह हो सकते हैं। लेकिन आप जिस continuity की बात पूछना चाहती हैं कि यह जो जहाँ व्यक्ति बैठी हैं, बोल रही हैं इसका पिछला जन्म था कि नहीं, इसका आगे का जन्म है कि नहीं, तो मुझे नम्रता से कहना चाहिये कि इस क्षेत्र में आप से बहुत कुछ कह सकूं-ऐसा शायद मेरा अधिकार नहीं है।

प्रश्न : आज सुबह वार्तालाप में आपने कहा था कि observation के बारे में - जब observer और observed, द्रष्टा और द्रश्य एक हो जाते हैं, उसमें जो दर्शन होता है-तो फिर वह दर्शन कौन करता है ? जिसमें अहं नहीं रहता, observer नहीं रहता, सिर्फ observation रहता है, यह observation कौन करता है ?

उत्तर : कोई करता नहीं है वहां। यानी observation करने वाला कोई नहीं है वहां। observation होता है।

देखिये, यह जो ऊर्जा है न, (energy) इसको कोई चैतन्य कहता है-कोई इसको आत्मतत्त्व कहेगा। कोई इसको Supreme Intelligence कहेगा। उसको आप सच्चिदानन्द नाम से पुकारिये। आत्मा के नाम से पुकारिये। नाम चाहे जो दीजिये। लेकिन यह जो Basic energy है-एक मूलभूत ऊर्जा है-जिसका संचार आप सबकी आंखों में या बोलने वाले की ज़बान में चल रहा है, इसकी गति होती रहती है। जब जहां आप कह रहे हैं उस प्रकार दर्शन द्रष्टा में समा जाता है, वहां द्रष्टा की द्रष्टापन की अवस्था समाप्त होकर साक्षित्व रह जाता है। The observed and the observer mingle into the Eternal Witness. अब साक्षित्व कहूँ या चित्त

शक्ति कहूँ, उसमें 'मैं देख रहा हूँ, मैं अनुभव ले रहा हूँ'-जह कहने के लिये कोई बचता नहीं है। मैंने कहा कि आत्मदशा में अनुभव के लिये, अनुभूति के लिये, स्थान नहीं है। In the realm of realisation and liberation, even transcendental experiences have no place. अनुभूति नाम की चीज़ ही नहीं रहती है। होता यह है कि हेतुरहित देखना-यह सध जाता है। आखिर अहैतुक निरीक्षण का यही अर्थ है न। Observation का यही अर्थ है कि उस वस्तु से मेरा जो सम्बन्ध है, point of contact है, वह किसी motive का नहीं है। किसी हेतु का नहीं है प्रयोजन का नहीं है। दोनों प्रकार का प्रयोजन-उससे कुछ मुझे लाभ नहीं लेना है, और मुझे उसमें कुछ परिवर्तन नहीं करना है। परिवर्तन करने की आकांक्षा भी अहंकार की चेष्टा है। यानी कुछ हेतु है, motive है उसमें। या उसमें कुछ प्राप्त करना है, तो भी motive आया। अब यह जो motiveless perception है वह observation है। अहैतुक दर्शन है, उसको हम observation कहेंगे। तो, भाई, उदाहरण तो सामान्य मनुष्यों के अनुभव में आने वाले लने पड़ते हैं-द्रष्टांत या अनुभव हमेशा एकदेशीय होते हैं। वे सब तरफ़ से आपका समाधान तो नहीं कर सकते।

लेकिन जिनको प्रभुकृपा से कभी जीवन में प्रेम के क्षण उपलब्ध हुए होंगे-किसी व्यक्ति के साथ प्रेम हुआ होगा-प्रेम के क्षण-तो उनमें उन दो व्यक्तियों के बीच सम्बन्ध क्या रहता है? वहाँ प्रेम करने वाला कोई है? जिससे प्रेम किया जा सकता है-ऐसा कोई है? और यदि नहीं है तो उनके सम्बन्ध में उस समय कोई what is the reality between the two?

''प्रेम मैं कर रहा हूँ और इस व्यक्ति पर प्रेम कर रहा हूँ'' तो वह व्यक्ति भी बचा और प्रेम करने वाला भी बचा। वह तो प्रेम की अवस्था नहीं है। वह मोह हो सकता है, वह attraction हो सकता है। सुबह जैसे कहा गया था, उस प्रकार विचारों की, भावनाओं की, गुणों की, hobbies की, similarity के कारण attraction हो सकता है-वह यह नहीं। उसकी बात नहीं कह रही-कर रही हूँ मैं। क्योंकि प्रेम के ना पर बड़ी सस्ती चीज़ें आजकल बिकने लगी हैं। यह नहीं कह रही हूँ कि उनका स्थान नहीं। मैं उसका निषेध कर रही हूँ और उनका निषेध करते-करते मानव जाति आज तक चली आयी है। निषेध से कुछ लभ्यांश नहीं हैं। निषेध

नहीं करते हैं । मैं कहना चाहती हूँ-काम में तो, काम रखने वाला और जिसके विषय में काम रहता है-वे दो बचते हैं । लेकिन प्रेम में दो नहीं बचते ।

इसलिए कहा कि प्रभुकृपा से यदि प्रेम के क्षण उपलब्ध हुए हों जीवन में, तो देखने में आया होगा कि वहाँ प्रेम करने वाला तो कोई नहीं । द्वैत का सम्पूर्ण समग्रता से विलय हो जाता है और फिर भी वहाँ static (अचल) कुछ नहीं है । वहाँ dynamism है । The reality existing between two such persons is so dynamic-nothing is as dynamic as love. प्रेम के जैसा गतिमान् तो कोई तत्त्व नहीं है । तो प्रेम के क्षण में द्रष्टा भी नहीं, दर्शन भी नहीं; कर्ता भी नहीं, भोक्ता भी नहीं, भोग्य भी नहीं । यह जो एक अवस्था है न-उसको थोड़ा सा समझ सकते हैं ।-यानी एक झलक उससे मिलती है कि जहाँ observer यानी निरीक्षक और जो observed है-जो द्रश्य है, इन दोंनो का सम्बन्ध क्या है ? दर्शन द्रष्टा में समा जाता है और द्रष्टा का दृष्टाभाव भी समाप्त होकर केवल चैतन्य की सत्ता-मात्र रह जाती है । The Pure-Is-ness । विशुद्ध सत्ता चैतन्य की, आत्मा की, शेष रह जाती है । साक्षित्व शब्द भी सोपाधिक है-वह भी अच्छा नहीं है । मैंने कह दिया । लेकिन उस शब्द को भी वापिस ले लेती हूँ । साक्षित्व भी सापेक्ष है । It is a relative term; witness of what ? साक्षित्व किसका ? इसलिए वह भी शब्द कुछ हल्का पड़ गया । मैंने सुबह कहा था न, कि बड़ी परेशानी है । उसको भी हटा लीजिये । रह जाता है विशुद्ध अस्तित्व । विशुद्ध चित्सत्ता ।

Have I answered your question ?

प्रश्नकर्ता : Is there a vacuum ?

Vacuum यानी क्या ? Vacuum का अर्थ क्या है ?

Vacuum का अर्थ-रिक्तता के अर्थ में Vacuum कह रहे हैं ? क्योंकि शून्यता Vacuum नहीं है । रिक्तता में और शून्यता में फ़र्क है । Tub है । Tub में पानी भरा था । पानी को निकाल दिया । Tub रिक्त हो गया । Tub शून्य तो नहीं हुआ । तो रिक्तावस्था में और शून्यावस्था में फ़र्क है । आप लोग और हम लोग सब इस कमरे में बैठे हैं । आपके और मेरे बीच जो space है- वह रिक्तता नहीं है । The space between you and me आपके और मेरे बीच Vacuum नहीं हैं न । space है और वह जो space है-वह जो अंतराल है-वह जो अवकाश है-वह घन है ।

अत: Vacuum नहीं रह जाता-रिक्तता तो नहीं रह जाती; लेकिन-!

यह तो पवन को मुट्ठी में बांधने का प्रश्न पूछ रहे हैं ! पवन को मुट्ठी में बांध कर दिखा दूं-ऐसा प्रश्न है यह ! और पवन को कोई मुट्ठी में बांध नहीं सकता ! रिक्तता नहीं रह जाती है । शून्यता रह जाती है । यानी द्रश्य जब द्रष्टा में समा जाता है -when observed becomes one with the observer उसमें जो विशुद्ध चित् सत्ता-Pure Isness है,-उस Isness में passivity नहीं हैं, उसमें जड़ता नहीं है-उसमें रिक्तता नहीं है । उसमें है सघनता । सर्जक की, creativity की, सर्जनशीलता की ऐसी सघनता है कि जहाँ भी उसको कोई स्पर्श करने जायगा, तो किसी बिजली के तार-high voltage कहते हैं न, ऐसे किसी तार का स्पर्श हो जाय तो उस प्रकार झनझना जायेंगे ! तो ऐसे Pure Imess में, विशुद्ध चित् सत्ता में, प्रयोजन और हेतु रहित अवस्था में रहने वाले व्यक्ति का, स्पर्श तो क्या, उपस्थिति भी, दूसरों के जीवन में आमूलाग्र परिवर्तन ला देती है । इसलिये वहाँ रिक्तता नहीं है । वहाँ भयानक सघनता-खतरनाक सघनता है । The intensity, the gap and the infinity of motion-चूँकि चैतन्य का स्वभाव भी dynamism है न, energy का स्वभाव ही dynamism है न,-तो वह ऐसी कुछ सघनता भरी पड़ी है, इतनी उसमें गहराई है, इतनी समृद्धता उसमें है-कि कहीं से भी, उपस्थिति मात्र से भी, परिवर्तन लाने की शक्ति वहाँ शून्यता में है ।

प्रश्न : आप ने उसे 'ख़तरनाक' क्यों कहा ?

वि० : ख़तरनाक इसलिये, भाई, कि मनुष्य बड़े-बड़े स्वप्न रखता है । बड़ा होऊँगा, धन कमाऊँगा, घर बसाऊँगा, मेरी स्त्री-मेरे बच्चे-मेरा मकान, मेरी दौलत-मेरा समाज-मेरा धर्म-और वह तो जो मेरा कहने वाला है, उसी को उठा कर भागता है ! इसलिये मैंने उसको ख़तरनाक कहा कि वह फिर अहं और मम, मैं और मेरा, दोनों चीज़ों को हटा देता है । पाँव रखने को अहंकार के धरती नहीं है । और हाथ फैलाने को ममता के परिधि नहीं है-। ऐसे एक क्षेत्र में जाकर खड़ा हो जाता है । It is a bottomless pit. And it is a directionless motion. घबड़ा जाता है न !

और ख़तरनाक जान बूझ कर भी कहा । क्योंकि आजकल अध्यात्म आप के समाज में बहुत fashionable होने लगा है । इसलिये मैं भी कह रही हूँ कि यह ख़तरनाक चीज़ है । इसके साथ सम्हल कर पेश आना चाहिये ।

प्रश्न : आप ने कहा कि-'ऊर्जा का संचार कभी बंद होता है ।' वह क्यों और कब बंध होता है ?

उत्तर : अभी आकर कोई गरदन काट ले तो अभी ऊर्जा का संचार बंद । उसमें तो-biological changes हैं न, human body में ? अनेक अनेक factors हैं उसमें । अनेक तत्त्व आ जाते हैं । यह तो शरीर भी हमारा एक collective entity है न । शरीर भी biologically, it is a collective entity. उसको आप की परिभाषा में रखूं तो पञ्चमहाभूत हैं उसमें ।

अब, कब और कैसे बंद हो जाता है ? किसी का accident से बंद हो जाता है-किसी का व्याधि से बंद हो जाता है-किसी को विचार का, भावना का, इतना धक्का लगता है कि उस jerk से ही बंद हो जाता है । Now, what are you exactly asking ? I wonder if I have got you ? आप पूछना क्या चाहते हैं, भाई, ?

प्रश्नकर्ता : उसकी कोई-human body की कोई-मर्यादा कोई time-limt..?

उत्तर : अरे, भाई, हिन्दुस्तान में ४८ साल की मर्यादा है । तो वह डेन्मार्क और नार्वे में ८० साल में बूढ़े और बूढ़ियाँ सायंकाल को घूमते हैं मजे में ! मर्यादा कैसी बतलाई आपने ?

आप कुछ दूसरा सवाल पूछना चाहते हैं । मैं समझ रही हूँ । लेकिन आप पूछेंगे, तभी जबाब दूंगी ! आपका point दूसरा है । यह point नहीं है ।

लिखित प्रश्न : ''आप कहती हैं कि कर्म और आध्यात्मिकता का समझौता नहीं हो सकता ।-

तो क्या गांधीजी, आचार्य विनोबाजी, विवेकानन्द स्वामी जी ने जो किया, वह अध्यात्मजीवन नहीं था ? या अध्यात्म का अर्थ, पवित्रता, कर्मण्य अवस्या में रहना है ?''

किसी ने सवाल पूछा है कि कर्म का और अध्यात्म का समझौता नहीं हो सकता है ? ऐसा कब कहा, भाई, मैंने कहा था । धर्म का समझौता नहीं है ।

एक बहन : कहा था कि-व्यावसायिक जीवन सुख-सम्पत्ति बढ़ाना वगैरह...उसके साथ समझौता अध्यात्म का-नहीं हो सकता ।

उत्तर : ओ..हो..हो..हो.. । हां, भाई मेरे, मुझे ज़रा अभिव्यक्ति का अभ्यास नहीं है, तो मैं ठीक से रख नहीं पाती हूँ ऐसा है-मैंने यह कहा कि आप व्यवसाय में हैं । आप नौकरी में हैं । आप व्यापार में हैं । आप राजनीति में हैं । आज जिस प्रकार से, मूल्यों को लेकर आप चला रहे हैं-वे मूल्य, वे मान्यताएं-वे भी कायम रहें, और यह जो आत्मसाक्षात्कार है, वह भी उपलब्ध हो-ये दोनों नहीं हो सकते हैं ।

उदाहरण मैंने उसी समय दिया था कि यदि आपकी समझ में आ जाय कि सत्य से चलना चाहिये तो आप सच बोलेंगे । जो सत्य आपकी बुद्धि देखती है, वह सत्य आपकी वाणी बोलेगी । और वह सत्य आप बोलने जायेंगे, तो फिर आप व्यापार में हों, तो income-tax के लिये दूसरा झूठा रजिस्टर नहीं बना पायेंगे । मैं आपको, किस अर्थ में, मैंने कहा होगा, यह समझा रही हूँ । कि भाई, Income Tax के लिये अलग रजिस्टर रखो, और अपना private है वह अलग रखो । आप कर ही नहीं पायेंगे । आप कहेंगे-ठीक है । government higher, highest taxation क्यों नहीं लाती है । मैं समाज में रह रहा हूँ, तो जितना देना है-दूँगा । फिर मेरे हिस्से में २५% के बदले १०% बचें, कोई बात नहीं । या तो मैं समाज में रहूँगा नहीं, जंगल में जाके रहूँगा, या यहाँ रहता हूँ तो मैं evasion of income-tax नहीं करूँगा । यदि आध्यात्मिक व्यक्ति है-तो उसको inner compulsion पैदा होगी कि वह व्यक्ति smuggling नहीं कर सकेगा । वह black-marketing नहीं कर सकेगा । वह नौकरी कर रहा है, यदि उसका वरिष्ठ अधिकारी है, वह वरिष्ठ अधिकारी शिक्षण क्षेत्र का हो या और कहीं का हो- वह उससे कोई झूठा काम कराना चाहता है-तो वह नहीं करेगा । वह कहेगा कि यह काम मैं नहीं करूँगा । 'अरे तू नहीं करेगा तो तेरी नौकरी छूट जायेगी ।' 'कोई बात नहीं, छूट जायेगी-लेकिन मैं यह काम नहीं करूँगा ।'

इस अर्थ में मैंने कहा-कि जिस प्रकार के मूल्यो को, मान्यताओं को लेकर आप आज चलते हैं-समाज की प्रतिष्ठा, धन, दौलत, संग्रह,-आज तो यह है कि 'येन केन प्रकारेण धनिको भवेत् । येन केन प्रकारेण सत्ताधीशो भवेत् ।' तो यह 'येन केन प्रकारेण' वहां चलेगा नहीं । यह मैं कह रही थी । कि सत्य की एक चिनगारी, एक किरण भी चेतना को छू जाय, तो आपके जीवन के हर पहलू में वह ऐसा एक

घोर मंथन पैदा कर देगी, एक विप्लव पैदा कर देगी। फिर आप यह नहीं कह सकेंगे कि मैं तो किसी का भी शोषण करके पैसा कमाऊँगा, और बाद में मन्दिर बांधने के लिये दान कर दूँगा, तो फिर यह पाप जो है, वह हट जायेगा। आप कहेंगे-इतना कमाना ही क्यों भाई! सत्य से, न्याय से, धर्म से रहकर जितना कमा सकता हूँ, उतना कमाऊँगा। पहले कमाओ, और फिर दान से पाप का परिमार्जन करो। यह कौन करे?

तो यदि मैंने समझौते की बात कही तो यह समझौता इस प्रकार नहीं हो सकता। धार्मिक व्यक्ति कर सकते हैं। मन्दिर में जायेंगे, पूजा करेंगे। आहार में शुद्धता रखेंगे। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि ऐसा व्यक्ति अपने घर जाकर, पति है तो पत्नी से ईर्ष्या नहीं करेगा, उस पर क्रोध नहीं करेगा, नौकरों को डांटेगा नहीं, बच्चे को मारेगा नहीं। यह नहीं हो सकता। धार्मिक व्यक्ति बहुत धार्मिकता के साथ ये सब कर सकते हैं लेकिन आध्यात्मिक व्यक्ति यह कर नहीं पाता। इसलिये समझौते की बात मैंने कही कि समझौता नहीं होता।

आपने आगे पूछा है-गांधीजी, आचार्य विनोबा जी, और विवेकानन्द स्वामी ने जो किया, वह अध्यात्म-जीवन नहीं था? क्या अध्यात्म का अर्थ पवित्रता, कर्मण्य अवस्था में रहना है?

पहले तो भाई, आप और हम कर्म नहीं करते हैं। हम क्रियारत हैं। Activity and action-ये दो चीज़ें भिन्न हैं। इन्द्रियों के वश होकर, इन्द्रियों की गुलामी में, इन्द्रियों की हकूमत में जो कुछ होता है, वह क्रिया है, Activity है। वह Action नहीं है। और मैंने यह कहा होगा कि अध्यात्म में इस प्रकार का जो क्रियासक्त जीवन है, इन्द्रियों की गुलामी में जो कुछ किया जाता हैं, पराधीन चेष्टा जो है, वह नहीं रहती।

कर्म तो हम जानते ही नहीं हैं न। कर्म का प्रारम्भ ही वहाँ है जहां इन्द्रियों की और मन की गुलामी समाप्त होती है, वहाँ समग्रतां में से कर्म खिल उठता है। जैसे कोई कमल खिलता हो।

क्रिया-मात्र खण्डित है। मन एक चाहता है, तो बुद्धि दूसरा चाहती है। हमारा तो मन कुरुक्षेत्र है भाई। इसमें परस्पर विरोधी वासनायें आकांक्षायें हैं,-इनका युद्ध चलता रहता है। कभी इसके गुलाम, कभी उसके गुलाम। तो क्रिया

मात्र समग्रता में से नहीं उठती है । Every mental activity is a fragmented avtivity. It is not born out of totality of your being. आपकी समग्रता में से कर्म का पुष्प तब खिल उठता है जब इन्द्रियों की और मन की गुलामी समाप्त होती है ।

तो, अध्यात्म में ही, आत्मदशा में ही कर्म सम्भव है । तब तक नहीं ।

अब आप गांधी, विनोबा या विवेकानन्द जी का प्रश्न मुझे क्यों पूछते हैं ? गांधी, विनोबा या विवेकानन्द जी का बाहरी जीवन जो किताबों में लिखा गया, वही आप और जानते हैं । उन लोगों का जो आन्तरिक जीवन होगा-वह कौन जानता है ?

विनोबा चलते हुए भी चलते हैं कि नहीं, उनके चलते हुऐ शरीर में शान्त मन है और हमारे बैठे हुए शरीरों में बिना टिकट दुनिया में घूमने वाला मन है । वे चलते हैं कि नहीं चलते हैं ?

आन्दोलन का नेतृत्व उनके व्यक्तित्व पर इतिहास ने लाद दिया, लेकिन नेतापन की भावना उनमें है या नहीं इसका आपको पता नहीं होगा । लेकिन हम तो अपने-अपने घर में और 'ग्रुप'(group) में नेता बनकर बैठते हैं ।

गांधीजी को तो मैंने देखा नहीं । मैं उनकी बात क्या करूँ ! विवेकानन्दजी को देखा नहीं है, उनकी बात क्या करूँ ! लेकिन विनोबा को देखा है । ऐसे जो जड़ लोग है उनके बारे में अनुमान से बोलने का पाप मैं क्यों करूँ ?

लेकिन जो देखा है वह यह देखा है कि शरीर चलता है । लेकिन शरीर के भीतर बैठा हुआ व्यक्ति चलता है कि नहीं कौन जानता है ? किसी ने विनोबा को पूछा था कि-'तुम ब्राह्मण हो तो देशस्थ ब्राह्मण हो कि कोंकणस्थ ब्राह्मण हो ?' महाराष्ट्र में वह फ़र्क है-कोंकण में रहने वाले कोंकणस्थ और इधर मैदान में रहने वाले, पूना की ओर नागपुर की तरफ़ रहने वाले देशस्थ हैं । विनोबा ने कहा कि-"मैं कायस्थ हूँ और आत्मस्थ हूँ । काया में रहता हूँ और आत्मा में प्रतिष्ठित हूँ । अब मेरी जाति जो समझनी है, वह तू समझ ले ।" अब ऐसे आदमी कर्म करते हैं कि नहीं करते हैं यह बताने वाले आप और हम कौन !

हाँ, इनकी चर्चा तो आप छोड़ दीजिये । व्यक्तिसापेक्ष प्रश्न मत पूछिये मुझे । उसमें सीखने का इतना है कि हजारों में रहते हुऐ भी वे आत्मरत हैं ।

(क) प्रात:काल, संवाद दिनांक-२२-१-१९६८

जीवन का प्रयोजन सुख नहीं है, जीवन का प्रयोजन ज्ञान नहीं है, जीवन का प्रयोजन कर्म या भक्ति भी नहीं है, जीवन का प्रयोजन आनन्द है। The pupose of life is Bliss.

इसका अर्थ यह नहीं कि शरीर को सुख में न रखें। एक sadistic view (पीड़नरतिक द्रष्टिकोण) लेकर शरीर को कष्ट में रखें यह अभिप्राय ज़रा भी नहीं है। जीवन का प्रयोजन ज्ञान नहीं, इसका अर्थ यह नहीं है कि अज्ञान में रहें। ज्ञान यानी जो वस्तुएँ हैं-जो पदार्थ हैं, जो सृष्टि है-उसकी यथार्थता से परिचय। Correct information about the objects around you-dead and alive, both. तो परिस्थिति में जो यथार्थता है उसका सम्यक् दर्शन ज्ञान कहलाता है। 'ज्ञान प्रयोजन नहीं'-इससे यह मत समझिये कि अज्ञान की तरफ़दारी हो रही है; मूढ़ता की तरफ़दारी हो रही है; ऐसा मत समझिये। हाथ हैं, पाँव हैं, मन है, बुद्धि है-उनको चलाना है। फिर ढंग से चलायें। ये वाहन मिले हुए हैं। आप के पास वाहन है-मोटर है-तो उसकी टंकी में पेट्रोल न हो, उसको oil (तेल) दिया हुआ न हो,- gears jammed (गीयर' फँसे हों, अटके हों) हो, brakes (ब्रेक) काम न करते हों- और फिर आप मोटर चलाने बैठें-तो कोई समझदार व्यक्ति आपकी मोटर में नहीं बैठेगा। वह कहेगा कि ये मोटर को चलाने की क्षमता रखते नहीं है। इसमें नहीं बैठना चाहिये। तो जिस तन में और मन में हमारा निवास है, हम रहते हैं-उसको स्वस्थ रखना, सुन्दर रखना, समर्थ रखना, ये तो आवश्यकतायें हैं; लेकिन यह जीवन का प्रयोजन नहीं। सुख के पीछे दौड़ने वाले मनुष्य ने विज्ञान की मदद से, यंत्रो की मदद से, औषधियों की, द्रव्यों की मदद से, तन को, मन को सुख में रखने का बहुत प्रयास किया है। आज तो ऐसे द्रव्य निकले हैं, ऐसी औषधियाँ निकली हैं-कि यदि आप दु:ख में हैं तो आपकी गरदन का कोई एक local point of pain पीड़ास्थल होता है-या pleasure (सुख) का स्थान होता है-तो उस सुख की जहाँ से संवेदना उठ सकती है-ऐसे point

(स्थान) को वे tickle (गुदगुदी) कर देते हैं। या एक रसायन उसमें inject (इंजेक्ट) कर देते हैं। तो आप घोर दु:ख में क्यों न हों आप हँसने लगेंगे। अमेरिका में डॉक्टरों ने यह तज्वीज़ निकाली है-यह व्यवस्था निकाली है कि दु:ख में हों-if you are in the blues, बहुत depression में हैं तो pain-points and pleasure-points have been located in your neck and in the back side of the brain. (गरदन में और मस्तिष्क के पीछे पीडा और सुख के स्थान या केन्द्र-बिन्दु खोज निकाल गये हैं) तो उन्हें दबाने से दु:ख-संवेदन हट सकता है। इस तरह मस्तिष्क में जैसे आप का point of balance (संतुलन का केन्द्र-बिन्दु) होता है, point of sight (दर्शन का केन्द्रबिन्दु) होता है-मस्तिष्क में ऐसे केन्द्र-बिन्दु हैं कि जहाँ आपका संतुलन balance का बिन्दु है-वह चलित हो जाये-या वह काम न करे, तो आप खड़े होते ही चक्कर खाकर गिर जाते हैं। या auditory nerves (श्रवण-सम्बन्धी स्नायु) हैं, उनकी क्षमता घट जाये, तो आप सुन नहीं सकते। उनको जिस प्रकार समर्थ बनाया जा सकता है, उस प्रकार ये जो दु:ख और सुख के points (केन्द्र-बिन्दु) locate (निश्चित स्थान वाले) कर दिये गये हैं, तो जेब में-वहाँ के करोड़ पति ऐसी डिब्बियां रखते हैं battery (बैटरी) होती है। तो उसको अपेक्षित point (केन्द्र-बिन्दु) के साथ जोड़ देंगे। तो जो दु:ख में हैं, कष्ट में हैं, उनको हँसने की इच्छा होगी तब आनन्द में आ जायेंगे।

सुख के साधन और दु:ख को टालने के तरीके मनुष्य ने बहुत निकाले। फिर भी, सुख की उपलब्धि के बाद भी, आनन्द उसको उपलब्ध न हुआ। सुख में और आनन्द में मूलत: फर्क है। बुनियादी फ़र्क है। सुख दु:ख की छाया है-या दु:ख सुख की छाया है। सुख कभी अकेला आ ही नहीं सकता। जैसे सफलता की छाया में विफलता पलती है, वैसे सुख की छाया में दु:ख पलते हैं। हर्ष की छाया में शोक पलते हैं। वे छिपी हुए रहते हैं-कभी प्रकट हो जाते हैं। लेकिन ऐकान्तिक सुख उपलब्ध किया है जीवन में, और दु:ख का स्पर्श ही नहीं है-यह हो नहीं सकता। क्योंकि सुख जीवन का तथ्य नहीं, चित्त की प्रतिक्रिया है। संवेदना है।

Pain and pleasure are the reactions of mind to objective situations. परिस्थिति के प्रति चित्त की अनुकूल प्रतिक्रिया, प्रतिकूल प्रतिक्रिया; शरीर की प्रतिकूल प्रतिक्रिया-शरीर की अनुकूल प्रतिक्रिया-यही सुख-दु:ख या दु:ख-सुख है।

आप यहाँ बैठे हैं-आप के शरीर को ठंड लगती है और मेरे शरीर को गरमी लगती है। बाह्य जो temperature (तापमान) है, जो जो fact है-जो तथ्य है- वह एक ही है। लेकिन उसमें नितान्त भिन्न ही नहीं-नितान्त विरोधी अनुभूतियाँ एक साथ दो व्यक्तियों को आ सकती हैं। एक कहेगा-'बहुत गर्मी है' दूसरा कहेगा-'बहुत सर्दी है।'

इसलिए संवेदनाओं को अनुभव करने की शक्ति भी देश, काल, परिस्थिति के अनुसार, संस्कारों के अनुसार, बदलती है। सुख एक सापेक्ष अनुभव है। Happiness is a relative experience.

दूसरी बात। सुख जीवन का प्रयोजन इसलिये नहीं है कि सुख में, दुःख में, हर्ष में, विषाद में, एक प्रकार की उत्तेजना है, उसमें संतुलन नहीं है। there is a kind of excitement in happiness as well as in sorrow. और उत्तेजना का अर्थ ही है संतुलन से चलित होना। Poise को, संतुलन को-समतुला कहते हैं शायद, गुजराती में- समतुला को खो देना ही उत्तेजना का जनक है। the content of excitement is temporary loss of balance-of poise.

तो हर्ष में उत्तेजना है, शोक में उत्तेजना है। दुःख में उत्तेजना है, सुख में उत्तेजना है, और उत्तेजना स्वास्थ्य नहीं है।

अतीन्द्रिय अनुभूतियों के बारे में कुछ कहा गया था-सोचा गया था। कहा गया था कि अतीन्द्रिय अनुभूतियों में नशा है, मस्ती है, intoxication है। जिस प्रकार इन्द्रियों की अनुभूतियों में सुख-दुःख हैं, उस प्रकार अतीन्द्रिय अनुभूतियों में भी सुख-दुःख हैं, हर्ष-शोक हैं। और जैसे इन्द्रियों के द्वारा जो सुख हम ग्रहण करते हैं, उसमें नशा है-उस प्रकार अतीन्द्रिय अनुभूतियों में नशा है, उसकी मस्ती चढ़ जाती है। कहते हैं 'वह मस्ताना है'। 'वह बहोश है'। 'बालोन्मत्त-पिशाचवत्'-यह 'बालवत् हो, 'उन्मत्तवत्' हो, 'पिशाचवत्' हो-यह स्वास्थ्य नहीं है।

आनन्द एक ऐसी अवस्था है जिसमें उत्तेजना नहीं है। जिसमें आना और जाना नहीं है। जिसमें बढ़ना और घटना नहीं है। वह कोई ऐसी ज्योति नहीं है जिस में बाहर से तेल दिया जाने पर ही वह जलेगी। वह ज्योति भी है, और तेल भी है, और जो बत्ती

होती है वह भी स्वयं है । Bliss is the movement of self-generating-energy. स्वयं-चालित वह जो ऊर्जा है, उस ऊर्जा की जो सहज गति है, उसका नाम आनन्द है । इसलिए कहा कि जीवन का प्रयोजन सुख नहीं, ज्ञान नहीं, कर्म नहीं, भक्ति नहीं । जीवन का प्रयोजन आनन्द की दशा है ।

और जाने-अनजाने मनुष्य इसकी खोज करता है । वह समझ रहा है कि मैं सुख की खोज में हूँ । लेकिन सुख की खोज नहीं, खोज तो आनन्द की रही और आनन्द की खोज में रास्ते में सुख मिला, उसमें फँस गये; और दु:ख दिखा तो उससे भाग गये-तो आनन्द तक पहुँच नहीं पाते । यह आनन्द की अवस्था जो है-वह आत्मा की सहजावस्था है । यही जीवन है । जीवन का प्रयोजन कहने में प्रारम्भ के लिए सूचक शब्द का उपयोग किया । लेकिन कहना यह चाहते हैं कि आनन्द ही जीवन है । आनन्द का अभाव मृत्यु है और आनन्द की उपलब्धि जीवन है । कल कोई पूछ रहा था कि जब द्रष्टा भी नहीं और दर्शन भी नहीं-तो शेष क्या रह जाता है ? शेष रह जाता है आनन्द ।

यह जो ऊर्जा का सहज हलन-चलन है-वही आनन्द है । तो संसार में रहते हुए, घर-गृहस्थी के अपने जो दायित्व हैं उनको चलाते हुए, अनन्त प्रकार के अनन्त स्वभाव के व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध में आते हुए, मनुष्य का अधिष्ठान इन आनन्द में हो-इसमें जीवन की सार्थकता है-धन्यता है । यह तो हो नहीं सकता कि शरीरधारी हैं, समाज में रह रहे हैं तो दायित्व न हों । समाज के जो नीतिनियम हैं, उनका पालन न हो । रास्ते पर चलने के नियम हैं, परिवार में रहने के कुछ नियम हैं, कुछ मर्यादायें है । परम्परागत न हों-तो सब की सम्मति से निर्माण किये हुए हों, कुछ व्यवस्था है । Understanding for certain management of human relationship, चाहे वह आस्तिक व्यक्तियों के समाज में हो, चाहे वह नास्तिक व्यक्तियों के समाज में हो । जहाँ मनुष्य ने पशुवत् रहना छोड़कर, समुदाय या गिरोह बनाकर रहना छोड़कर, समाज बनाना शुरू किया-वहाँ व्यवस्था को उसने स्वीकार कर लिया और व्यवस्था मर्यादा है ।

इसलिये इनमें तो रहना होता है । लेकिन जैसे मोटर चलाते हुए यह बोध क्षण भर के लिये भी नहीं नष्ट होता कि मोटर मुझसे अलग है और मैं मोटर चला रहा हूँ, विमान मैं चला रहा हूँ-उस प्रकार शरीर में बैठे हुए, यह बोध पल भर के लिये

भी नष्ट नहीं होता है, ऐसी दशा है । पल भर के लिये यह बोध नष्ट नहीं होता कि यह तो वाहन है, जिसमें बैठा हूं । यह वाहन है-इसको चला रहा हूं । उसके लिये कोई वेद वेदान्त उपनिषदों को ही रटने की जरूरत नहीं । पढ़ लो, समझ लो, तो वह भी अच्छा है । उसका निषेध भी नहीं । ग्रन्थों का निषेध और व्यक्तियों का निषेध करना- मुझे नासमझदारी की बात लगती है । उनका आग्रह रखना-व्यक्ति-प्रामाण्य-ग्रन्थ-प्रामाण्य का आग्रह रखना जिस प्रकार एक नादानी है, उसी प्रकार उनका निषेध भी नादानी है । आवश्यकता है, पढ़ लिया, रुचि है पढ़ने की, पढ़ लिया । समझ में आया, समझ लिया ।

ग्रन्थ थोड़े ही कहते हैं कि हममें तुम फंस जाओ ! और शब्द थोड़े ही कहते हैं कि हमारे पिंजड़े बनाकर उनमें तुम्हारी बुद्धि को गिरफ्तार करो ! फंस ने वाला कहीं भी फंसे । ग्रन्थों में और मरे हुए व्यक्तियों में नहीं तो जिन्दा व्यक्तियों में फंसेगा । और प्रामाण्य स्वीकार नहीं करेंगे-इसी का एक सम्प्रदाय बना लेगा । मन की करामात तो है !

इसलिये निषेध नहीं कर रहे हैं । यह कह रहे हैं कि एक आनन्द की, आत्मा की सहजावस्था है यानी आनन्द की एक ऐसी अवस्था है है, जहां प्रतिष्ठित होने के बाद शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सभी व्यवहार करते हुए भी, अधिष्ठान नहीं छूटता । आनन्द को उपलब्ध व्यक्ति के पांव में कांटा चुभ जाय-तो उसके शरीर को वेदना नहीं होगी-ऐसा इसका अर्थ नहीं है । वेदना होगी; शरीर से, पांव से खून भी निकलेगा । वह यह नहीं कहेगा कि शरीर मिथ्या है तो कांटा भी उसमें सड़ने दो । और यह यदि कहता है-तो it is a morbidant perverse mentality (यह एक रोगग्रस्त विकृत मनोदशा है) । शरीर है, कांटा चुभा है, निकाल दो । खून आया है तो दवा लगा लो । पर "कांटा चुभा, कांटा चुभा, कांटा चुभा था, इसलिए दूसरी बार उस रास्ते पर नहीं जाऊँगा"-कहते रहें तो फिर आपने कांटा चुभने की सहज घटना को अपने मन से जटिल बना दिया, और उसमें fear-complex जोड दिया । अब यह मन की करामात है । कांटे ने नहीं कहा कि मुझ से डरो । अवधान नहीं था, कांटा चुभा । सहज घटना है । जीवन बड़ा सरल है । मैं मनुष्य की यह जीवन को जटिल बनाने की 'कुशलता' देख कर हैरान हो जाती हूं । और फिर मनुष्य अपनी ही निर्मित जटिलता के जाल में ऐसे फंस जाता है-कहता है, 'मैं बंध हो गया हूँ, मैं बंध हो गया हूँ' । न

मुझे बन्धन दिखता है, न मुक्ति दिखती है । सहजावस्था जीवन है । मुक्ति की महिमा गाने वाले अप्रत्यक्ष से रीति से बन्धनकी महिमा गा रहे हैं । 'मुक्ति और मोक्ष जीवन का ध्येय है' कहने वाले जाने-अनजाने बन्धन को बहुत गौरवशाली स्थान दे रहे हैं । बन्धन है कहाँ-जो मुक्ति हो ?

Maladjustments (कुसमंजसताएँ) हैं । Emotional and intellectual maladjustment with reality is called bondage. (वास्तविकता के साथ भावनात्मक और बौद्धिक कुसमंजसताएँ ही बन्धन कहलाती हैं) । परिस्थिति के साथ जो तुम्हारा सम्बन्ध है, जो व्यवस्था होनी चाहिये-वह वैज्ञानिक व्यवस्था कर नहीं पाये हो, देह के साथ जो नाता तुम्हारा है, रिश्ता है, -उसको समझ नहीं पाये हो । मन के साथ नाता, रिश्ता, सम्बन्ध है उसको नहीं समझ पाये हो तो जिसको आप लोग बन्धन कहते हैं, दु:ख कहते हैं संसार..., 'भवसागर' कहते हैं-पता नहीं, क्या क्या..., 'घोर है', 'दुस्तर हैं- ऐसी निन्दा करते हैं, इसी संसार में रहते हुए, इसी देह में रहते हुए । उस देह के एक-एक रोम में एक-एक ज़बान होती तो आप लोगों की ख़बर लेती ! बेज़बाँ है । निन्दा करते जाते हैं ।

ब्रह्मचर्य और संन्यास का स्तोत्र जिस देश में गाया जाता है, समझना चाहिये-वह देश विकृत काम से ग्रस्त है । sex-obsession (यौन भावना से अभिभूत होने)के सिवा ब्रह्मचर्य और संन्यास को इतना अनावश्यक महत्त्व कोई समाज नहीं देगा । सारे समाज की चेतना में यह बीमारी फैली है । जब यह बीमारी फैल जाती है तब उसके sublimation (उदात्तीकरण) के लिये ब्रह्मचर्य और संन्यास के स्तोत्र गाये जाते हैं ।

इसलिये कहा कि आनन्द की अवस्था एक ऐसी अवस्था है, जिस अवस्था में, अधिष्ठान में प्रतिष्ठित होने के बाद, जो प्राप्त परिस्थिति है, जीवन जो-जो आप के सामने लाता है, जिन व्यक्तियों को लाता है जिन परिस्थितियों को लाता है, उसमें स्वीकार की भावना नहीं, त्याग की भावना नहीं-जो सामने आया है उसके साथ जीते चले जाते हैं ।

मनुष्य मानता है-जो हमारे सामने नहीं है, उसके पीछे दौड़ना पुरुषार्थ है । जो सामने आया है, उसमें से अपनी बुद्धि से choice करके, पसंदगी करके, उसमें से

व्यक्तियों को चुनना, वस्तुओं को चुनना-और अपनी चुनी हुई परिस्थितियों में फिर कहना कि-"मुझे आनन्द आता है" वह आनन्द नहीं है । वह अहंकार द्वारा अपनी सुरक्षा के लिये निर्माण की हुई दीवारें हैं । क्योंकि जिसके साथ आप की temperamental (स्वभावगत) adjustment (समंजसता) नहीं होती, ऐसा व्यक्ति सामने आते ही आप को प्रतिकूल संवेदना होती है । कहते हैं न, I feel uncomfortable. (मुझे असुविधा होती है) वह, उस व्यक्ति के साथ ही । घर में हमें अच्छा लगता है । पराई जगह चले गये तो हमें uncomfortable (असुविधाजनक) लगता है । इसका मतलब यह है कि अहंकार ने आपके इर्द गिर्द पूरी एक जेल-(jail) की दीवारें बना दीं । ऐसे ही व्यक्ति हों, ऐसी ही परिस्थिति हो, तब मैं संतुष्ट रहूँगा ।

यह जीवन जीना नहीं है । यह नदी की बहती हुई धारा में एक छोटा-सा तालाब बनाने की कोशिश है-कि मैं अपने लिये अपना मेरा निवास स्थान बना लूंगा । धारा के साथ कौन तैरेगा ? तो धारा का जो प्रवाह है उससे तो मैं सुरक्षित रह जाऊँगा, लेकिन जीवन की शीतलता तो प्राप्त करूँगा । उसकी ताज़गी भी चाहिये, शीतलता भी चाहिये, लेकिन उसका प्रवाह नहीं चाहिये ! तो उसकी गति में, जीवन और धारा की गति में, मैं स्थिति के लिये, सुरक्षा की एक दीवार खड़ी कर दूंगा । इसका नाम choice चुनाव है ।

मेहरबानी करके यह मन समझिये कि हमको जैसा चाहिये वैसा हम मकान नहीं बनायेंगे ? ऐसे प्रश्न मन में मत उपस्थित होने दीजिये कि हमको जिस रंग की साड़ी पहननी है उस रंग की हम साड़ी भी नहीं पहनेंगे-कपड़े भी नहीं पहनेंगे ? यह नहीं कह रहे हैं । यह भी कहने की ज़रूरत है । लेकिन आज वह विषय प्रस्तुत नहीं है । नहीं तो, आप देखेंगे कि किस रंग का वस्त्र कौन-सा व्यक्ति चुन लेता है-उस रंग पर से उसकी मानसिक अवस्था का पता चलता है । भावनाओं का, हर भावना का रंग होता है, हर विचार का रंग होता है-और उस विचार और भावना के रंग के अनुसार आप का बाहरी वस्त्रों का choice (चुनाव) होता है । so, choice is a reflection of your inner quality of the mind. (इसलिये, चुनाव या पसन्दगी आप के मन के आन्तरिक गुण का प्रतिक्षेप या प्रतिबिम्ब है) लेकिन यह विषय प्रस्तुत नहीं है-अत: जाने दें ।

जैसी आपकी आन्तरिक अवस्था होगी, उसके अनुसार आप बाहर के projection (प्रक्षेप) करेंगे। आप के मकान, आप के वस्त्र आप का fashion (फेशन) आप के शब्दों के प्रयोग, आप के gestures (अङ्गभङ्गियाँ)- They are nothing but extensions of your inner state. (वे और कुछ नहीं, आपकी आन्तर अवस्था के वितान मात्र हैं) तो, भीतर का प्रतिबिम्ब बाहर पड़ता ही है।

कह यह रही थी मैं, कि आनन्द की अवस्था, आत्मा की सहजावस्था, एक ऐसी अवस्था है कि जिसमें अधिष्ठित होने के बाद वहाँ पर से आप को कुछ डिगा नहीं सकता-हटा नहीं सकता है। नहीं तो आप लोग देखियेगा कि कया होता है? सत्संग में गये, आनन्द आया। 'बहुत अच्छा लगा', कहते हैं। तीर्थ में गये। चार रोज़ रहे, पांच रोज़ रहे। बड़ा आनन्द आया। और वापस लौटे घर में तो? वह आया था न, वह कहां गया? ! फिर गया कैसे ! फिर bore होने लगे, फिर से ऊब गये तो आनन्द कोई सागर में आने वाला भरती-ओट (ज्वार-भाटा) है? ऐसे आनन्द का आना भी किस काम का जो चला जाता है ! अपनी लहर से आयेगा, और अपनी मौज से चला जायेगा !

वह भी फिर एक एक भावना हुई। भावना को मैंने विकृति कहा था। उसको उत्तेजना-excitement कहा था। तो यह न समझना कि आत्मदशा जो है- जिसको आप कैवल्य कहेंगे, जिसको निर्वाण कहेंगे, केवल अवस्था कहेंगे,-जो कुछ, जो भी नाम देंगे, साक्षित्व कहेंगे, Awareness कहेंगे, सावधानता कहेंगे-वह कोई भावना है। अवस्था का कोई भी नाम दीजिये। नाम ऐसा होना चाहिये कि जिसमें द्वैत का आभास भी न हो। जिसमें से द्वैत निकालने की सम्भावना न हो, ऐसा शब्द कोई भी ले लीजिये। तारीफ़ तो यह है भाषा की-मानवीय भाषाओं की-कि उसमें अद्वैतसूचक शब्द नकारात्मक हैं। यह नहीं-वह नहीं-''नहीं' की भाषा में बोलना पड़ता है। ''है'' की भाषा में कहा तो हमारा सारा ''है'' का भान ही द्वैतमूलक है।

जीवन का प्रयोजन ऐसी आत्मदशा है। कल हम कह रहे थे कि जब निरीक्षण करने लगते हैं-२४ घण्टे-निरीक्षण की एक जो attitude है, एक द्रष्टिकोण है, एक वृत्ति है, इसमें जब रह कर व्यवहार करने लगते हैं-तो एक तरफ़ से सावधानता बढ़ती है और दूसरी तरफ से बाह्य परिस्थिति और भीतर से उठने वाली प्रतिक्रियाएँ-इन दोनों को एक साथ देखने की, तटस्थता की शक्ति बढ़ती है,

तटस्थता के सिवा निरीक्षण सम्भव नहीं है । जिस पल में तटस्थता विलीन हो जाती है, उस क्षण में जो घटित होता है उसके प्रति कोई-न-कोई प्रतिक्रिया करते हैं । The moment you react, you stop observing. जिस पल में तटस्थता हट गई, उस क्षण में-उस पल में निरीक्षण समाप्त हुआ-introspection (अन्त:-समीक्षण) शुरू हुआ उसका मूल्यांकन शुरू हुआ । मैं यह कह रही थी कि जो लोग ध्यानावस्था की तरफ़ बढ़ना चाहते हैं, उनको यह निरीक्षण की कला और विज्ञान जो हैं-इनका कुछ प्रयोग अपने जीवन में करना चाहिये । बाह्य परिस्थिति तो आप देखते हैं, फिर बाह्य परिस्थिति में से उठने वाली जो प्रतिक्रिया है, उसके वश होकर व्यवहार न करते हुए, प्रतिक्रिया को भी वैसा ही देख लीजिये जैसा कि बाह्य परिस्थिति को देखते हैं ।

किसी ने गाली दी तो इन शब्दों को आपको शब्दकोश में लिखा हुआ अर्थ मालूम है । 'गधा' कहा, 'बेवकूफ़' कहा, और कुछ कहा । तो उन शब्दों का अर्थ मालूम है । उस व्यक्ति के मुँह से शब्द निकले, आप तक पहुँचे, तो भीतर से प्रतिक्रिया क्या हुई ? हँसी आयी ? क्रोध आया ? irritation (क्षोभ) annoyannce (खीझ) उठी ? क्या उठता है ? तो जितनी तटस्थता से 'बेवकूफ़' इस शब्द को देखा, और सुना, उसी तटस्थता से भीतर उठने वाली प्रतिक्रिया और वह आप के साथ जो शरारत करती है-उसको देख लीजिये । एक खेल के तौर पर । Just for the fun of it.

कहा था कि इस प्रकार जब देखने लेगते हैं तो परिस्थिति और प्रतिक्रिया-दोनों से आप, प्रयास न करते हुए अलग हो जाते हैं । आप कहेंगे-'उनसे हम अलग होना चाहते हैं', नहीं अलग हो पायेंगे । लेकिन निरीक्षण में एक बहुत बड़ी जो तारीफ़ है, जो सिफ़्ट है, जो कला है, जो सामर्थ्य है-वह यह है कि निरीक्षण करने वाला व्यक्ति अनायास परिस्थिति और प्रतिक्रिया-दोनों के स्तर से ऊपर उठ जाता है । अलग हो जाता है । एक तरफ़ से सावधानता और दूसरी तरफ़ से अलिप्तता,-तटस्थता-साक्षित्व-ये दोनों सध जाते हैं ।

उसका मतलब यह नहीं है कि जो आवश्यक है, वह आप नहीं करेंगे वहाँ । भूल से जाकर दरवाज़े से टकरा गये या दरवाज़े से जाना था तो दीवार से टकरा गये, तो दीवार से ही टकराते रहिये-दरवाज़े से मत जाईये ! यह इसका मतलब नहीं । दीवार

से टकरा गये हैं तो पीछे हटेंगे, दरवाज़ा कहाँ है, देखेंगे, ताकि उसमें से जा सकें। आप के साथ व्यवहार करने वाला व्यक्ति झूठ बोल रहा है-उसके चित्त में कपट है-उस कपट का बोध होने के बाद दो प्रकार से व्यवहार हो सकता है। या तो वह कपटमय व्यवहार है, इसलिये वह आदमी ही कपटी है-कह कर उसकी निन्दा करना-और उसके लिये एक prejudice (पूर्वग्रह) बना लेना कि वह व्यक्ति कपटी है-आज उसने कपटमय व्यवहार किया, इसलिए वह व्यक्ति कपटी है-आज है-कल रहेगा-परसों रहेगा ! कपटी ही मरेगा वह ! इसलिये मैं उसके साथ जो व्यवहार करूँगा, तो उसमें कुछ घृणा का भाव आ जायेगा। यह एक पद्धति हुई।

और-''जिसने कपटमय व्यवहार किया वह व्यक्ति अपना ही नुकसान कर लेगा-जो काम हम दोनों मिलकर करने जा रहे हैं, उस काम का भी नुकसान होगा-तो इसके कपट का प्रतिकार करना पड़ेगा-इसका निषेध किये बिना, इससे द्वेष किये बिना।'' यह दूसरी पद्धति हुई। तो यहाँ कपट के बोध में से यह जो कपट का obstacle, hurdle-यह बीच में प्रत्यवाय आ गया है-इस प्रत्यवाय को लाँघने में क्या करना चाहिये, यह बुद्धि सोचने लगेगी;और लाँघते समय उस अभागे व्यक्ति को भी साथ लेकर लाँघ सके-इसकी भी कोशिश होगी। यदि उस व्यक्ति का दायित्व आपके ऊपर नहीं है, तो उसको छोड़ देंगे-लेकिन स्वयं कपट का शिकार नहीं बनेंगे। यह न समझिये कि प्रतिक्रियाओं के साक्षित्व में से ऐसी जड़ता आ जाय कि कोई आपके साथ कुछ भी करें-आप उसको सहते चले जायें-यह नहीं कह रहे हैं। कह यह रहे हैं कि साक्षित्व में से बुद्धि ऐसी सूक्ष्म बनेगी, ऐसी तीक्ष्ण बनेगी, तलस्पर्शी दर्शन की ऐसी एक अनोखी प्रतिभा उस बुद्धि में जागृत होगी कि देख लिया झट समझ में आया। लेकिन समझ में आने के बाद अपनी शक्ति और अपना समय उसमें react (प्रतिक्रिया) करने में आदमी नहीं खोयेगा।

जीवन एक बड़ा अमूल्य अवसर है। इसको पल-पल में खोना कोई बहुत समझदारी तो नहीं है ! इसलिये प्रतिक्रियाओं में शक्ति को खर्च करना, बाँट देना, उससे चित्त क्षीण होता है, जर्जर होता है। आनन्द के अधिष्ठान में प्रतिष्ठित होने पर व्यवहार चलता है, प्रबोध की अवस्था में रह कर व्यवहार चलता है। सावधान व्यवहार होता है। इसलिये सामान्य व्यक्ति की व्यवहार-कुशलता से शतगुणित अधिक कुशलता ऐसे व्यक्ति में आती है।

सामान्य व्यक्ति की व्यवहार में सावधानता और समग्रता होती नहीं है। इसलिये उसकी ताक़त कम पड़ती है। और सावधान व्यक्ति जो है-उसकी समग्रता में चेतना प्रतिष्ठित होने के कारण, उसकी नज़र से कुछ छूट नहीं सकता। Nothing can escape his notice. इसकी alertness, संवेदन-शीलता, चारों तरफ़ जैसी तलवार की धार होती है न-ऐसी उनकी नजर में तीक्ष्णता आ जाती है। कुछ छूटता नहीं है। क्योंकि प्रतिक्रिया में शक्ति और समय खोना नहीं है, कहीं रुकता नहीं, कहीं फँसता नहीं, कहीं अटकता नहीं। ऐसा व्यक्ति जीवन के साथ क्षण-क्षण में, पल-पल में, उसकी गति में गति मिलाकर जीता चला जाता है। यह आनन्द की अवस्था का सबसे बड़ा परिणाम है। लाभ नहीं! क्योंकि लाभ लेने वाला फिर आप लाओंगे दूसरा! आत्मसाक्षात्कार से क्या लाभ है? मुक्तावस्था से क्या लाभ होता है? अरे, लाभ नहीं, भाई, वह परिणाम है। It is the natural consequence of Bliss. कली खिलने से क्या होता है? उसका क्या लाभ है? कुछ नहीं भाई, कली खिलने से फूल बनता है। फूल के खिलने से क्या होता है? भाई, उसमें जो छिपा हुआ सौरभ है, वह बिखरता है। बिखरने से क्या होता है? उसको क्या मिलता है?

अहंकार की भूमिका से कोई आगे बढ़ना ही नहीं चाहते। Kindergarten (शिशु-शाला) से निकलना ही नहीं चाहते। अध्यात्म के क्षेत्र में यह juvenile delinquency (बचकानी अपचारिता) चलती नहीं है। kindergarten (शिशुशाला) ही है-कि कोई हाथ धरा कर चलायें-हमको! हाथ पकड़ कर हमारा लिखायें तो लिखेंगे! कोई समझाने वाला बैठा ही रहे! अरे, भाई, kindergarten (शिशु शाला) से शुरू इसलिये करना है कि University (विश्वविद्यालय) तक पहुँचोगे। ''नहीं, हमको जाना ही नहीं है! यहां बहुत अच्छा लगता है! दोनों शाम के आकार के,-sister (बहन) हो mother (माता) हो,-वे खिला भी देती हैं-पिला भी देती हैं- रोने लगे तो गोद में उठा लेती हैं, पुचकारती हैं, चूम लेती हैं।-बस जीवन भर यही करो!

इसीलिये तो हमने गुरु बनाकर रखे हैं! mature (परिपक्व) हो जायेंगे तो दायित्व उठाना पड़ेगा अपने आपका। वह उठाने की तैय्यारी नहीं, इसलिये कोई गुरु रखो, कोई व्यक्ति रखो, कोई संस्था रखो! अच्छे हैं-हम जीवन भर

kindergarten (शिशु शाला) में पड़े रहेंगे। भक्ति का यह अर्थ किया है मनुष्य ने! यह चलता नहीं है।

जीवन तो वह है जो निर्भय साहस से खड़ा होता है। एक क़दम उठाया है। आगे के कदम पर क्या आयेगा-मालूम नहीं। लेकिन किसने कहा कि अज्ञात में भय है? 'मालूम नहीं'-इसी में तो जीवन का romance (रोमांन्स) है। अगले क्षण क्या होने वाला है- कल सुबह क्या होने वाला है-आज शाम क्या होने वाला है, इसका भी स्कूल के time-table (समय-सारिणी) जैसा क्रम जिनके पास तैयार है, उन पर मेरी बुद्धि तरस खाती है। उन पर मुझे दया आती है। क्या जीवन जीते हैं। कोल्हू का बैल है-घूमते रहना है। अज्ञात के साथ भय को जोड़ने वालों ने जीवन के साथ बड़ा अन्याय किया है। नित्य नूतनता की शक्ति केवल अज्ञात में हैं, ज्ञात में नहीं है। लेकिन हम तो, जीवन को दोनों हाथों में समेट कर, ज्ञात की जो परिभाषायें हैं, उनके अनुसार category (श्रेणी) बनाकर बाँट देना चाहते हैं। उसका मूल्यांकन करके, टुकड़े करके, कैंची से काट करके अपनी व्यवस्था के अनुसार अपनी इच्छा के अनुसार, जीवन का एक design (नमूना) बनाना चाहते हैं। pattern (ढाँचा) बनाना चाहते हैं। इन लोगों के हाथ में pattern (ढाँचा) बनाने के लिये टुकड़े आ जायेंगे; काँट-छाँट करने का जो एक हर्ष है, उत्तेजना है-वह भी मिल जायेगी-लेकिन जीवन उनकी मुट्ठी से निकल जाने वाला है। विचारों की, नियमों की, यमों की सुइयों से धागे ले-लेकर के उनको जोड़ने जायेंगे-टुकड़े जुड़ जायेंगे-जीवन निकल जायेगा।

तो अज्ञातकी सुन्दरता ही इसमें है कि उसमें unpredictability (अज्ञात भवितव्यता) है, unreliability (अवलम्बनीयता का अभाव) है। अगले क्षण क्या होगा-मालूम नहीं। सांस निकली है, फिर भीतर जायेगी कि यहीं-के-यहीं मामला खत्म होने वाला है-यह भी मालूम नहीं। इसी में तो मज़ा है। जीने का मज़ा ही इसमें है कि इसमें अनिश्चितता है। इस अनिश्चितता से जो भज खाते हैं-वे जी नहीं पाते। फिर वे जीवन को एक तोता बनाकर सोने के पिंजड़े बना कर उनमें उसको मोती का चारा खिलाकर रखते हैं-मोती के दाने चुगने के लिये। सुन्दर-सा पिंजड़ा बनाये हुए हैं। सोने का बनाओ, चाँदी का बनाओ! हीरा-माणिक-मोती उसमें जड़ा दो। तो जीवन कोई तोता नहीं है कि आप के पिंजड़े में आ जाय। आप के हाथ में पिंजड़े रह जाते हैं, जीवन निकल जाता है।

तो, आनन्द के अधिष्ठान में प्रतिष्ठित होने के बाद कल क्या होगा, यह चिन्ता ही नष्ट हो जाती है। यह उसका मज़ा है। परिणाम क्या है ? आने वाला कल निकल जाता है और बीता हुआ कल निकल जाता है-और वर्तमान के आलिङ्गन में आप बड़े प्रेम से जीते हैं।

उसमें कदरूपता सामने आयी तो कदरूपता को देख लेते हैं। सुन्दरता आयी तो सुन्दरता को देख लेते हैं। सम्मान आया तो सम्मान देख लिया; अपमान आया, तो अपमान को देख लिया। बोध दोनों का हुआ-प्रतिक्रिया एक की भी नहीं हुई। इस प्रकार वह जैनों की 'कर्मनिर्जरा' होती है।

मन का उपयोग आनन्द में प्रतिष्ठित व्यक्ति उतना ही करता है जितना कि आप वाहन का उपयोग करते हैं। दस मील जाना है- मोटर में बैठे। दो-तीन मील जाना है-सायकल पर चढ़े-उस प्रकार मन पर आरूढ़ होना-और चलना, काम करना है। engineer (इन्जीनियर) बनना है-doctor (डॉक्टर) बनना है-आप सीखेंगे। यंत्र की कला सीखेंगे। व्यवहार चलाना है-रसोई बनाना सीखेंगे-घर चलाना सीखेंगे। वह सब चलायेंगे आप। मन और बुद्धि पर आरूढ़ होकर आवश्यक सभी कुछ करेंगे-लेकिन, उसमें से कुछ प्राप्त करने के लिये नहीं। क्योंकि सभी प्राप्तियों का जो प्राप्तव्य आनन्द है-वह पहले ही उपस्थित है। आनन्द में प्रतिष्ठित होने वाले व्यक्ति को संसार में कुछ प्राप्त करने का नहीं रहता-इसलिए महत्त्वाकांक्षा की-यह बड़ी contagious (संक्रामक) जो बीमारी है न,-संसर्गजन्य व्याधि-यह महत्त्वाकांक्षा की बीमारी उसकी चेतना को छूती नहीं है। महत्त्वाकांक्षा का काला ज्वर ऐसा है कि एकबार पकड ले-तो छोडता ही नहीं। वह cancerousgrowth ('कैंसर'-जनित वृद्धि) से भी मुश्किल चीज़ है। किन्तु सभी प्राप्तियों का जो सार है-जो निष्कर्ष है-वह आनन्द पहले ही भीतर उपस्थित होने के कारण, उसमें प्रतिष्ठित होने के कारण, बाहर से कुछ प्राप्त करना है-यह उसके चित्त में रहता नहीं है। शरीर में रहना है-समाज में रहना है-करता है, कर देता है। शरीर की वैज्ञानिक आवश्यकतायें पहचानकर उनकी पूर्ति करनी है-साधन जुटा देता है। लेकिन साधनो के पीछे नहीं दौड़ता। सामाजिक प्रतिष्ठा के नाम पर, स्पर्धा के मैदान में उतरकर, अन्धी दौड़ नहीं लगाता।

यह आत्मदशा-जिसको हमने कहा आत्मा की सहजावस्था-जो आनन्द की अवस्था है-उसमें जीने वालों की यह चाल है। ऐसे वे जीते हैं। जहाँ आवश्यक है वहाँ

शब्द का उपयोग किया, लेकिन किसी की खुशामत करने के लिये नहीं, किसी को खुश करने के लिये नहीं, किसी को दु:ख देने के लिये नहीं, अपने भावों को छिपाने के लिये नहीं। जो भाव भीतर नहीं है उसको दिखाने के लिये नहीं- शब्द का उपयोग जहाँ आवश्यक है-कर लिया। हाथ में चिमटा उठा लिया। लेकिन हाथ में चिमटा पल भर के लिये लिया, इसलिये दिनभर चिमटा लेकर घूमते हैं ! रसोई में सँड़सी से काम करना पड़ता है, तो हाथ में सँड़सी लिये घूमते हैं दिन भर ऐसे ही शब्द का उपयोग कर लें। और शब्द का उपयोग करने की जरूतर नहीं है तब ? तब मौन में रहें। आनन्द में रहें। मन का उपयोग करना है, मन का उपयोग किया; नहीं तो निर्विकार अवस्था में मज़ा ले रहे हैं। लेकिन हम जब शब्द की बाहर आवश्यकता नहीं, तो भीतर शब्द को चलाते हैं। मन की आवश्यकता बाहर नहीं है तो भीतर उसके साथ खेलने बैठते हैं brooding, worrying. anxiety, dreaming (चिन्ता, स्वप्नदर्शन)। बाहर ज़बान से बोलकर निन्दा नहीं कर सके- तो भीतर कर लेंगे। शब्द को, विचार को, छोड़ते ही नहीं हैं। भाई, शराब का नशा छूट जाता है इसका नशा नहीं छूटता। और इस नशे में होश क़ायम नहीं रहता है। नहीं तो, मैं आपसे इतनी तीव्र भाषा में बात नहीं करती। लेकिन यह मन की भावनाओं का और विचारों का भी नशा है-उनके साथ खेलते हैं कि कल ऐसा हुआ था-ऐसी अनुभूति आयी थी-ऐसा सुख मिला था-अब फिर इसको प्राप्त कैसे करेंगे। तो फिर भाई, शराब के अड्डे पर जाने वाले को क्यों गाली देते हो-वह भी तो यही कहता है न ! कि शराब के नशे में मुझे जो मज़ा आया था-वह फिर अब मैं कैसे लूँगा ?

आनन्द वह अवस्था है, जो निरपेक्ष है-सापेक्ष नहीं है। मन पर, तन पर, इन्द्रियों पर, बाह्य परिसिस्थिति पर, अनुकूलता-प्रतिकूलता-किसी पर निर्भर नहीं है। सहजावस्था है-आपको राजा की पोशाक पहना दीजिये, भिखारी की पोशाक पहना दीजिये। योद्धा की, लड़वैया की पोशाक पहना दीजिये। भीतर आप जैसे हैं-वैसे हैं। और आप जानते हैं कि मैं यह हूँ। नाटक में राजा का काम किया-या joker (मज़ाकिये) का काम किया-लेकिन wing (रंगमञ्च के पार्श्व) में आते ही कपडे उतारने पर आपको तो मालूम है कि मैं joker (मज़ाकिया) भी नहीं हूँ, मैं राजा भी नहीं हूँ। उस सहजता को कहाँ बाधा है-उसमें विघ्न आता है ? और यह रूपक नहीं, काव्य नहीं। हम, आप लोगों का जो जितना मूल्यवान समय है, इसका दुरुपयोग आपके सामने

कविता बोलने में नहीं करेंगे । अब जीवन ही कविता हो - तो मेरा इलाज नहीं चलता और सत्य में ही सौन्दर्य हो-तो उसमें मैं बेगुनाह हूँ । लेकिन आपके सामने रख रहे हैं जो जीवन का सार, जो निचोड़ है । जो सभी शून्यों का निष्कर्ष देखा गया । जिसमें जी रहे हैं उतनी बात कहेंगे आप से, और नहीं ।

तो एक ऐसी अवस्था में मनुष्य प्रतिष्ठित हो, तब उसके जीवन में से संगीत के सिवा दूसरा कोई नाद-निनाद उठेगा नहीं । और ऐसे व्यक्ति की उपस्थिति, ऐसे व्यक्ति का सहवास, दूसरों के जीवन में-जो बेसुरा होगा-बेताला होगा, उसमें ताल, उसमें लय, उसमें सुरीलापन का निर्माण करने में, सहवास से, उपस्थिति से, नि:शब्द उपस्थिति-शब्द उपस्थिति से, कुछ मदद कर सकता है-जो रास्ते से चल रहे हैं-उन चलने वालों को । जो चलना ही नहीं चाहते-मकान में ही बैठे हैं और दिल्ली का रास्ता कहाँ जाता है, किधर जाता है; उसमें कितने पेड़ है, दाईं तरफ़ कितने, बाईं तरफ़ कितने, फूल कितने आते हैं-सब उसका रजिस्टर बनाने ही बैठा है । तो वह जीवन में कहीं पहुँचेगा ही नहीं । जो निकल पड़ता है, उसकी मदद हो सकती है । जो घर नहीं छोड़ता है और पहुँचने के बाद भी क्या मिलेगा-उसकी गंध भी उसको आज मिलनी चाहिये-तब कहीं वहकदम उठायेंगा ! ऐसे व्यक्ति की मदद तो खुदा स्वयं उत्तर आयें तो नहीं कर सकता । लेकिन चलने वाला हो, उस व्यक्ति की मदद ऐसों के द्वारा हो सकती है । वे करना चाहते हैं या नहीं, यह सवाल नहीं हो सकता वे चाहने के लिये शेष नहीं है । किसी के नौकर नहीं हैं कि चाहेंगे । लेकिन चाहने पर, न चाहने पर भी, उनके द्वारा इस प्रकार की मदद, उसका सौरभ, जीवन में हो सकता है । तो आप कहेंगे-यह सारा तीन दिन जो सुना-इस आत्मसाक्षात्कार की कोई utility (उपयोगिता) तो है नहीं । इन्होंने इतना जो हम से कहा-लेकिन उसकी कोई उपयुक्तता तो है नहीं । utility (उपयोगिता) कुछ नहीं है । futile (व्यर्थ) है ! जी । आनन्द बिलकुल futile (व्यर्थ) है ! क्योंकि उसका रुपये पैसे में कोई मोल नहीं ।

कमल के पुष्प का सौरभ हवा में बिखर गया-इसमें utility (उपयोगिता) क्या है ? लेकिन मानव को समस्त सम्भावनायें जो हैं-वे इसी आनन्द की दिव्यता की तरफ़ ले जाने वाली हैं । इन सम्भावनाओं को आप खेलने दें, खिलने दें; खेलने न देना यह पाप है-या अधर्म है ।

अन्त में एक बात और जोड़ दूं। कि जिस निरीक्षण और सावधानता के दो पंखों को लेकर उड़ना है-अन्तर-आकाश में-यह निरीक्षण और यह सावधानता चौबीस घण्टे कैसे रहे-इसका कोई अभ्यास है या नहीं ? इसके लिये यत्न सीखा जा सकता है या नहीं ? तो सीखा जा सकता है। शुरूआत तो दो प्रकार से हो सकती है। एक, चौबीस घण्टे में एक बार या दो बार निरीक्षण करने के लिये, observe करने के लिये, यह जो observation की ताक़त है-वह कमानी पड़ती है। पहलवान तब बनेगा-जब अखाडे में उतरेगा। मिट्टी में दस पाँच बार कोई उसको पटकेगा। ठोकर लगेगी, हाथ-पाँव में दर्द होगा। हड्डी-हड्डी बोलने लगेगी, बजने लगेगी, फिर पहलवान बनता है। नहीं, नहीं, पहलवान तो बनना है, सभी दाँवपेंच आने चाहियें-लेकिन सिर्फ पुस्तक पर हमें chart (चार्ट) दिखा दीजिये। और दूसरे दिन हमने chart (चार्ट) पढ लिये, और उनकी जो युक्तियां हैं-वे समझ लीं-तो हम पहलवान बन गये ! ऐसा नहीं।

सितार के सात तार, तानपुरे के चार तार-षड्ज, मध्यम, पञ्चम-तीनों आप को मालूम हैं। लेकिन इनमें मिलाना हो तो ! तार को बाँधना सुरमें, और सिर्फ उंगली का कितना ज़ोर देना है, किस तार पर कितना पड़े, किस angle (कोण) से उंगली का स्पर्श तार से हो- यह मालूम न हो,तो तानपुरा भी हाथ में, सितार भी है-सुर बंधे हुए हैं-लेकिन बजता नहीं है !

इसलिये, उस शक्ति को प्राप्त करने के लिये, चौबीस घण्टे में एकाध बार, एकाध घण्टा, आधा घण्टा सभी प्रवृत्तियों से और निवृत्तियों से भी निवृत्त होकर बैठना चाहिये-खड़े होकर, बैठकर, लेट कर-जैसी आप की मर्जी हो। देखना चाहिए दस पन्द्रह मिनिट, आधा घण्टा-कि यह मन की गति कैसी है। इसमें उठने वाले विचार कौन से हैं ? कितने हैं ? कहाँ ले जाते हैं ? इसको देखना चाहिये।

और इनको जब देखने लगेंगे-पहले दिन बैठे हैं-दस मिनिट में पचास जगह मन दौड़ा है। और उसमें पचास में से पच्चीस जगह दो-दो बार गया है। दूसरे दिन आप देखेंगे-पचास जगह के बदले आज मन पैंतालीस जगह गया है। ऐसे कम होता जायेगा।

Frequency and duration and repetition, (आवृत्ति और अवधि) कुछ कम हो रही है। सिर्फ आप देख रहे हैं। और फिर यह भी देख रहे हैं कि कहाँ-कहाँ मन, कैसे-कैसे जाता है ? दस मिनिट, पन्द्रह मिनिट यह देखने का जो अभ्यास

है-वह करना पड़ता है । हो सकता है, तीसरे दिन, चौथे दिन, पाँचवें दिन, सातवें दिन- आप का मन जो पच्चीस जगह गया था-वह पाँच जगह ही जा रहा है । मन को रोकते हैं, इसलिये मन को गति मिलती है । मनुष्य के निषेध में से वासनाओं को प्रोत्साहन मिलता है । मन को रोकने में से मन की गति दुगुनी हो जाती है । आप रोकेंगे नहीं, निषेध नहीं करेंगे, प्रशंसा नहीं करेंगे, तो मन का दौड़ने का मज़ा जो है वह निकल जायगा । And the mind will exhaust itself, when you so observe (तब आप तटस्थ भाव से निरीक्षण करेंगे तो मन अपने आप को नि:शेष कर देगा) ।

तो, निरीक्षण की कला साधनी होगी । आधे घण्टे तक, पन्द्रह मिनिट तक, एक घण्टे तक आप उस कला को सीखने के लिए समय निकालें भाई, तबला बजाना सीखना है तो आपको बैठना पड़ता है-सीखना पड़ता है । सितार सीखनी पड़ती है । और आप कहें कि मैं आठ दिन बैठा हूँ और नवें दिन तो मन शान्त नहीं हुआ-तो चलो, इसमें कुछ नहीं रखा है । हाँ, यह बालक कह सकता है । लेकिन प्रौढ़ों को, जिन्होंने यह कभी किया ही नहीं है, उनको सीखने में, अपने आपको सिखाने में, धैर्य रखना चाहिये । You must be patient with yourself in self-education.

चाहे जब उठे और हथौड़ा हाथ में लेकर मन के पीछे दौड़े यह निरीक्षण नहीं है । तो निरीक्षण की कला सीखी जा सकती है । लोग कहते हैं मैं ध्यान करने के लिये बैठा हूँ । ध्यान करने के लिये नहीं बैठना है । ध्यान तो समग्र व्यक्तित्व की अवस्था है-लेकिन ध्यानावस्था में जाने के लिये मन की जो तटस्थता है-उस तटस्थता को सीखा जा सकता है । The art of observation can be learnt. It is an experimental art. वह सीखी जा सकती है । तो, उनमें सावधानता और तटस्थता-दोनों का अभ्यास आयेगा । एक घण्टे तक बैठे हैं । उसका परिणाम उठने के बाद दो घण्टे रहा । हो सकता है कि कुछ दिनों में दो घण्टों के बदले चार घण्टे रहा । इस प्रकार उसकी व्याप्ति, extension उसका जीवन में बढ़ता चला जाता है ।

हम यह कुछ नहीं करेंगे, तो फिर ठीक है । तब आप एकताल त्रिताल, झपताल-सब के नाम गिना लीजिये कि कितनी मात्राएं हैं, धुपद धमार में क्या होता है,-सब किताब में से रट-रटाकर बता देंगे-उस प्रकार बंधन क्या-मुक्ति

क्या; जन्म क्या-मृत्यु क्या-मृत्यु के बाद क्या-ये सब हिसाब तोते की तरह बोल देंगे और कहा जाय कि भाई, तू सिर्फ त्रिताल ही बजाकर दिखा दे तो कुछ नहीं, निकलेगा ही नहीं, बोल ही नहीं निकलेगा। ऐसे जीवन में से फिर बोल नहीं निकलते-तारों में से संगीत नहीं उठता है। क्योंकि उसके लिये जो साधना चाहिये-वह की नहीं है।

प्रारम्भ किया था-जीवन का प्रयोजन सुख नहीं, ज्ञान नहीं, कर्म नहीं, भक्ति नहीं, जीवन का प्रयोजन आनन्द है। सुख, ज्ञान, कर्म, भक्ति प्रयोजन क्यों नहीं ? क्योंकि इनमें संतुलन नहीं है-इनमें एक प्रकार की सूक्ष्म उत्तेजना है। जीवन का प्रयोजन अनुभूति भी नहीं, क्योंकि अनुभूति में भी उत्तेजना है। जीवन तो poise है, समतुला है। संतुलन है। dynamic poise है। चिन्मय समतुला है। तो, आनन्द यह चिन्मय संतुलन है, इसलिए आनन्द ही जीवन का प्रयोजन है और यह आनन्द की अवस्था यानी आत्मा की सहजावस्था जो है, हर मनुष्य के लिये किस प्रकार सुलभ है-जो चाहेगा उसके लिये;-और वहां तक पहुँचने के लिए, तटस्थता और सावधानता, इन दोनों का उपयोग किस प्रकार हो सकता है-तटस्थता और सावधानता यानी प्रतिक्रियाओं से मुक्ति, प्रतिक्रियाओं की गुलामी से मुक्ति यह व्यवहार में किस प्रकार साधी जा सकती है और आनन्द में अधिष्ठित होकर प्राप्त परिस्थिति में सम्यक् वर्तन किस प्रकार हो सकता है-ये कुछ बातें आज आपके सामने रखीं। यदि कुछ शेष रह गया हो तो शाम की अन्तिम सभा में रखेंगे। आप सब लोगों ने प्रात:काल यहाँ आने का कष्ट किया, संवाद करने का अवसर दिया; सब को मैं प्रेमपूर्वक प्रणाम करती हूँ।

(ख) सायंकाल : प्रश्नोत्तरी दिनांक-२२-१-१९६८

निर्विचार अवस्था और आनन्द की अवस्था के बीच कोई phase या stage-दशा है या नहीं ?-यह पूछ रही हैं न ? है । निर्विचार अवस्था यानी विचारशक्ति सम्पूर्ण रूप से काम करने लायक होने पर भी उस शक्ति का अपने आप में सिमट कर शान्त रहना । मन की जितने प्रकार की क्रियायें हैं, उन सब क्रियाओं का स्वयमेव शान्त होना निर्विचार अवस्था है । इस अवस्था में प्रवेश होने पर एक अन्धकार का घना साम्राज्य सामने आता है । विचारों के शान्त होने पर रिक्तता की अनुभूति होने लगती है । उसको अंग्रेजी में the state of void, the state of emptiness कहते हैं-रिक्तता की अवस्था-यह उसका हिन्दी में शायद अनुवाद हो-रिक्तता अन्धकारमय है, शून्यता आलोकमय है । तो जीवन-भर चित्त में उठने वाली वृत्तियों के द्वारा जीने की हमें आदत है, इसलिए वृत्तियों के शान्त होने पर लगता है-पाँव तले से धरती खिसक गई । पाँव तले से धरती खिसक गई है, सामने दिशा नहीं । खडे होने के लिये स्थान नहीं, पकडने के लिये कोई आलम्बन नहीं । ऐसी एक सर्वथा निराधार अवस्था है, इसका अनुभव होता है । इसको पश्चिमी रहस्यवादियों ने और दार्शनिकों ने the dark night of the soul (आत्मा की अन्धेरी रात) कहा है । जैसे किसी tunnel (सुरङ्ग) में से होकर गुजरना पड़ता है । उस प्रकार जो एक सर्वथा निराधार होने की, निर्बल दशा है-क्योंकि हमारा सारा बल तो तन और मन के सहारे था, उसका आधार जैसे छूट गया ।

कल्पना कीजिये पल भर के लिये कि आपके विमान ने take off ('टेक-ऑफ) किया । धरती का सहारा छूट गया, और अभी आसमान में उड़ना प्रारम्भ नहीं हुआ । यह आपके मशीन के यंत्र के लिये शायद सम्भव हो-लेकिन धरती का सहारा छूट गया, उस प्रकार यह तन की जो धरती है, इसका सहारा-इसका आलम्बन छूट गया । मन के जो पंख हैं, विचार के और भावना के, वे भी झर गये हैं । इसलिये सर्वाङ्गिण निराधारता-निर्बलता का एक अनुभव होने लगता है । इसलिये मैंने

कहा कि अन्धकार के साम्राज्य में होकर गुजरना पड़ता है । इस अन्धकार से या इस निराधारता की अवस्था से लोग भय खाते हैं और वहाँ से वापस आकर विचार के क्षेत्र में लौटना चाहते हैं । निरालम्बन रहने की आदत नहीं । अहंकार के साम्राज्य में निर्बलता की दिव्य अनुभूति हो ही नहीं सकती । यह जो अन्धकार है, यह जो रिक्तताहै, इससे भय खाकर आदमी वापस लौटता है । लगता है इसमें मौत हो जायेगी । इसमें जड़ता आयेगी । इसमें मैं बधिर हो जाऊँगा । My sensitivity will get benumbed if I proceed in darkness. अपने आपका भय है, ज्ञात के सहारे छूट गये हैं, इसलिये एक प्रकार की या तो भय ग्रस्तता आ जाती है-या चित्त विक्षिप्त हो जाता है । यदि साहसपूर्वक उस रिक्तता को सजाग-सभान होकर देखते ही रहेंगे, तो इस रिक्तता की जो सुरंग है उसको पार करके फिर आत्मानन्द के आलोक में आप पहुँचते हैं । अति तीव्र जिनके संवेग हैं, उनके लिये पल भर ही यह अवस्था रह सकती है; जिनके संवेग मन्द हैं, उनके लिये यह time-duration (काल-मान) लम्बा भी हो सकता है ।

प्रश्न : आज सुबह आपने कहा था, 'जीवन का प्रयोजन आनन्द है-या तो, 'आनन्द ही जीवन है' । तो मैं समझा ना चाहती हूँ कि जिसे state of freedom कहते हैं-मुक्तावस्था-, यह क्या एक ही हैं ? या आप कुछ और कहना चाहती हैं ? आनन्द की अवस्था और मुक्तावस्था ये क्या भिन्न है ? ऐसा पूछ रहे हैं ?

इसका जवाब तो आपके अखा ने दे दिया है :

''आचार्योए कीधी युक्ति, कल्प्यो बन्ध ने मानी मुक्ति ।''

[आचार्यों ने युक्ति की, बन्ध (बन्धन) की कल्पना की, और फिर उसमें से मुक्ति मानी ।]

बन्धन की सत्यता हो, तो ही मुक्ति के लिये अवकाश है । यानी माया के साम्राज्य में ही बन्धन और मुक्ति-दोनों के गुण गाये जा सकते हैं । यानी लक्षणा ही करनी हो उस अवस्था की, तो इसको state of freedom, कह लीजिये आप । लेकिन मुक्ति शब्द द्वन्द्व का सूचक है । मुक्ति शब्द सापेक्ष है । It is a relative term. आप स्वतन्त्रता-freedom कहिये; liberation-मुक्ति कहिये । ये शब्द द्वन्द्व की भूमि पर खड़े हैं । बन्धन न हो-तो मुक्ति का अस्तित्व नहीं है । इसलिये

उसको सापेक्ष कहते हैं, relative कहते हैं । और मैंने सुबह यह निवेदन करने की चेष्टा की, जहाँ तक मैं निवेदन कर सकी, कि आनन्द एक ऐसी निरपेक्ष अवस्था है जहाँ द्वन्द्व की भूमिका है ही नहीं । यानी मुक्ति शब्द-मुक्तावस्था-निरर्थक हो जायेगी, यदि बद्धावस्था का अस्तित्व आप स्वीकार न करेंगे । Am I making it clear ? (क्या मैं स्पष्ट कर रही हूँ ?)

तो, 'मुक्तावस्था' शब्द के जो सहचारी भाव हैं, वे द्वन्द्व के और सापेक्षता के सूचक होने के कारण और वह अवस्था भी होने के कारण मैंने आनन्द शब्द का प्रयोग किया, जहाँ कहीं भी द्वन्द्व या द्वैत के लिये अवकाश नहीं । हर्ष कहूं तो शोक है, सुख कहूँ तो दु:ख है । ये शब्द जो हैं न, बड़े बोझिल, बड़े भारी हो जाते हैं; उनके सहचारी भाव हैं । उनके सहचारी विचार हैं । Association of ideas and emotions. अब सब शब्दों को disinfect (संक्रमण से मुक्त) करके कैसे लें-यह मेरे सामने समस्या हो जाती है । तो मुक्ति शब्द को या मुक्तावस्था को उसकी सापेक्षता से छुट्टी दिला कर यदि आप उपयोग करना चाहते हैं, तो आनन्द की अवस्था और मुक्तावस्था-इसमें कोई फ़र्क नहीं ।

प्रश्न : आत्मसाक्षात्कार करने वाले साधकों को; या परमात्मा के साक्षात्कार करने वाले साधकों को कोई कल्पना करनी पडती है कि ऐसा आत्मसाक्षात्कार होगा-ऐसा परमात्मा का साक्षात्कार होगा । ऐसी कोई कल्पना साधना में पहले पहेले बनानी पड़ती है ? जैसे ईश्वर के बारे में बताते हैं कि कृष्ण की साधना करने वाला कृष्ण की कल्पना बनाता है, राम की साधना करने वाला राम की कल्पना बनाता है ।

उत्तर : बहुत सुन्दर और मार्मिक प्रश्न है । पूछा किसी व्यक्ति के द्वारा जाता है-लेकिन no question or problem is ever personal. (कोई भी प्रश्न या समस्या कभी व्यक्तिगत नहीं होती) Not the dead and borrowed questions,not the lifeless academic questions-(मरे हुए, उधार लिये गये, जीवनहीन सैद्धान्तिक प्रश्न नहीं) जो जीवित प्रश्न होते हैं-सजीव प्रश्न-जीवन में से जिनका जन्म हुआ, उन प्रश्नों का आशय हमेशा universal (वैश्विक) होता है ।

[व्याख्यान हॉल भर जाने के कारण सब श्रोताजनों को आगे आने को कहा गया। और श्री विमला बहन स्वयं भी आसन की गद्दी से उठकर गद्दी के उपर रखे हुए तकिये पर, ऊँचाई पर बैठ गई। इस समय आपने कहा-हम तो दर्शन-प्रेमी ठहरे। सब लोगों के दर्शन न हों तो बोलना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि श्रोता ही तो बुलवाता है। अपनी ओर से बोलने वाला वक्ता कुछ intellectual gymnastic (बौद्धिक आयाम) करता है। लेकिन श्रोता कृपापूर्वक जिसको बुलवाते हैं-वह धन, वह दौलत-वह सारा श्रेय आप लोगों का होता है! इसलिये ऊपर चढ़े कि सबको देख सकें।]

पूछा यह कि ईश्वर का साक्षात्कार करते हैं-तो राम इस प्रकार के हैं, कृष्ण उस प्रकार के हैं-यह तो कुछ जानकारी रहती है, कल्पना करते हैं।

अब परमात्मा का साक्षात्कार और आत्मसाक्षात्कार-दो शब्द आपने उपयोग में लाये। कहते हैं कि परमात्मा का साक्षात्कार करना हो तो उसके लिये भी कोई कल्पना करनी पड़ती है; साधक को आत्मसाक्षात्कार करना हो तो उसके लिये कुछ कल्पना करनी पड़ती है? हम तो कल्पना करते हैं-हमारे पास तो व्याख्यायें तैय्यार हैं। परमात्मा की व्याख्यायें तैय्यार हैं-आत्मा की तैय्यार हैं-हमारे encyclopaedia (विश्वकोश) में, हमारी dictionaries (शब्दकोशों) में-हमने सबको कैद करके रखा है।

लेकिन सवाल वह नहीं है। जिस भूमिका में से सवाल उठा वह बड़ी interesting है। बड़ी एक जानने लायक खूबी की चीज़ है। सगुण साक्षात्कार में "गौतम बुद्ध ऐसे थे", "भगवान् महावीर ऐसे थे"-वर्णन है उनकी मुद्रा का, उनके शरीर का, उनकी चर्या का, उनके गुणों का-वर्णन है; राम का, कृष्ण का, ईसा का; और उन गुणों का चिन्तन करके, इनके नाम का मन्त्र जपते हुए, आप चित्त की एक अवस्था का निर्माण करते हैं-उन गुणों के साथे, उस रूप के साथ चित्त की तदात्मता निर्माण करते हैं कि उस निदिध्यास में से-'श्रोतव्य:, मन्तव्य:, निदिध्यासितव्य:'-तो उस निदिध्यास में से वह project (प्रक्षिप्त) हो जाता है आप के सामने। सगुण साक्षात्कार-it is a king of psychological projection (यह एक प्रकार का मानसिक प्रक्षेप है) जितनी जिसकी intensity होगी, उत्कटता होगी, और व्यक्तित्व

की जितनी गहराई में से वह निदिध्यास होगा-उसके लिये फिर कोई-न-कोई भाव का सहारा लेंगे- दास्यभाव का लेंगे, शान्त भाव का, वात्सल्य भाव का, सख्य भाव का, मधुर भाव का- इसमें emotional content (भावनात्मक अन्तर्वस्तु) भरना होगा न ! तो, फिर उस भाव को उंडेलते हुए, निदिध्यास करते हुए, उसका Projection (प्रक्षेप) होता है । सगुण साक्षात्कार क्रिया मन की है । भले ही इन्द्रियातीत सृष्टि में हो-क्रिया मन की है । It is a mental action.

अब दिक्कत आ गई, ये जो मन महाराज हैं, उनके सामने । कि आत्मा का साक्षात्कार कैसे हो-परमात्मा का कैसे हो ? वह निर्गुण है, वह निराकार है । वह निरालम्ब है । अब उनकी कल्पना कैसे करें ? हमने उसका भी विश्वस्वरूपदर्शन बना लिया । क्योंकि हम तो उनको पञ्चेन्द्रियों से पकड़ना चाहते हैं । मन और बुद्धि से पकड़ना चाहते हैं । इसलिये अट्ठारह अक्षौहिणी या ग्यारह अक्षौहिणी-पांच अक्षौहिणी-चबाये जा रहे हैं ''कालोऽस्मि अहं''-इसको समझने के लिये विश्वरूप दर्शन की कल्पना की । वर्णन किया गया है । लेकिन दिक्कत यह है कि जो निर्गुण है-निराकार है-उसकी कल्पना कैसी करें ?

फिर कहिये-आकाश जैसा है-क्योंकि आकाश के कोई आकार नहीं । फिर सागर जैसा है क्योंकि सागर की गहराई कोई नाप नहीं सकता । फिर 'स्थावरणाम् हिमालय:' । वह स्थिरता में हिमालय के जैसा है । कोई-न-कोई हम उसका मापदण्ड लगाना चाहते हैं, लगायें । लेकिन निर्गुण और निराकार की कल्पना करना मन के लिये सम्भव नहीं है । इसको या तो ज्योति में बाँध लो-या विश्वरूप में बाँध लो । और सच्चिदानन्द कहने से भी उसकी कल्पना क्या होगी ? तो भाई, जिसको आप लोग परमात्मा-साक्षात्कार यानी realisation of cosmic consciousness-वैश्विक चेतना का साक्षात्कार कहेंगे-वहाँ आप निर्गुण-निराकार को भी एक entity (सत्ता) बनाने की कोशिश करेंगे । यानी, निर्गुण और निराकार का भी एक कोई concept, उसका एक विचार, उसकी एक कल्पना बनाने की पूरी कोशिश करेंगे । रूप उसका सामने नहीं आता-तो निराकार यानी व्यापकता की कल्पना । निर्गुण में निर्विकारता की कल्पना । तो निर्विकार, निर्गुण, निराकार इन शब्दों का जो आशय है, उस आशय का नशा । फिर अपनी बुद्धि को उसका जाम पिलाना चाहते हैं ।

So you stimulate an artificial state of mind through these words. (अतएव आप इन शब्दों से एक कृत्रिम मनोदशा को दीप्त करते हैं) क्योंकि परमात्मा मन से देखने की वस्तु नहीं है । वह चर्म चक्षु से दिखने वाली चीज़ नहीं है और मन की कल्पना के बाहुओं में, आलिङ्गन में, आने वाली भी चीज़ नहीं हैं । आत्मसाक्षात्कार की कोई कल्पना करके साधक चलेगा ?

Look at the mischief of the mind. The mind wants to extend the fleid of its action. (मन की शरारत देखिये । वह अपने कार्यक्षेत्र को विस्तृत करना चाहता है ।) known field में चला । ज्ञात में उसका सब कुछ चला । अब अज्ञात के क्षेत्र में अपने हाथ-पाँव यह मन फैलाना चाहता है । कि चलो, अज्ञात की कोई मैं कल्पना करूँ । फिर कल्पना करूँगा, फिर उसका निदिध्यास करूँगा, फिर उसका projection (प्रक्षेप) फिर उसको साक्षात्कार कहूँगा । अब कहूँगा और फिर कहूँगा कि मुझे आत्मा का साक्षात्कार हुआ । लेकिन कठिनाई यह है कि यह मन जब तक जागृत है और कल्पना कर सकता है-तब तक आत्मा के आलोक की रश्मि भी वहाँ पहुँचती नहीं । मन को ज्ञात के क्षेत्र से अज्ञात के क्षेत्र में हाथ-पाँव मत फैलाने दीजिये । उसी में से तो सम्प्रदाय बने हैं । किसी ने कहा नहीं, 'अङ्गुष्ठपरिमाणज्योति:' - अङ्गुष्ठमात्रज्योतिर्मय है । किसी ने कहा नहीं-नहीं, वह ऐसा नहीं है । वह आलोक का सागर है । किसी ने कहा, ''नहीं वह भी नहीं है । वह ऐसी शक्ति है जिसका हम वर्णन नहीं कर सकते ।''

अज्ञात के क्षेत्र में मन के हाथ-पाँव फैलाने से सिर्फ़ mysticism, (रहस्यवाद) हाथ में आता है, आत्मसाक्षात्कार नहीं । कवियों के लिये उसका उपयोग है-साधको के लिए नहीं ।

आत्मसाक्षात्कार करने की चीज़ नहीं- यह होने की चीज़ है । समस्त व्यक्तित्व का विकास, उसमें सारे व्यक्तित्व का उत्थान है- एक स्तर पर से दूसरे स्तर पर । आठ साल का लड़का है या दस साल की लड़की है-उन्होंने यौवन की कितनी ही कल्पना की-तो किस काम की ? कितने ही यौवन के वर्णन पढ़े-तो उन बालकों के किस काम के ? युवावस्था में सारा व्यक्तित्व जब खिल उठता है-तो यौवन का साक्षात्कार होता है । लेकिन 'मैं यौवन का साक्षात्कार करूँगा' कहने के लिये कोई वहाँ शेष नहीं रह

जाता। क्योंकि बालक समाप्त होता है। किशोर समाप्त होता है। युवक का जन्म होता है। इसलिए आत्मसाक्षात्कार कहिये, परमात्मसाक्षात्कार कहिये, चाहे जो शब्द आप ले लीजिये-यहाँ मन से किसी भी प्रकार की कल्पना- उस अवस्था की भी कल्पना-करेंगे तो नुक़सान है। उस अवस्था की कल्पना करने वालों ने ही 'एलेस्डिन' और 'सिलोसिटीन'और 'भेस्केलीन'-और... पता नहीं क्या-क्या निकाले हैं। consciousness-expanding drugs ! (चेतना का विस्तार करने वाले औषध !) क्योंकि उन्होंने यह मान लिया है कि देहभान खो जाने पर और अहंकार से घड़ी भर के लिये छुट्टी मिलने पर जो अवस्था आती है- वह आध्यात्मिक अवस्था है। यह मान लिया। इस देश में भी भाँग, धतूरा और गाँजा लेने वाले और उसके नशे में झूमने वाले कोई कम नहीं हैं। तो नशा, गाँजे का-धतूरे का है, 'एलेस्डिन', 'भेस्केलीन', 'सिलेसिटीन' का है-या इस अवस्था के वर्णन के जो शब्द हैं उन शब्दों का है कोई बहुत फ़र्क नहीं पड़ता। इस तथ्य को ग्रहण करना चाहिये कि आत्मसाक्षात्कार एक, तन और मन से, उनके क़ाबू से, उनकी पहुँच से परे का ऐसा अज्ञात प्रदेश है-जहाँ मन और वाणी पहुँच ही नहीं सकते।

कोई उदाहरण देने की द्रष्टि से नहीं, और कोई authority (प्रमाण) या sanction (अनुसमर्थन) आप के सामने रखने की द्रष्टि से नहीं, लेकिन उतने सुन्दर शब्दों में शायद मैं रख नहीं पाऊँगी-इसलिए कहती हूँ-कि गाया गया हज़ारो वर्ष पहले-

यद् वाचा अनभ्युदितं
येन वाग् अभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि
न इदं यद् इदम् उपासते ।।
यन्मनसा न मनुते
येनाहुर्मनो मतम्
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि
न इदं यद् इदम् उपासते ।।

यत् श्रोत्रेण न शृणोति

येन श्रोत्रम् इदं श्रुतम् ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि

न इदं यद् इदम् उपासते ।।

यच्चक्षुषा न पश्यति

येन चक्षूंषि पश्यति ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि

न इदं यद् इदम् उपासते ।।

यत्प्राणेन न प्राणिति

येन प्राण: प्रणीयते ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि

न इदं यद् इदम् उपासते ।।

(केनोपनिषद्,१/४-८)

That which is not expressed by words but through which words are expressed, that verily, know thou, is Brahman.

That which is not thought by the mind, but by which they say, the mind is though, to That, verily, know thou, is Brahman.

That which is not heard by the ear, but by which ears are heard, That, verily, know thou, is Brahman.

That which is not seen by the eye, but by which eyes are seen; That, verily, know thou, is Brahman.

That which is not breathed by Prana, but through which Prana breathes; That, verily, know thou, is Brahman.

जो वाणी द्वारा अभिव्यक्त नहीं होता, बल्कि वाणी जिससे अभिव्यक्त होती है, उसी को तुम ब्रह्म समझना, इसको नहीं, जिसकी उपासना की जाती है।

जिसका मन के द्वारा मनन नहीं होता, किन्तु जिसके द्वारा कहते हैं कि, मन का मनन होता है, उसी को तुम ब्रह्म समझना, इसको नहीं, जिसकी उपासना की जाती है।

जो कान द्वारा सुना नहीं जाता, बल्कि जिसके द्वारा कान सुना जाता है, उसी को तुम ब्रह्म समझना, इसको नहीं, जिसकी उपासना की जाती है।

जिसे चक्षु द्वारा देखा नहीं जाता, किन्तु जिसके द्वारा चक्षु देखे जाते हैं, उसी को तुम ब्रह्म समझना, इसको नहीं जिसकी उपासना की जाती है।

जो प्राण के द्वारा प्राणित नहीं होता, अपितु प्राण जिसके द्वारा प्राणित होता है, उसी को तुम ब्रह्म समझना, इसको नहीं जिसकी उपासना की जाती है।

उसकी उपासना, उसकी आराधना, उसकी कल्पना, उसकी भावना, हो ही नहीं सकती। क्योंकि मन के क्षेत्र से परे है। शब्दों में वर्णन नहीं हो सकता। क्योंकि शब्द-मात्र जूठे हैं। जूठा जानते हैं? उच्छिष्ट जानते हैं? ज्ञात के स्पर्श से शब्द जूठे हो गये हैं। झूठे नहीं, जूठे, ('एठुं' गुजराती में)-

ऐसा कोई शब्द नहीं है जो 'एठां' न हो। उच्छिष्ट है। ज्ञात का उच्छिष्ट है शब्द और वाणी। इसलिये शब्द द्वारा उसका संकेत भी नहीं हो सकता। इतना कहना पर्याप्त है कि आत्मसाक्षात्कार है- आप उसको परमात्म-साक्षात्कार कहिये, परमात्मा कहिये, आत्मा कहिये-कोई बहुत फ़र्क नहीं पड़ता। क्योंकि आपके हाड़-मांस के भीतर जो तथ्य है-वही हाड़-मांस के बाहर है-आपकी आँखों के देखने का दोष है जो आप भीतर और बाहर शब्दों का प्रयोग करते हैं, वह एक ही है। आत्मा कहना और परम-आत्मा कहना-एक ही है। परमात्मा नाम से भी कोई एक अपने सामने मूर्ति ही खड़ी कर लो!

प्रश्न : ऐसे साक्षात्कार की शक्यता है? ऐसा साक्षात्कार किसी ने आज तक किया है? आप जैसा कह रहे हैं, ऐसा साक्षात्कार कोई कर सकता है?

उत्तर : वह होता है, भाई, किया नहीं जाता। प्रेम कोई करता है ? और जो कहते होंगे कि हम प्रेम करते हैं वे बिल्कुल अप्रामाणिक हैं। प्रेम हो जाता है। इसलिये मैं कह रही थी कि वह समस्त चेतना का, व्यक्तित्व का विकास है। उस अवस्था में हुआ जा सकता है। साक्षात्कार करते नहीं हैं। ईश्वर साक्षात्कार तक तो आपकी भाषा ठीक है कि 'मैंने सगुण-साक्षात्कार किया।' क्योंकि वह आपका ही कर्म है। वहां तक तो ठीक है। निर्गुण निराकार के क्षेत्र में कर्ता-धर्ता-उपभोक्ता कोई नहीं होता है।

प्रश्न : ऐसा जिसको होता है, ऐसा व्यक्ति सारे संसार में कोई है ? मैं उसका दर्शन करना चाहता हूँ। जैसे श्री रामकृष्ण परमहंस-उनको सगुण साक्षात्कार हुआ था-और सब मानते भी हैं न, कि उनको सगुण साक्षात्कार हुआ था। मगर ऐसे हाल में कोई व्यक्ति हैं ? जिनका हम दर्शन करके पवित्र हों ?

उत्तर : रामकृष्ण देव का नाम दिया न आपने। उनकी एक कहानी सुना दूं। उसमें उत्तर आ जायेगा। कोई गया था रामकृष्णदेव के पास। पूछने के लिये कि साक्षात्कार करना चाहता हूं। उन्होंने कहा, "बहुत ठीक। अगले शनिवार को आना।" अगले शनिवार वह व्यक्ति गया। "साक्षात्कार करना चाहता हूं।" "बहुत ठीक। अगले शनिवार को आना।" अगले शनिवार को गया। तीन शनिवार गया। चौथे शनिवार को उसने सोचा कि ये तो गप्पीदास हैं! बोला, "आज कराते हो कि नहीं ?" "हाँ ज़रूर कराता हूँ।"

गंगा में ले गये। कमर तक पानी में ले गये। और सिर पर हाथ देकर उसको दबा कर नीचे किया। अब पानी के नीचे गया तो वह श्वास नहीं ले सका। जी घबरा गया। ये रामकृष्ण देव हैं, इनसे मैं पूछने आया था यह भी भूल गया। हाथ ज़ोर से हटाया-और ऊपर उठा। बोला, "क्या मज़ाक कर रहे हो ?" वे बोले, "कुछ नहीं; क्या हुआ तुम्हें ?" "अरे क्या पूछते हो ? पानी में डूबो दिया, मर रहा था और पूछ रहे हैं-'क्या हुआ ?'।"

"अरे भाई, जैसे हवा के बिना जी नहीं सके एक पल भर के लिये, उस प्रकार साक्षात्कार के बिना जी नहीं सकोगे, ऐसी तड़पन जब तुम्हारे रोम-रोम को झुलसने लगेगी, तब होगा।"

कहने का मतलब यह है कि सत्य की जिज्ञासा, आत्मसाक्षात्कार की जिज्ञासा जब अग्नि बनकर आपके भीतर धधक उठेगी-ऐसी बेचैनी बख्शेगी आपको-ऐसा दिव्य असंतोष देगी कि आपके सामने दुनिया जा रही है-भान नहीं उसका-ऐसी उत्कटता की चरम सीमा पर पहुँचने का बिन्दु ही विस्फोट का बिन्दु है । वहाँ किसी व्यक्ति के दर्शन नहीं करने पड़ेगे । आप ही साक्षात्कार की अवस्था में पहुँच जायेंगे ।

ऐसे व्यक्ति हैं या नहीं-और हैं तो मैं उनका address आपको दे दूँ-क्यों ?

Man has become mature enough to go through this mutation and arrive himself at that point. आज का मानव-इतने साधन उसे उपलब्ध हैं और इतना प्रगल्भ हो गया है-कि यदि सचमुच प्रामाणिक हो-तो इस आमूलाग्रक्रान्ति में से गुजर कर स्वयं ही साक्षात्कार का स्वरूप बन सकता है । वह आप बनें । आप दर्शन करने के लिये और पवित्र होने के लिये दूसरे के पास क्यों जायें ? चाहे वह कोई भी क्यों हो ।

ऐसे, उत्कटता की अग्नि में जलने वाले के दरवाजे पर दर्शन देने के लिये व्यक्ति पहुँच जाते हैं, मेरे भाई । दरवाज़ा खटखटा कर आप से कहेंगे-आपके पास आयेंगे और कहीं काम रुका हो तो आगे के एक कदम का रास्ता बतलाकर हट जायेंगे । साक्षात्कारी व्यक्ति किसी के जीवन पर अपने जीवन की छाया नहीं पड़ने देते । जो साक्षात्कार का ढिंढोरा पीटकर घूमते होंगे और अपनी साधनापद्धति या जीवनपद्धति या अपने व्यक्तित्व की छाया दूसरे के चेहरे पर या जीवन पर डालते होंगे-ऐसे महापुरुषों से आपको भगवान् बचायें ।

किसी भी स्वरूप में मानवरूप से, पशुरूप से, हवा के झोंके से, किसी किताब के पन्नों की पंक्ति line से-वे बोध देने के लिये आ जाते हैं । इसका अर्थ मैं बताऊँ ? कि जितनी आपकी उत्कटता गहराई से पहुँचती जायेगी, उतने वातावरण में जो स्पंदन हैं, वे आपके अनुकूल बनते जाते हैं । और उस प्रकार के व्यक्तियों को आपके पास खींचते चले जाते हैं । और इस प्रकार के जीवन में से-कोई गुरु नहीं, कोई पथप्रदर्शक नहीं, जंगलों में भटकना, गिरिकंदराओं में जाना, किसी का सहारा नहीं, सिर्फ अपनी उत्कटता जिज्ञासा के आलोक में ठोकरें खाते-खाते घूमे हैं हम । तब हम आपसे यह कहते हैं । यह होता है ।

प्रश्न : 'एवा पुरुषना लक्षणनुं वर्णन करशो ? (गुजराती) [ऐसे पुरुष के लक्षण का वर्णन करेंगी ?]

उत्तर : 'शा माटे भाई ? वर्णन, जाणवाथी शुं थशे ? लक्षण जाणवाथी शुं थशे ? (गुजराती) [क्यों भाई-वर्णन जानने से क्या होगा ? लक्षण जानने से क्या होगा ?]

ऐसे पुरुष के लक्षण वर्णन करोगे ? सुबह तो किये थे । लेकिन लक्षणों के वर्णन से क्या होगा ? वह वर्णन बड़ा रोचक लगेगा-मधुर लगेगा, आकर्षक लगेगा, मादक लगेगा । कल्पना शक्ति के पंख पर आरूढ़ होकर मन उस अवस्था की कल्पना करेगा, अपने ऊपर आरोप करेगा कि मैं उस अवस्था में हूँ-मैं आपके (प्रश्नकर्त्ता के) लिये नहीं कह रही हूँ, आप बुजुर्ग हैं-उसका, impersonal content of question (प्रश्न का व्यक्तिनिरपेक्ष मर्म) यह है-

कोई स्थितप्रज्ञ के वर्णन करता है । कोई केवल अवस्था का वर्णन करता है । कोई निर्वाण की अवस्था में पहुँचे हुए व्यक्ति का वर्णन करता है । साक्षित्व प्राप्त व्यक्ति का वर्णन करता है । उसके लक्षण बतलाता है और फिर उन लक्षणों को हम रटेंगे-फिर अहिंसा, सत्य, अस्तेय कहेंगे-अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य कहेंगे-अपने ऊपर उनको थोपने की कोशिश करेंगे । लेकिन क्या करें ? यह आत्मसाक्षात्कार कोई 'कोट' और कुर्ता तो है नहीं कि ओढ़ा जाय-पहना जाय-उतारा जाय-रखा जाय ।

शब्दों के, विचारों के, और दूसरों की अनुभूतियों के वस्त्र उधार ले-लेकर हमने पहने हैं-और नाटक में जैसे कोई राम बनता है-कृष्ण बनता है-ऐसे मान लिया कि हम भी साक्षात्कार की अवस्था में हैं । यह करने की आदत लगी है । इसीलिये थोडी सी कठोर भाषा का प्रयोग हुआ । क्या करें ? सत्य बड़ा कृपा-कठोर है ।

और असत्य की कोमलता और स्निग्धता के बदले सत्य की कृपा कठोरता, उसकी तीक्ष्णता यह हमें बड़ी प्रिय है । तो लक्षण बतलाना असम्भव हीं है-बतलाये जा भी सकते हैं-लेकिन उससे लाभ नहीं ।

आनन्द अधिष्ठान पर जो प्रतिष्ठित हो गया है-उसके शरीर के, मन के, और बुद्धि के व्यापार चलते हुए भी, अधिष्ठान से एक पल भर के लिए वह चलित नहीं होता। मान और अपमान, सुख और दु:ख, हर्ष और शोक के बीच में से बादशाह की शान से गुज़रता हुआ चला जाता है। न सुख उसको फँसाता है-न दु:ख उसको रोकता है। वह बोलता है, लेकिन उसकी वाणी में और शब्दों में मौन ही मुखरित होता है, वाचालता नहीं। उसके शब्द वाणी का विलास नहीं, कल्पना का शृङ्गार नहीं, अनुभूति के रश्मि हैं। वे चित्शक्ति की कलियाँ हैं जो खिलती हैं-और अपनी सुषमा, सौरभ बिखेरती हैं। तो वाणी और शब्द उसका मौन तोड़ने में असमर्थ हैं और आपकी 'स्पूटनिक' की गति भी उसकी स्थिति की अचलता को भंग करने में असमर्थ है। सारे संसार का तूफ़ान और आंधी उसकी शान्ति को भंग करने में समर्थ नहीं है। क्या बतलायें और कहाँ तक बतलायें ? बतलाते चले जायेंगे। लेकिन ऐसा हो सकता है-ऐसा किया जा सकता है।

वक्ता श्रोता तु भगवान् वासुदेव इति मे मतिः।

तीन दिनों तक आप सब लोगों ने यहाँ आकर यह सुख संवाद करने का अवसर दिया। जब मित्रों ने पिछले महीने में कहा था-कि आइये, दस-पंद्रह व्यक्ति बैठेंगे-पच्चीस व्यक्ति बैठेंगे-सुनना है कुछ आपसे, तब मैंने यह कल्पना नहीं की थी कि अहमदाबाद के सज्जन ऐसी कृपा करके सुबह-रात यहाँ आने का कष्ट करेंगे। सन्तों की, मुनियों की, साधुओं की सभाओं में, प्रवचनों में लोग जायें-तो आश्चर्य नहीं। मैं तो आप लोगों में से एक हूँ। आपके जैसी, घोर संसार में रहती हूँ। 'साधुत्व', 'सन्तत्व'-ये मेरे पास फटकते भी नहीं है और अपनी सामान्यता का ऐश्वर्य किसी कीमत पर खोकर साधु-सन्त बनने की इच्छा भी नहीं है। (यदि) कुछ तीन दिनों में आपने सुना होगा-तो सुनने में से यह देखा होगा-कि नितान्त सामान्य व्यक्ति भी आनन्द में प्रतिष्ठित होकर जी सकता है। घरबार छोड़ने की ज़रूरत नहीं-और आनन्द में प्रतिष्ठित होने के बाद भी कहीं से हटने की, कुछ छोड़ने की, कुछ पाने की, कुछ खोने की, कुछ कमाने की आवश्यकता नहीं। सामान्य व्यक्ति, सामान्य जीवन जी सकता है-इतना यदि ध्यान में आया हो-तो आपका और मेरा एक जगह आना सार्थक हुआ। लोगों ने यह

आत्मसाक्षात्कारी लोगों की जमात बना ली है । उनके वेश, उनकी भूषा, उनकी दीक्षा-ये सब अलग बना दिये हैं । मानों, आपके और मेरे जैसे संसार में रहने वाले सामान्य व्यक्तियों का वह अधिकार ही नहीं । मैं कहती हूँ-आनन्द की उपलब्धि मानवमात्र का जन्मसिद्ध अधिकार है । आनन्द की सम्भावनाओं के बीच भरे हुए हैं उसमें और हरेक उपलब्ध कर सकता है ।

लेकिन मालूम नहीं हैकि आनन्द मेरा स्वरूप है । वह तो समझता है-सुख की खोज करूँ तो सार्थक हो गया-संग्रह ज्ञान का करूँ तो सार्थक हो जायेगा-कर्म परम्परा को मैं परिमार्जित, परिष्कृत करता चला जाऊँ तो सार्थक हो जायेगा । जीवन करने में सार्थक नहीं, होने में सार्थक है और ऐसा आनन्दमय जीवन आप हम, सब, जी सकते हैं ।

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् ।
आनन्दाद् ह्येव खलु इमानि भूतानि जायन्ते ।
आनन्देन जातानि जीवन्ति ।।
आनन्दं प्रयान्ति अभिसंविशन्ति ।

(तैत्तिरीयोपनिषद्, ३/६)

[आनन्द ब्रह्म है, ऐसा जानो । आनन्द से ही यह भूत-प्राणी उत्पन्न होते हैं, आनन्द से ही जीवित रहते हैं, आनन्द में ही प्रविष्ट हो जाते हैं ।]

यह आनन्द जो स्वरूप है-मौन के और ध्यान के दर्पण में, वह अपना जो स्वरूप है, वह देखने की बुद्धि और शक्ति आपको-हमको उपलब्ध हो-इसी शुभकामना के साथे यह संवाद यहाँ, समाप्त तो नहीं, स्थगित करते हैं ।

: २ :

स्थान : संस्कातीर्थ, आजोल (गुजरात)
(शिक्षिकाओं और समाज-सेविकाओं का शिबिर)
दिनांक : २९/३१-१२-१९६७

(क) दोपहर की उद्‌घाटन सभा दिनांक : २९-१२-१९६७

इन सभाओं में आप के साथे कभी सशब्द, कभी नि:शब्द संवाद चलेगा। जनता की, देश की, दुनिया की सबसे बड़ी सेवा स्वयं मानव बनना है। जब तक व्यक्ति स्वयं मानव नहीं बनता तब तक दूसरे किसी की किसी भी प्रकार की सेवा करने का दावा एक कल्पना का विलास है। मानव का जन्म, मानव-देहधारी पशु का जन्म, है। मनुष्य का देह उपलब्ध होना एक बात है, और व्यक्तित्व में मानवता का आशय विकसित होना, पुष्ट होना दूसरी बात है। आज जिस मुकाम पर सारी मानव-जाति खड़ी है, वहाँ उसकी आँख अन्तर्मुख करके खोजना है। व्यक्ति को सामाजिक दृष्टि से, सामूहिक दृष्टि से खोजना है कि हम मानव हैं या नहीं। यदि नहीं, तो क्यों नहीं है और मानव बनना है तो किस प्रकार बनेंगे। आपने आम का बीज बोया, अंकुर फूटा, पौधा बना, वृक्ष का तना खड़ा हुआ; पत्ती भी आई, फल न आए। गुलाब का पौधा है, कलियाँ आईं, मुरझा गईं, खिल कर फूल नहीं बने। आप कहेंगे कि जो बोया था उसका विकास नहीं हुआ। तो इस मानवता में अनन्त दिव्य सम्भावनाओं को भर-भर के भेजा जाता है। यह मानव-शरीर एक प्रकार का बीज समझ लीजिये। अनन्त सम्भावनाओं को खिलने देना, फलने देना और अपनी समग्रता में विकसित होकर सौरभ फैलाना, यह सबसे बड़ी सेवा है। यह करने का रास्ता खोजना है, चाहे आप घर में हों, चाहे बाहर हों, चाहे स्त्री-शरीर में हों, चाहे पुरुष-शरीर में हों, चाहे समाज-सेवा करती हों, चाहे विद्यालय में आचार्य हों। खोजना है कि मनुष्य कैसे बनेंगे। भूख

जाग उठनी चाहिए, प्यास जाग उठनी चाहिए मानव बनने की। कैसे बनें ? पहले तो मानव क्यों नहीं हैं, इसकी खोज करनी होगी और उस खोज का प्रारम्भ है आत्म-परिचय। प्रभुने मुझे क्या-क्या दिया है, इसको पहले देखिये।

आँखें खोल-खोल कर सारी दुनिया को मानव देखता है। पृथ्वीतत्त्व पर विजय, वायु पर विजय, आकाश में, अन्तरिक्ष में जाना-न जाने विज्ञान और यन्त्र मानव को कहाँ-कहाँ ले जा रहे हैं। सब जगह जाते हैं तो मानव बनने की यदि भूख और प्यास हो तो दृष्टि को अपने पर लाकर देखना चाहिये कि यह शरीर क्या है। इसमें क्या-क्या भरा पड़ा है ? ये हड्डियां कैसे बनती हैं, यह मांस कैसे बनता है, मांसपेशियाँ कैसे बनती हैं, ये तन्तु कैसे बनते हैं, ये मज्जाएं क्या हैं, ये ज्ञान-तन्तु क्या हैं, इनके क्या-क्या काम हैं ? इनके जो धर्म हैं, उनका मैं पालन करता हूं या उनके विरोध में आता हूं, यह देखने की बात है। अपने तन का परिचय नहीं, और दूसरों की सेवा करेंगे। वह बनेगा नहीं। मोटर चलाने बैठे हैं, 'ब्रेक' लगाना मालूम नहीं, 'गियर' बदलना मालूम नहीं 'ब्रेक' जाम है (फँस गया है,अटक गया है)। 'गियर' बदल नहीं सकते हैं। टंकी में कितना पेट्रोल डालना, यह मालूम नहीं है। मोटर चलाने बैठे हैं। आप कहेंगे कैसा ड्राइवर है। इसको 'पंचर' हुआ तो ठीक करना मालूम नहीं, इसको 'हैंडब्रेक', 'फुटब्रेक' का उपयोग मालूम नहीं। मोटर चलाने बैठे हैं। आप लोग हंसेंगे, लेकिन जिस मानव-तन में बैठे हैं, उस मानव-तन से हम परिचित नहीं हैं। और उसको चलना चाहते हैं तो क्या कम नासमझी की बात है ? जिस मन के द्वारा व्यवहार करते हैं, उस मन से भी उतने ही अपरिचित हैं। जो चिरपरिचित होना चाहिये, उससे सर्वथा अपरिचित हैं, अपने तन से, अपने मन से। तो यह मन को प्रिय, अप्रिय लगना, यह सुख-दु:ख की अनुभूति आना, यह हर्ष या शोक के अनुभव से गुज़रना-यह सब क्या है ? यह मन क्यों इस प्रकार झूले पर झूलता ही रहता है ? कभी हर्ष में, कभी शोक में, कभी सुख में, कभी दु:ख में, यह क्यों इस प्रकार नाचता-कूदता, चंचल रहता है ? यह विचारों का उठना क्या है ? ये जो हमारी भावनाएं उठती हैं ये क्या हैं ? ये स्पन्दन उठते कहाँ से हैं ? इनका लय कहाँ होता है ? किसी ने देखा कभी ? और उस मन में से स्फुरने-वाले तत्त्वों को लेकर हम सेवा करेंगे; वह शब्द ही कलुषित निकलेगा,

दूषित निकलेगा। तन से, मन से परिचय पाने के बाद, जो कर्म आप के भीतर से खिल उठेगा वह समग्रता की ओर ले चला जाएगा। तब तक सारे कर्म कर्म नहीं हैं, इन्द्रियवश होकर की गई क्रियाएं है। और तन-मनकी गुलामी से जो क्रियाएँ रात-दिन करते चले जाते हैं, उनको मेहरबानी करके हम कर्म न कहें, कर्मयोग न कहें। उन क्रियाओं में से शरीर थक जाएगा और जीवन के सन्ध्याकाल में हाथ ख़ाली रह जाएगा। तन की, मन की गुलामी से मुक्त होने के बाद जो स्वायत्त कर्म प्रस्फुटित होता है, वह है सेवा। कोई रामकृष्ण परमहंस सेवा करने के अधिकारी थे, कोई अरविन्द सेवा के अधिकारी थे। कोई रमण महर्षि सेवा करने की बात बोल सकते थे। ''तो क्या कभी कुछ न करें? हम विद्यालय बन्द कर दें? विद्यालय, छात्रालय, बन्द करके चले जाएँ?'' यह मतलब नहीं है। मानव बनने की प्रक्रिया में न कुछ छोड़ना पड़ता है, न कुछ बन्द करना पड़ता है। अभिप्राय यह है कि मानव बनने की भूख और प्यास जाग उठना और मानव बनने की ओर क़दम बढ़ाना यह होना चाहिए अधिष्ठान आप की बहिरंग प्रवृत्ति का।

(ख) सायंकाल की प्रार्थना-सभा दिनांक : २९-१२-१९६७

जीवन की गति ऊर्ध्व होती है । जिसमें प्राणशक्ति है और प्राणों का संचालन करने वाली ऊर्जा है, उसकी गति ऊर्ध्व होती है । बीज बोते हैं, अंकुर धरती को भेद कर ऊपर उठता है । पौधे की गति आकाश की तरफ़ होती है । सागर जल से भरा है । सूर्य की किरणों से वह पाता है प्रेम की ऊष्मा । बाष्प बन कर ऊर्ध्वगति में उठता है । चन्द्रमा की किरणें जब पाता है, तो आनन्द से ऊपर की ओर उछलता है । इसी प्रकार मानव बनने पर अनुभव में आता है कि मानव का जीवन भी ऊर्ध्वगति है । सत्य, शिव और सुन्दर की ओर जो गति है उसको मैं ऊर्ध्वगति कह रही हूँ । अपने शरीर से ऊपर उठने की प्रेरणा मिलती है । सत्य की ओर जाने की, अमृत की ओर उठने की, सुन्दर की ओर उठने की जो प्रेरणा है वह ऊर्ध्वगति जीवन की प्रेरणा है । अहंकार अधोगति में ले जाता है क्योंकि वह हमें शरीर से बाँधता है, मन से बाँधता है । और अपने चारो ओर एक परिधि का निर्माण करता है जिसमें मनुष्य को घूमना होता है । 'अहं' के केन्द्र से जिस परिधि का निर्माण होता है वह मनुष्य को वैश्विक चेतना से अलग कर देती है; अहंकार की गति सीमित करने की, मर्यादित करने की, परिधि में बाँध देने की है; वह चारों ओर दीवारें खड़ी करके मनुष्य के लिए सुरक्षितता के आभास का निर्माण करता है, इसी में सारा जीवन बीतता है । अहंकार कहता है-'धन कमाओ, फिर धन से सुख के सामान जुटाओ, धन से प्रतिष्ठा खरीदो, धन से अनुयायी बनाओ, चेले बचाओ, धन से सुरक्षा खरीदो ।' सुख-सुविधा का सामान भी जब ऐशो-आराम में परिणत होता है, तो वह सुरक्षा की कैद बन जाता है । अहंकार हमेशा संग्रह और परिग्रह सिखाता है । मन में उठने वाली हरेक वृत्ति को अहंकार अपना साधन बनाता है । और संग्रह और सुरक्षा के प्रलोभन में एक नहीं, अनेकानेक जीवन व्यतीत कर देता है ।

प्रार्थना है अहंकार के इस दुष्ट चक्र से छूटने की आकांक्षा। प्रार्थना शारीरिक क्रिया नहीं है, शारीरिक क्रिया उसका बाह्य रूप है। लेकिन प्रार्थना का आशय शरीर से सर्वथा भिन्न है। शब्दों का उच्चारण, महापुरुषों की अनुभूतियों का रस जिनमें लबालब भरा है, ओत प्रोत है, ऐसे शब्दों का, भावनायुक्त शब्दों का उच्चारण करने से हममें भाव-जागृति होगी, यह समझ कर प्रार्थना करते हैं, सन्तों के शब्दों का पुन: उच्चारण करते हैं। भजन करने जाते हैं, लेकिन भाई ! शब्द तो है छिलका। उस छिलके को उतार कर शब्द के भीतर जो अर्थ की गुफा है, उस गुफ़ा में घुसना पड़ता है, जिसमें सन्त की अनुभूति का आलोक पड़ा होता है। यदि छिलकों पर रुक जाएँगे तो प्रार्थना फिर शारीरिक और यान्त्रिक क्रिया रहेगी। वह यान्त्रिक और शारीरिक क्रिया मात्र न रहे, इसलिये उसे सीखना पड़ता है। कला इसमें है कि शब्दों के आवरण जो हैं, उनको हटा कर अर्थ के गर्भगृह में घुसें, शब्द-भेद करके अर्थगृह में प्रवेश करें और अनुभूतियों का जो आलोक उस गर्भगृह में पड़ा है, उसके स्पर्श से ज़रा शुचि हो जाएं, उसमें स्नान कर लें, नहा लें। तो, अहंकारकी यह मायामयी लीला है, जो नाच नचाती है-''अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल''-इन विषयों ने बहुत नाच नचाया गोपाल, काम-क्रोध की माला भी पहनायी, नूपुर भी मेरे पाँव में बाँधे, बहुत किया-अब यह नाच हम नाचना नहीं चाहते, ऐसी जब चीख, एक आर्त पुकार समस्त प्राणों में से फूट पड़ती है, तब वह प्रार्थना बन जाती है। अहंकार की कैद में गिरफ्तार आत्मा जब उस कैद से मुक्तहोने के लिए छटपटाता है तो उसकी विकलता शब्दों में व्यक्त होने लगती है, उसको कहते हैं प्रार्थना। यह व्याकुलता, यह विकलता यह आर्तता जागृत हो इनलिये दैनिक जीवन में प्रार्थना-कर्म का समावेश किया जाता है, यह नहीं भूलना चाहिए।

उन लोगों में से मैं नहीं हूँ कि प्रार्थना का मर्म हाथ में नहीं आया, इसलिये बाहर के कर्म भी छोड़ दो, उनका भी निषेध करो। निषेध भी एक प्रकार की सूक्ष्म आसक्ति का ही रूप है। एक ही विकार भावरूप हो जाए तो आसक्ति कहलाता है। और वही निषेधात्मक भाषा में उतर जाए तो विरक्ति बन जाता है। अनुरक्ति और विरक्ति, आग्रह और निषेध-ये दो वृत्तियाँ दिखती हैं, लेकिन असल में एक ही है। इसलिये यह नहीं कहूंगी कि प्रार्थना सब झूठ है, यह सब छोड़ दो। यह कहूंगी कि इस बाह्य रूप पर अटकना नहीं, मेरी बहनों; इसके भीतर घुसना, बाहर अटके रहोगे तो

फिर एक सदाचार-मात्र हाथ लगेगा, अन्तर भीगेगा नहीं।

आँख न मूंदौं, कान न रूंधौं, काया-कष्ट न धारौं।
खुले नयन सों हँसि हँसि देखौं, सुन्दर रूप निहारौं।।

साधो, सहज समाधि भली।।

ऐसे सहज समाधि के सुख तक यदि पहुँचना है तो बाह्य क्रिया पर रुकना नहीं। रुकता कौन है? जा सभान नहीं होता, जो सजग नहीं होता, वह रुकता है। भेदन करने की शक्ति चाहिये, तो वह सावधनता है। जब किसी शब्द का उच्चारण करते हैं तो देख लेना चाहिये कि शब्द का अर्थ मालूम है या नहीं? यदि कहते हैं कि है, तो फिर 'प्रभु तू असत् में से सत् की ओर ले जा'-यह कहते समय देख लेना चाहिये कि सत्यमय जीवन के लिये समाज में जो कीमत चुकानी पड़ेगी वह चुकाने का साहस है या नहीं। जिस किसी ने राम को बुलाया और वह जाकर जिस किसी के हृदय में बसा, उसको आपके समाज ने तो कभी भला नहीं कहा। हरिश्चन्द्र के हृदय में सत्य बसा तो राज्य भी गया, और परिवार भी गया और भरे बाजार में खड़ा होना पड़ा कि बोलो क्या कीमत है? स्मशान में नौकरी भी करनी पड़ी और पुत्र का कफ़न फाड़ लेने को तलवार उठाने की भी नौबत आई। सत्य बड़ा कृपा-कठोर है, अपनी कीमत वसूल करता है। सब कुछ-जितने विकार हैं, जितनी कमज़ोरियाँ हैं, उनको सत्य अपनी अग्नि में जला देता है, भस्मसात् कर देता है। बड़ा कृपा-कठोर है। सत्य की प्रतिष्ठा हो यह कहने से पहले, जिह्वा पर शब्द लाने से पहले दिल में सौ बार सोच लेना चाहिये कि रातदिन कहती हूँ कि-'राम मेरे हृदय में बसो, सत्य मेरे हृदय में बसो, मेरे हृदय में करुणा रहे, प्रेम रहे'-तो सोच लेना चाहिये कि इनके लिये मेरे भीतर जगह है क्या? और वे सचमुच आकर बैठ जाएंगे तो जो कीमत वसूल करेंगे, वह चुकाने की हिम्मत है, इच्छा है, शक्ति है? प्रेम का हृदय में प्रवेश होना मुश्किल नहीं है, लेकिन प्रेम को हृदय में धारण करने के लिये बहुत बड़ी शक्ति चाहिये।

''प्रेमपंथ पावकनी ज्वाळा, भाळी पाछा भागे जो ने।
माहीं पड्या ते महासुख माने, देखनहारा दाझे जो ने।
हरिनो मारग छे शूरानो, नहिं कायरनुं काम जो ने।।''

[प्रेमपंथ पावक, अग्नि की ज्वाला है । इसे देख कर कोई पीछे न भाग जाए; जो इनके बीच पड़ जाता है वह महासुख मानता है और देखने वाला जलता है । हरि का मार्ग शूरों का है, वहाँ कायर का काम नहीं ।]

यह पावक की ज्वाला ! प्रेम करना कोई कमज़ोरों का काम नहीं हैं । तो प्रार्थना करते समय यदि सभान रहकर शब्दों का उच्चारण करने लगेंगे तो शब्द कृपा-पूर्वक अपना अर्थ स्वयं समझा देंगे । अपने सारे व्यक्तित्व को सुबह और शाम जो खड़ा कर देता है अर्थ के आलोक में, उस प्रकाश में जो सुबह शाम नहाता है, उसकी शक्ति बढ़ेगी । सूर्यस्नान करते हैं न भाई ! गंगास्नान करते हैं । उसी प्रकार सन्तों की वाणी में जो अर्थ का प्रकाश है, जो अर्थ का जल है, जीवन है, जो उसकी अनुभूति का रस है, उसमें सुबह-शाम स्नान करने वाले की शक्ति नहीं बढ़ेगी तो किसकी बढ़ेगी ? लेकिन यह स्नान करना चाहिये । तो, दिन में प्रमादवश, तन्द्रावश, जड़तावश, अनवधानवश हम भूल जाते हैं कि हम शरीर नहीं हैं, हम मन नहीं हैं, हम बुद्धि नहीं हैं; हम इन से परे हैं, ये सब हमारे साधन, वाहन हैं । हमारा सत्य इन से परे है, इसमें नहीं है, यह मालूम है, लेकिन फिर भी प्रमादवश भूल करते हैं ।

बारह वर्ष तप करने के बाद भगवान् महावीर ने क्या कहा ? प्रमादरहित जीवन के बारे में ही तो बोले हैं । हम यदि यह समझेंगे कि चार किताब पढ़ने के बाद हमारा जीवन प्रमादरहित हो गया तो बड़ी भूल में हैं । अखण्ड जागृति तो वह तलवार है जिसकी धार कभी कुन्द नहीं पड़ती । इसलिये दिन में २४ घण्टे का अवधान साधने के लिये यह प्रार्थना का उपक्रम है । जैसे, तैरना सीखना है तो जाकर नदी के प्रवाह में हमें छलांग लगानी पड़ती हैं, उसी प्रकार अनुभूति-संपन्न व्यक्तियों की जो वाणी है, जो शब्द हैं, उनके अर्थ में एक बार दिन में जाकर छलांग लगानी चाहिये ताकी २४ घण्टे के अनवधान का परिमार्जन हो जाए । जहां तक मैं समझी हूँ, प्रार्थना का प्रजोजन है-याद दिलाने का कि भाई, यह शरीर जो आज है कल नहीं रहेगा; यह शरीर तो आज है, अभी है, और घड़ी भर के बाद नहीं भी रह सकता । लेकिन जन्म और मृत्यु इन दोनों तटों के बीच में रहने वाला जो जीवन का प्रवाह है, उसमें तो जो साक्षित्व का अभ्यासी है, वही नहा सकता है । मैं शरीर हूं, इन दोनों में से बहने वाला जीवन मैं हूं ! इसकी याद अपने आपको दिलाने के लिये प्रार्थना है, पूजा है, आपके जप-साधन हैं । यह प्रयोजन है इनका । लेकिन हम लोग इस देश में ऐसे अभागे हो गये

हैं कि हम आचरण का प्रयोजन भूल जाते हैं। व्यवहार या आचरण का प्रयोजन भूल जाते हैं। व्यवहार या आचरण या कर्म जिसकी ओर संकेत करता है, जिसके लिये प्रतीक बनकर व्यवहार का आरम्भ हुआ है, उस संकेत को भूल जाते हैं, प्रतीक को चिपके रहते हैं। इसलिये लाखों जाते हैं, मन्दिरों में, मस्जिदों में। शिव की उपासना करने वाले हैं, लेकिन वैराग्य नहीं। वीतराग महावीर की पूजा करते हैं, लेकिन परिग्रह नहीं गया! कृष्ण के गीत गाते हैं, लेकिन प्रेम की किरणें भी हृदय में नहीं जाग उठीं। ऐसे हम कोरे के कोरे रह जाते हैं। यह प्रार्थना नहीं है। प्रार्थना यदि बहिरंग पर रुक जाए तो दूसरा नुकसान यह होता है कि हम पाखण्डी बन जाते हैं। दम्भी बन जाते हैं। अहंकार होने लगता है कि मैं धार्मिक हूँ और जो भजन नहीं करता वह अधार्मिक है। 'मैं आध्यात्मिक हूँ', लेकिन 'मैं हूँ' जहाँ का तहाँ। और प्रार्थना तो है इसी 'मैं' को पिघलाने की युक्ति; अहंकार को आरजू में बदल देने वाली ही तो प्रार्थना हैं। लेकिन हम तो उस 'अहं' को चिपके रहना चाहते है। हम समझते हैं प्रार्थना एक मानसिक कर्म है, पूजा मानसिक और शारीरिक कर्म है। 'मैं पूजा करूंगा, मैं ध्यान करूंगा। धन कमाना छोड़ दिया। विवाह किया, छोड़ दिया पत्नी को, 'मेरी पत्नी, मेरी प्रतिष्ठा, मेरा घर, मेरा धन,' छोड़कर 'मेरा धर्म, मेरा सम्प्रदाय, मेरी अनुभूतियाँ'-इनको पकड़ लिया। अहंकार ने विषय बदल दिये, लेकिन अहंकार, संग्रह, परिग्रह नहीं छोड़ता। बाहर की स्थूल वस्तुओं को छोड़ दिया तो भीतर का सूक्ष्म परिग्रह ले बैठता है अहंकार। बाहर का परिग्रह छूट भी जाएगा, लेकिन यह जो भीतर का परिग्रह है वह ऐसा चिपक कर बैठता है कि जैसे कर्ण के कवच-कुण्डल थे। ये जो हमारी चेतना पर चिपके बैठे हैं, ये परिग्रह के जो स्तर हैं, इन सबको एक-एक करके प्रेम से उतार देने की प्रक्रिया प्रार्थना है।

गङ्गाजी में नहा कर आये और शरीर स्वच्छ नहीं हुआ तो आप कहेंगे कि नहाये नहीं है। और प्रार्थना करते-करते जिन्दगी बीत गई है, अहंकार नहीं गया, क्रोध नहीं गया, ईर्ष्या नहीं गई, द्वेष नहीं गया। दोष प्रार्थना का नहीं है, प्रार्थना के नाम से दाम्भिक आचरण करने वाले का है।

[यहाँ पर रामकृष्ण देव के भक्त गिरीश घोष की नाटक-मण्डली की अभिनेत्री तारा के जीवन-परिवर्तन, एक प्रणाम से समग्र कलुष के धुल जाने की घटना कुछ विस्तार से सुनाई गई थी।]

मानस में है। यह जो मन है, चेतन-अचेतन मन है, उसमें ऐसी शक्ति भरी पड़ी है कि उस उत्कटता को बटोरकर जिस किसी रूप को देखना चाहोगे, जिस पर निदिध्यास करोगे, वही रूप सामने आ जायेगा। देखो; उस रूप में भी देखो। लेकिन भीतर जिस रूप की चाह थी, उस रूप का प्रक्षेपण हमने बाहर किया है, यह न भूलो। हममें, यानी यहाँ बैठी हुई 'कमला-सरला' ने नहीं, मानव ने हज़ारों वर्ष पहले, जैसे हम सपने देखते हैं, वैसे सपने देखे थे।

'सत्यं शिवं सुन्दरम्' इस प्रकार के निराकार तत्त्व से समाधान नहीं हुआ तो भावयुक्त चित्त ने 'सत्य' का भी रूप देखना चाहा, 'शिव' को भी रूप देना चाहा। चेतना पुरुषत्व और स्त्रीत्व से ग्रस्त है। इसलिये कभी उसे स्त्री के रूप में देखा, कभी पुरुष के रूप में देखा। लेकिन प्रभु के कहीं स्त्रीत्व और पुरुषत्व है ? हैं तो सभी रूप उस अरूप के ही हैं, नहीं तो कोई नहीं। अन्वय दृष्टि से देखना चाहो तो अनन्त रूप उसी के हैं; स्त्रीत्वभी उसका और पुरुषत्व भी उसी का। और, व्यतिरेक दृष्टिसे देखना चाहो तो उस अरूप के कोई रूप नहीं, उस निर्गुण के कोई गुण नहीं। सच्चिदानन्द रूप कहोगे तो भी लक्षणा है। यथार्थता उससे बहुत दूर है। इसलिये अपने को जो रूप प्रिय है, उस रूप में अपने भीतर की उत्कटता से यदि देखना चाहेंगे और उस अनुभवपर पहुँचेंगे कि वह रूप सामने आया है, तो वह भी एक सोपान हो सकता है। हिन्दू हो तो कृष्ण के रूप में देखेगा, ईसाई है तो ईसा के रूप में देखेगा, मुसलमान बेचारा देख नहीं पाएगा क्योंकि अल्लाह के कोई रूप नहीं है और पैगंबर मुहम्मद की भी कोई तस्वीरें उपलब्ध नहीं हैं। जैन है तो महावीर के रूप में देखेगा, बौद्ध हो तो गौतम बुद्ध के रूप में देखेगा। कोई किसी रूप में, कोई किसी रूप में। उत्कटता के साथ जब कल्पना शक्तिका विहार और विलास होने लगता है तब कविहृदय रूप भी देख लेगा, नाद भी सुन लेगा। लेकिन समझने की बात तो यह है कि सभी नाद, सभी रूप, सभी रंग भीतर पड़े हैं। इसमें अधिक इस समय नहीं कहेंगे।

प्रार्थना में द्वैतका आभास होता है और भक्ति का भी यह अर्थ समझ लिया गया है कि भक्त पुकारता है और भगवान् आते हैं। लेकिन भक्ति क्या है। भक्त कौन है ? और उसके भगवान् कहाँ रहते हैं, इस विषय में कल विचार करेंगे।

(क) प्रात:काल की प्रार्थना-सभा दिनांक : ३०-१२-१९६७

प्रेम में जीवन है और द्वेष में मृत्यु । शान्ति में जीवन और अशान्ति में मृत्यु । यह जीवन पाने के लिये, शरीर के अणु-रेणु प्रेम से ओतप्रोत होने के लिये भक्ति एक साधन है, ज्ञान एक साधन है, कर्म एक साधन है, यह जो व्यक्ति भूल गये वे कर्म में आसक्त हो गये, ज्ञान में डूब गये, भक्ति के उपकरणों में आसक्त हो गये । वे जीवन का रहस्य खो बैठे । भक्ति क्या हैं ? भक्त कौन है और उसके भगवान् कहाँ होते हैं, इसका विचार आज करेंगे ।

साफ़ ही है कि यह संसार न आपने बनाया है, न मैंने । आशा करती हूँ कि आप लोग कभी आँख खोल कर, यह जो सृष्टि है उसे देखते होंगे । मालूम नहीं आप में से कितनों ने कोयल का गीत सुना है, कितनों ने कौवे का सुन्दर काला वर्ण देखा है, कितनों ने आँख खोल कर मोर के पङ्खों की सुन्दरता देखी है, कितनों ने अंधेरे को देखा है । अँधेरा बहुत सुन्दर होता है । मानव-निर्मित प्रकाश की अपेक्षा अन्धकार की सहज, स्वाभाविक सुन्दरता न जाने चित्त को कैसी प्रसन्नता से भर देती है ? आकाश के तारों को कभी देखा है ? झरनों को, नदियों को बहते हुए, कभी क्षण-भर रुक कर देखा है ? आप से बातचीत करने जो लोग आते होंगे उनकी आँखों में से झाँकने वाली रोशनी को, उस चेतना को कभी देखा है ? नहीं, देखने की फुर्सत हमें है नहीं । अपने विचारों में, अपनी भावनाओं में, वासनाओं में हम ऐसे उलझे हुए हैं कि हमें किसी की ओर देखने की फुर्सत नहीं । पति को पत्नी की ओर देखने की फुर्सत नहीं । देखता है, जब तक उसकी वासना का वह साधन है, तब तक उसके रूप की प्रशंसा होती है । पति के रंजन के लिये शृङ्गार, प्रसाधन किया हो, तब देखता है । वह तो अपनी ही वासना को देखता हुआ । पत्नी को देखना कहाँ हुआ ? पत्नी ने पति को कभी देखा है ? वह तो पैसा कमाता है, उसका तन का मालिक है, घर का मालिक है, वह संरक्षण देता है समाज से; तो अपने मालिक को देखा है । पति को किसने देखा ? अपने बच्चों को कभी देखा है आँख खोल कर ?-जिनको जन्म दिया है ! अपने ममत्व को देखते हैं,

देखिये, कैसे जागृति काम करती है ! जागृति ऐसी विस्फोटक वस्तु है, ऐसा द्रव्य है जागृति, कि जिसमें सारे दोष क्षण मात्र में, पलमात्र में भस्मसात् होते हैं। फिर दोष के परिमार्जन के लिये स्वतन्त्र साधना नहीं करनी पड़ती। जागृति जैसा explosive, विस्फोटक कुछ नहीं, कोई द्रव्य नहीं, कोई तत्त्व नहीं। एक प्रणाम से पाप धुलता है और हम सौ बार करते हैं, हमारा क्यों नहीं धुलता ? हम सचमुच करते ही नहीं। यह तो अहंकारी की एक माया है कि वह शरीर को झुका देता है। अहंकार बड़ा कुशल है; कभी गर्दन सीधी रखायेगा, तो कभी झुकायेगा भी। शरीर को झुकाना प्रणाम नहीं है। कण्ठ से या वैखरी वाणी से शब्दों का उच्चारण करना प्रार्थना नहीं है। प्रार्थना है समस्त चेतना की एक आर्त पुकार, समस्त प्राणों में जगी हुई एक प्यास है, एक भूख है। पुकार की यह उत्कटता, अहंकार की कैद से उसके कारागृह से मुक्त होने की आकांक्षा हम सब लोगों के हृदय में जन्म ले, यही प्रार्थना मैं करती हूं।

लोग समझते हैं कि प्रभु कहीं बाहर है, कहीं दूर है और उनसे प्रार्थना करनी है और उन्हें बुलाएँगे, वे आएँगे, वे आएंगे। कहीं, बाहर हैं, कहीं दूर हैं, उनकी सुनाने के लिये हम कह रहे हैं। विवेक से देखा जाए तो यह 'भीतर' और 'बाहर' दोनों शब्द भी बड़े मायावी हैं, मिथ्या हैं। जो त्वचा से बाहर है, उसको 'बाहर' कहते हैं, जो त्वचा के भीतर है वह दिखता नहीं है, इसलिये उसको भीतर कहते हैं। यदि प्रभु बाहर हैं तो वे कहीं दूर नहीं हैं, वस्तु मात्र में हैं, लेकिन बाहर हैं तो भीतर भी हैं। एकदेशीय तो हैं नहीं कि आप जहां बैठा देंगे वहाँ मन्दिर में बैठे रहेंगे। बड़े नटखट हैं। सारी दुनिया में संचार करने के बाद भी वह ऊर्जा जो है, अबाधित काल से उस ऊर्जा की सर्जनशीलता चली आयी है। न जाने कितने विश्व आज तक आए, न जाने कितने देश उठे। धीरे-धीरे सभ्यताएं आईं, उत्थान की चरम सीमा पर पहुँचीं, लय पा गईं। उस आद्य शक्ति ऊर्जा का खेल चलता ही रहता है, चलता ही रहता है। तो, दूर बैठे हुए किसी प्रभु को बुलाने के लिये प्रार्थना नहीं है। प्रार्थना अपने आपको स्मरण दिलाने के लिये है।

'हमने प्रार्थना की और प्रभु आये थे, हमने देखा है, बंसी बजाते आये थे, धनुर्धारी बनकर आये थे, पार्वती के संग आये थे' ठीक है। चित्त की सारी उत्कटता बटोर कर जिस रूप में देखना चाहोगे उस रूप का प्रक्षेपण करने की शक्ति तुम्हारे

कि 'ये मेरे बच्चे हैं' । आप खुश हों, उस समय बच्चे आएँगे तो आप गोद में बिठाएँगे और आप नाराज हों तो उस समय बच्चा या तो आप की आँख देख कर आपके पास आएगा ही नहीं, यदि आया तो तमाचा खाएगा, कम से कम अपशब्द तो सुनेगा ही । बच्चों को देखने की फुर्सत नहीं । आपके अहंकार का पोषण बच्चे से होगा, तब तक देखेंगे । प्रभुत्व-भावना का उपकरण बच्चा बनेगा, तब तक देखेंगे । इसलिये कहती हूँ कि अपने तन को देखने की फुर्सत है नहीं, अपने मन को देखने की फुर्सत है नहीं । आस पास यह जो सुन्दर सृष्टि है, इसे देखा है ? नहीं देखा है ।

पतझड़ को देखा है ? सूखे पत्ते हवा के झोंको से कैसे वृक्ष से अलग होते हैं, हवा में तैरते हैं और कितनी मधुरता से धरती पर आकर उसकी गोद में गिरते हैं, कभी देखा है ? एक दूसरे की निन्दा करने की फुर्सत है, आलोचना करने की फुर्सत है, अपने भूतकाल की स्मृति से खेलने की फुर्सत है, भविष्य काल की कल्पना से खेलने की फुर्सत है; लेकिन वर्तमान में प्रभु ने सृष्टि का सौन्दर्य चारो ओर जो बिखेर दिया है, उसके साथ क्षण-भर के लिए भी तादात्म्य करने का समय किसी को नहीं है, प्रेम करना दूर रहा । और प्रेमहीन जीवन शुष्क होता है । अंग-प्रत्यंग को अणु-रेणु को प्रेम से ओत-प्रोत कर देने में ही जीवन की सार्थकता है । इसीलिये कहती हूँ कि जो भक्ति है,वह सृष्टि में बिखरी हुई सुन्दरता को देखने की आँख है । जिस किसी ने यह संसार बनाया, वह छिपा हुआ है; व्यक्त सृष्टि के पीछे अव्यक्त बन कर मुस्कुराता है । उसको देखने की कला भक्ति सिखाती है ।

मनुष्य ने सोचा कि ''मेरी भूख सत्य के लिये है, मेरी भूख 'शिवम्' के लिये, मङ्गलमय के लिये है, मेरी भूख पूर्णता के लिये है, सौन्दर्य के लिये है । अच्छा, तो सुन्दरता को, मङ्गलता को जितनी कल्पनाओं में साकार कर सकता हूँ, प्रतिमा बना सकता हूँ, उतनी प्रतिमाएं बनाऊँगा ।'' प्रतिमाएँ बनीं । वास्तव में विष्णु है या नहीं, शिव हैं या नहीं, कृष्ण हुए थे या नहीं, इससे मुझे कोई मतलब नहीं, लेकिन जिस मानव ने उसका सर्जन किया होगा, अपनी दिव्य दृष्टि से देखा भी होगा, वह धन्य है, क्योंकि उसने अपने भीतर छिपी हुई मङ्गलता, सुन्दरता को रूप देने का पुरुषार्थ किया । प्रतिमाएँ बनीं और फिर सिखाने लगे बच्चों को कि 'यह देखो, ये कृष्ण हैं । ये प्रेममय थे । काम-गन्ध-हीन प्रेम, लोकान्त में रहते हुए एकान्त में रहने की कला जिस योगी के पास थी, सब कुछ करते हुए अपने साक्षित्व को टूटने न देने की कला जिस योगी के

पास थी, वह है यह कृष्ण, देखो । इसका सुन्दर रूप देखो, इसकी निर्व्यङ्ग काया देखो ।' इसलिए मूर्ति बनाई कि शायद उस सुन्दरता को देखते-देखते भीतर की सुन्दरता जाग उठे; उस प्रेममय को देखते-देखते भीतर के प्रत्यवाय हट जायें, मिट जायें ।

''यह राम हैं, यह मर्यादापुरुषोत्तम हैं । मर्यादा सीखनी है तो इनसे सीखो''-तो मर्यादापुरुषोत्तम को सगुण साकार बना कर सामने रखा । ''यह देखो, यह सत्यमय थे, एकवचनी, एकवाणी थे । ये थे हरिश्चन्द्र; स्वप्न में दान दिया तो उठ कर जागृति में सच ही कर दिया ।'' तो, गुणों को साकार रूप देकर प्रतिमायें बनाई गईं; और पहले उनसे प्रेम करने की साधना बतलाई । ''पहले इनसे तो प्रेम करो, इनके लिए सब कुछ लुटा देने की कला तो सीखो ।''

भक्त तो वह है, जो प्रभुसे पल भर के लिए विभक्त नहीं होता । संसार की कोई भी बात प्रभु से उसको हटा नहीं पाती । रामभक्त कृष्ण के मन्दिर में भी गये, तो-

''कित मुरली कित चन्द्रिका, कित गोपिन को साथ ।
अपने जनके कारने, नाथ बने रघुनाथ ।।''

-यही बोले । वहाँ उनको धनुर्धारी बनना ही पड़ा, और राम के मन्दिर में शिवभक्त गये, यह ठानकर कि हम शिव के सिवा दर्शन नहीं करेंगे । मूर्ति के लिए कुछ वस्त्र बनाने थे, अलङ्कार बनाने थे; आँख बाँध कर नाप लेने लगे तो शिव के सिवा कुछ हाथ नहीं आया । लेकिन यह तो सोपान-भर है । सुन्दरता की एक स्थान पर उपासना की । तो वह उपासना साधना बन जानी चाहिए-संसार में बिखरी हुई सुन्दरता को देखने की । एक मूर्ति में अभी प्रभु के दर्शन करने की शक्ति आ गई है, चित्त की एकाग्रता के कारण । अब प्राणी-मात्र, भूत-मात्र, पदार्थ-मात्र प्रभु के रूप हैं, यह सीखना है, पहुँचना वहाँ है । भक्ति की पराकाष्ठा वहाँ है, जहाँ अपने घर में अपने ही हाथ से सजाई हुई, सिङ्गारी हुई मूर्ति में ही प्रभु नहीं हैं, बल्कि जो व्यक्ति मिलता है उसकी आँखों से प्रभु झाँकते हैं । वह मारने के लिये आया तो प्रभु है, और माला पहनाने आया तो भी प्रभु ही है; अपमान किया तो प्रभु की लीला और किसी ने सम्मान किया तो हरि की लीला । इसलिये कहते हैं कि भक्त के सभी काल शुभ हैं । लेकिन अपने अहङ्कार हमारे इतने प्रबल होते हैं कि मैंने जिसको इष्ट माना है, वह राम बड़ा कि कृष्ण बड़ा, कि महादेव बड़ा, क्योंकि वह तो 'मेरा राम', 'मेरा कृष्ण', 'मेरा

महादेव' बन गया। 'मेरे महावीर' हो गये, 'मेरा गौतम बुद्ध' हो गया; तो हम पूजा तो अपने अहं की करना चाहते हैं। जो सच्चा उपासक भक्तिमार्ग से जाने वाला होगा, वह तो भक्ति से प्रारम्भ करके अखा की तरह पहुँच जायेगा। अद्वैत भूमि पर; जहां से अखा कह सका था -

''आचार्यो ए कीधी युक्ति, कल्प्यो बन्ध अने मानी मुक्ति।''

[आचार्यो ने युक्ति की। 'बन्धन' की कल्पना की और 'मुक्ति' मान ली।] पहुँचना वहाँ है, पथ आप कर्म का लेते हैं, ज्ञान का लेते हैं, भक्ति का लेते हैं। अपनी रुचि के अनुसार चाहे जो पथ ले लीजिये। गन्तव्य स्थान एक ही है। सारे विश्व के साथ एकता की अनुभूति शरीर के द्वारा, वाणी के द्वारा व्यवहार में जब अभिव्यक्त होने लगती है, तो उसको कर्म कहते हैं और उस कर्म में वह जो एकता की अनुभूति है, उसका सौरभ अद्भुत है। निरहंकारिता ही जीवन में एकमेव सौरभ है, उसके जैसा सुगन्धमय द्रव्य मैंने देखा नहीं है। निरहंकारिता यानी विनम्रता। अहंकार ही दर्प होता है, जिसको आप दुर्गन्धि कहेंगे। दुर्गन्धि देने वाला जीवन में एक ही तत्त्व है और वह है अहंकार। फिर वह अपनी अनन्त दुर्गन्धियों की सृष्टि पैदा करता है। यदि कोई व्यक्ति कमरे में आए तो अपने साथ अपनी सुगन्ध या दुर्गन्ध ले कर आता है, उसको छिपा नहीं सकती है आप की वाणी। ऊपरी व्यवहार का नाटक कुछ नहीं छिपा सकता है, क्योंकि आपके रोम-रोम में से अहंकार का अस्तित्व या तो बोल ऊठेगा या विनम्रता, शून्यता, निरहंकारिता खिल उठेगी, वह निरहंकारिता का और विनम्रता का जो सौरभ है, वही प्रेम है। प्रेम कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है जिसे प्राप्त किया जा सकेगा। मैं आप से कह रही थी की लोग कहते हैं कि भक्ति का पथ सुलभ है, या कर्म का या ज्ञान का ?

प्रेम का पथ स्त्रियों के लिये सुलभ है, जो हो सकता है। नौ मास तक बच्चे को अपने गर्भ में पालन करने के लिये उसके बोझ को बोझ नहीं, आनन्द समझने के लिये जो एक धृति चाहिये, धारण-शक्ति चाहिये वह स्त्री में है। पुरुष को उसकी उपलब्धि ही नहीं है। तो सर्जन करना, धारण करना, भरण-पोषण करना - जितने पृथ्वी के गुण हैं, वे सबके सब स्त्री में हो सकते हैं यदि स्त्री सावधान हो, जागृत हो। अब होता क्या है ? हम लोग तो धारण करते हैं, भरण-पोषण करते हैं, उसमें वृत्ति को और दृष्टि को बदल देने की ज़रूरत है। 'मेरा बच्चा है, मैंने जन्म दिया है, मैंने पालन-पोषण

किया है, मेरी इच्छा के अनुसार उसका व्यवहार होगा। मैं चाहती हूँ, वैसा मेरा बेटा बनेगा, मेरी बेटी बनेगी'। यह प्रेम नहीं है। थोड़ा-सा फ़र्क करने की ज़रूरत है, बहुत ज्यादा नहीं।

स्त्री को तो बहुत ज्यादा सीखना ही नहीं पड़ेगा। प्रभुदत्त इतनी देन उसके पास है, इतनी सुविधा है कि स्त्री जिस दिन जागृत हो जाए उस दिन संसार का रूप-रंग ही बदल जाए, इसमें कोई शक नहीं। तो वह सर्जन करना जानती है, धारण करना जानती है, भरण-पोषण करना जानती है; स्वयं भूखी रह कर आठ-आठ दिन तक बच्चों को खिलाने वाली माताएँ हैं और रात की रात आँखों में काट देने वाली माताएँ हैं; और सुबह उठकर फिर काम में लगेंगी। कोई कहेगा-'आप थकी हुई हैं'। कहती हैं-'नहीं, मुझे थकान तो मालूम भी नहीं।' अपने शरीर से ऊपर उठने की शक्ति स्त्री में बहुत ज्यादा है। जो सामान्य धर्म हैं भूख के, नींद के, उन सब पर वह विजय पा लेती है, अपनी ममता की शक्ति से।

अब थोड़ा-सा उसमें परिवर्तन करें। परिवर्तन मूलभूत है, लेकिन बहुत कठिन नहीं। उसमें से वह यदि सीख ले कि यह शरीर भी तो मेरा नहीं है, यह दिया हुआ है। मैं मेरा कहती हूँ। अचानक पेट में दर्द होता है। 'क्यों भई ? दर्द क्यों होता है ?' हमें मालूम नहीं हो रहा है। सिर दर्द कर रहा है। 'सिर क्यों दर्द करता है ?' मालूम नहीं ! 'शरीर आपका है कि किराये से लिया हुआ है ?' बड़े धोखे में हैं आप। जो आपके फेफड़े हैं, इनका आकुंचन-प्रसारण कोई आप तो नहीं करते है। कोई एसी ऊर्जा, कोई एसी शक्ति भीतर पड़ी है, जो आप के फेफड़ो में आकुंचन-प्रसारण करा के श्वास, हवा भीतर खींचने की और बाहर फेंकने की ताकत उनको देती है। आप को मालूम है कि ली हुई हवा भीतर कहाँ जाती है ? आप को मालूम है कि जो आप श्वास लेते हैं वह पहुँचाता कहाँ है ? उसकी नाभि तक की भी यात्रा किसी ने देखी है ? हमें श्वासोच्छ्वास लेना आता है ? वह तो दी हुई प्रभु की देन है। बच्चा आया। वह संसार में आया कि श्वासोच्छ्वास लेकर आता है, हवा उसको लगी कि खींचता है, ऐसा हमको लगता है। लेकिन ऐसी कोई ताकत है जो बच्चे के काबू में नहीं है।

आप श्वास लेते होते तो आप चाहे जब रोक लेते न ! अन्न का पचन हम करते हैं ? श्वासोच्छ्वास लेते हैं ? बाहर निकला हुआ श्वास भीतर जाएगा या नहीं, यह भी पता नहीं हैं। कहते हैं 'शरीर मेरा हैं।' नींद आप लेते हैं ? बताइये न कैसे लेते हैं।

कोई नहीं बता पाएगा। कहते हैं नींद आ गई है। अरे भाई, क्या हुआ? नींद आ गई यानी कहाँ थे आप? पता नहीं चलता हैं। नींद भी कोई बुद्धिपूर्वक, योजनापूर्वक नहीं लेता है। निद्रा आ जाती है। सारे के सारे शरीर-धर्म भी हमारे स्वाधीन नहीं हैं और 'शरीर हमारा है, हम उसके मालिक हैं'', यह कितना बड़ा धोखा है? जिस क्षण मालूम हो जाए, इसका बोध हो जाये कि इस शरीर के भी स्वामी हम नहीं हैं, (उस क्षण बड़ा काम हो जाए)। यह एक बहुत सुन्दर यन्त्र है, एक बहुत सुन्दर तन्तुवाद्य से भी सूक्ष्म यह वाद्य हमको मिला है। यह हमे मिला है, उपयोग करने के लिये। बस, इतना हमें सीखना चाहिये। इतनी छोटी-सी बात सीख जाओगी तो जीवन बदल जाएगा। शरीर मेरा नहीं; शरीर मिला है उसका उपयोग करना है। मैं ट्रस्टी हूँ। गुरुदयाल मल्लिक जो आज प्रेमिक-शिरोमणि है, कहते हैं-भक्ति क्या है? 'मालिक' हूँ, इसमें से 'क' निकाल दो, 'माली हूँ' -बस और कुछ नहीं। माली बगीचे को पानी देता है, लेकिन बगीचे का मालिक नहीं है। बस, पानी देता है। बीज अपनी ताकत से अंकुरित होते हैं। इस प्रकार जीवन के हम मालिक नहीं, हम स्वामी नहीं। वह बोध हो जाये तो शरीर के प्रति देखने की दृष्टि बदल जाती है। दृष्टि बदल गई तो फिर यह मेरा बच्चा है, ठीक है। एक रूप है, प्रभु का। इसको बनाने में कुछ हिस्सा मेरा है।

मिट्टी का घड़ा बनाते हैं न? घड़ा तो आप अपने हाथों से बनाते हैं, मिट्टी तो आप अपनी नहीं बनाते हैं और प्रभु ने मिट्टी न पैदा की होती तो घड़े कौन बनाते? मकान आप बनाते हैं। मिट्टी लेकर ईंट बनाते हैं, सीमेण्ट भी आप बना लेते हैं और जल प्रभुने न बनाया होता तो मकान कौन खड़ा करता? आप खड़ा करते? गेहूँ और चावल बो कर के फसल आप जरूर घर में लाते हैं, और राँध कर भात और रोटी बनाते हैं। लेकिन कण-भर बोने के बाद मन-भर देने का कीमिया यदि धरती में न होता तो आपके संसार चलते? और इसमें आपके सामने मैं कोई काव्य नहीं रख रही हूँ। यह जीवन ही महाकाव्य है। मैं क्या करूँ? मेरा कोई वश नहीं है। कन-भर लेकर मन-भर धरती क्यों देती है? कैसे देती है? पता नहीं। जल-स्रोत कैसे आता है? कहाँ से आता है? पहाड़ों की चट्टानों को तोड़-तोड़कर आने की ताक़त उस जल में कैसे आती है? मालूम है? बस इसी रहस्य का भान होना भक्ति है, ज्ञान है। बस इसी रहस्य का भान होने के बाद विनम्रता-युक्त व्यवहार होना ही प्रेममय, धर्ममय जीवन है।

तो मैं कह रही थी आपसे कि स्त्रियों को इतना समझने की ज़रूरत है कि इस बच्चे को जन्म मैंने दिया, इसका धारण-पोषण मैंने किया, लेकिन इसकी मालिक मैं नहीं हूँ। जिस प्रकार मैं अपने तन की मालिक नहीं हूँ, उसी प्रकार इसकी मालिक भी मैं नहीं हूँ। जो मेरी जानकारी है, इसे सिखा दूंगी। जो बोध मुझे हुआ है, जो अनुभव आया है, उसको बतला दूंगी कि-'भाई ! यह रास्ता ग़लत मालूम होता है, यह सही मालूम होता है। इसमें हित मालूम होता है मनुष्य का। इसमें अहित मालूम होता है।' ऐसे एक मित्रवत् बतला देना, निवेदन करना-एक बार नहीं, दो बार, तीन बार, चार बार-यह माता-पिता का कर्तव्य है। लेकिन वैसा नहीं किया तो मारो-पीटो, गाली दो, अपशब्द कहो, 'हमने जन्म दिया है, हमने पालन-पोषण किया हैं, दिन में दस बार बतलाओ। ऐसा अहंकारमय व्यवहार जिन बच्चों के साथ होता है, वे बच्चे चौदह-पन्द्रह साल की उम्र तक पहुँचते-न-पहुंचते किस प्रकार माँ-बापसे अलग पड़ जाते हैं !-मन से, हृदय से, यह आपके अनुभव की बात है।

शिक्षक को अहंकार होता है कि मैं सिखाने वाला हूं। वेतन मिलता है और फिर भी अहंकार रखता है ! 'मैं शिक्षक हूं, मेरी बात माननी चाहिये।' गया, वह जमाना गया कि आप उम्र में बड़े हैं, इसलिये आपकी बात मानी जाएगी। वे दिन लद चूके। कभी थे, लेकिन संसार में वे दिन अब कहीं नहीं हैं। भारतके देहातों में यदि ये दिन हों तो वहाँ से भी जानेवाले हैं। मैं आपको चेतावनी देने आई हूं कि वह ज़माना गया। मां झूठ कहेगी और बच्चे से कहेगी कि 'सच बोल', तो बच्चा कहेगा कि 'तू क्यों झूठ बोल रही है।' पिता जी बीड़ी पी रहे हैं और बच्चे से कह रहे हैं कि बीड़ी मत पीना, तो बच्चा कहेगा-'पिता जी ! आप क्यों पीते हैं ?' आप केवल जनक जननी हैं, इसलिये आप पर श्रद्धा रखने का ज़माना चला गया। अब आपके जीवन में जितना सन्देश होगा उतने का परिणाम बच्चे पर होगा। चाहे माता-पिता हों, चाहे राजनैतिक नेता हों-आपके जीवन में जितने दोष होंगे, जितनी त्रुटियां होंगी, वे सब प्रतिबिम्बित होंगी आपके सन्तानों में। इसलिये प्रभुत्ववाद का ही ज़माना निकल गया है। आर्थिक क्षेत्र में, राजनैतिक क्षेत्र में, सामाजिक क्षेत्र में गया तो कौटुम्बिक क्षेत्र में भी गया। इसलिये भक्तिकी तो आज बहुत ज्यादा आवश्यकता है; प्रेममय व्यवहार की आज बहुत आवश्यकता है,

क्योंकि ज़माने आएंगे और जाएंगे। प्रेम का ज़माना कभी जाने वाला नहीं, वही सनातन है, वही शाश्वत है। शान्ति का, प्रेम का, विनम्रता का ज़माना कभी नहीं जाएगा। सत्ता के, धन के, दौलत के, राजनीति के दिन जा रहे हैं।

जितना आज मन्थन चल रहा है, संसार में जितनी अशान्ति है, बेचैनी है, भारत के कोने-कोने में आग की लपटें धधक रही है- हमारा चित्त उतना ही प्रसन्न है। घोर मन्थन में से यदि मुठ्ठी भर धर्मप्राण व्यक्ति जागृत होकर देश के कोने-कोने में संचार करेंगे तो इसी बेचैनी में से, इसी मन्थन में से, इसी तूफान में से, कुछ विधायक, कुछ सर्जनात्मक हो सकता है। यह तो घटित करने वाले पर निर्भर है। धर्म और अध्यात्म के लिये आज भारतवर्ष में जितनी बड़ी चुनौती है, उतनी शायद कभी पहले न थी।

तो, बच्चे के प्रति देखने की दृष्टि बदल जाएगी। लगेगा कि हम तो इसे सम्हालने वाले हैं, देखें तो सही कैसे खिलता है। आप यदि कोशिश करेंगे कि,-बहुत सुन्दर गुलाब की कली है, कमल की कली है, मैं फूंक मार-मार कर इसे खिलाऊँगा; देखूं, कैसे नहीं खिलती है। 'मैं खिलाऊंगा-मैंने फूल लगाया है, मैंने पौधा लगाया है, कली मेरी है।' अरे! पौधा तू ने लगाया? बीज का तो तूने नहीं निर्माण किया था। वह तो अपनी गति से खिलेगी; तेरे फूंक मारने से कली खिलेगी? नहीं। और खिलेगी तो उसका विकास नहीं होगा। माँ-बाप को अपनी कलियों पर फूंक मारने की उतावली है; "बच्चे ऐसे होने चाहिए, वैसे होने चाहिए।"

पूंजीवाद का विरोध करने वाली, समाजवाद का विरोध करने वाली माताएं मैंने घरों में देखी हैं; वे किसी 'डिक्टेटर' (dictator) से कम नहीं हैं। भगवान् का नाम लेने वाले, मन्दिरों में देरासरों (जैन-मन्दिरों) में जाने वाले भक्तों को देखा है। मन्दिर में बैठकर वे कहते हैं कि प्रभु तो विश्वव्यापी है। घर में लौटने पर, उनके बच्चे में वह प्रभु नहीं है, नौकरानी में प्रभु नहीं है, बहू में नहीं है, पड़ोसिन में नहीं है। तो प्रभु कहाँ गायब हो गये? उनको तो मन्दिरों में बन्द करके, ताला लगा कर चले आए न? कहीं बाहर निकल कर हमारे घर में न चला आए! बड़ी कुशलता है। प्रभु के पट बन्द कर दिये, उनको सुला दिया ताकि हमें जो अपना व्यवहार करना है सो कर लें। ऐसे भक्ति नहीं होती, ऐसे प्रेम नहीं होता। जब बच्चों के प्रति द्रष्टि बदल जाएगी तो, उनको अब तक संरक्षण की आवश्यकता है, बाड़ की आवश्यकता है, दे दी जाए।

अब जब वे खिल उठेंगे तब उनके जीवन में उनके गुण-दोषों सहित उनको प्यार करने की ताक़त भक्ति देगी।

तो, शुरू कहाँ से किया ? प्रतिमा से शुरू किया था। एक कोने में बैठकर, शान्ति से दीपक जलाकर, धूपबत्ती जलाकर-यह सुन्दरता की मूर्ति है, यह प्रेम की मूर्ति है, यह विशुद्धता की मूर्ति है-ऐसी विशुद्धता मुझ में आए। यहाँ से शुरू किया। लेकिन उस कमरे से बाहर निकलने के बाद यदि भूल गये कि मैं विशुद्धता का उपासक हूँ, मैं विनम्रता का उपासक हूँ, मैं 'सत्यं सुन्दरं' का उपासक हूँ तो क्या होगा, मालूम है ? तो आपके भीतर दो व्यक्ति जियेंगे-एक प्रार्थना-मन्दिर में जाकर विनम्र होने वाला, सन्तों के सामने नम्र होने वाला, भजन सुनते ही रोने वाला (एक) व्यक्ति भीतर बैठेगा और दूसरा प्रार्थनागृह में से बाहर दूकान में, मकान में जीने वाला; क्रोधमय, विकारमय दूसरा व्यक्ति जियेगा। ऐसे छिन्न-भिन्न व्यक्तित्व आपके होंगे; फिर दोनों को साथ लेकर जीना है। जहाँ भक्ति से फ़ायदा मिलता है वहाँ भक्त बन गये और जहाँ अपने अहंकार का फ़ायदा होता है, नफ़ा होता है, मुनाफ़ा होता है, वहाँ जाकर फिर व्यापारी बन गये, नौकरी वाले बन गये। फिर झूठ बोले, फिर काला-बाज़ार, क्या जाने क्या-क्या किया ? भ्रष्टाचार किया, रिश्वतबाज़ी की। आपने देखा होगा न बड़े-बड़े सन्त-सेवकों को रिश्वतबाज़ी करते हुए ! देखा है कि नहीं ? नहीं देखा है तो आँख और कान खुले रखो।

महावीर के भक्तों को देखा है आपने ? शरीर को चलाने के लिये धनोपार्जन करना एक वस्तु है, और संग्रह की लालसा में परिग्रह को बढ़ते जाना बिल्कुल भिन्न वस्तु है। मन्दिर में आते ही महावीर के सामने बैठे, वीतराग के सामने बैठे तो वैराग्य की महिमा गाना, स्तोत्र गाना, स्तवन गाना। घर गये, परिग्रह कम है तो (यह चिन्ता करना कि) दस लाख के पचास कैसे होंगे, एक हजार के दस हजार कैसे होंगे ? यह चिन्ता नहीं है कि जीविका कमाते हुए, धनोपार्जन करते हुए सत्य की, अहिंसा की रक्षा कैसे होगी ? यह चिन्ता नहीं है-फिर कहते हैं यह तो सारी दुनिया करती है। पर आप करते हैं तो मेहरबानी करके भक्ति का रास्ता छोड़ दो न ? व्यक्तित्व छिन्न-भिन्न होता है, उसके बाद दम्भ आता है जी ! दुनिया का होता हो, न होता हो लेकिन आप का अपना बहुत बड़ा नुकसान होता है। व्यक्तित्व के जैसे टुकड़े-टुकड़े खण्डित अंश हैं उनको बटोर कर चलना पड़ता है। कपड़े के टुकड़ों को सीधा करके उनकी गुदड़ी

बनाते हैं न ! आप लोग ऐसा बनाने की कोशिश करते हैं । जीवन की सुन्दरता, एकता-सब नष्ट हो जाती है । यह नष्ट न हो, इसलिये सीखना है कि पूजागृह से उठते समय धूप-बत्ती ले कर तो आप दिन भर नहीं घूम सकते, लेकिन अपने भीतर दीपक लेकर घूम सकते हैं न ! उसमें घी भी नहीं डालना पड़ता और तेल भी नहीं डालना पड़ता । भीतर दीपक कौन-सा लेकर चलेंगे दिन भर ? सावधानता का, जागृति का कि-"मैं शरीर का मालिक हूँ", इस भावना से कितना व्यवहार होता है और "वह प्रभु की बनाई हुई दुनिया है, इसमें जितना मेरे हिस्से में आया है, उतना करूंगा", इस भावना से कितना व्यवहार होता है । आप देखेंगे, इतना इतना सिर से बोझा उतर जाता है ! बहुत बोझ लेकर घूमते हैं हम- आप-"मैं गृहस्थी चलाता हूं, मैं संस्था चलाता हूँ, मैं आश्रम चलाता हूँ, मैं इतने लोगों का मार्ग-दर्शक हूं, मैं नेतृत्व करता हूँ" और फिर अन्त में जाकर प्रार्थना करनी पड़ती है-

'म्हारा ज्ञान-गुमान नी गांसड़ी, उतरावो शिरेथी आज ।
म्हारा पुस्तक पोथानी पोटली, उतरावो शिरेथी आज ।'

[मेरे ज्ञान-गुमान की गठरी आज मेरे सिर पर से उतरवाओ । मेरे पुस्तक-पोथों की पोटली आज मेरे सिर पर से उतरवाओ ।]

फिर बोझ ले-ले कर आपका हृदय हाँफ ने लगता है ! तो शुरू में ही बोझ न रहे, यही तो भक्ति सिखाती है । बोझ उठाकर अन्त में जाकर रोने बैठने से अच्छा है न कि शुरू से ऐसी कला सीखी जाए कि बोझ न रहे ! और बोझ कब आता है, मालूम नहीं ? प्रेम हो तो बोझ होता ही नहीं । सात-आठ साल की लड़की पहाड़ पर चढ़ रही है । कोई मुसाफ़िर पूछता है-'तू तो इतनी छोटी-सी लड़की है, पीठ पर इतना बोझ क्यों ले लिया है ?' तो कहती है-'बोझ नहीं है, यह तो मेरा भाई है ।' बात बदल गई, भाई के शरीर में वज़न नहीं था ? वज़न था । लेकिन वह बोझ नहीं ढो रही थी, वह अपने भाई को साथ ले जा रही थी, जो चल नहीं सकता था उसे पीठ पर ले जा रही थी । कितना बड़ा फ़र्क है ? "यह बोझ नहीं है, यह मेरा भाई है ।" प्रेम ही सिखाता है । रामकृष्ण देव की पत्नी शारदा माता के पास चाहे जैसे लोग आते थे पापी से पापी ।-रामकृष्णदेव के देहावसान की बात है । शायद विवेकानन्द के भी देहावसान के बाद की घटना है । माँ के पास ऐसे ही कुछ लोग गये, तो माँ के भक्तों ने कहा-"माँ ये दुराचारी हैं, ये व्यसनी हैं, यह शराब पीता है और यह आप के पास आकर रहा ? अपने हाथ से रसोई

बनाकर आप खिलाती हैं ?" उन्होंने कहा-"मैं मा हूँ न ! दुराचारी होगा तो भी मेरा बेटा है न ? यहाँ न आएगा तो कहाँ जाएगा ?"

सामाजिक संस्था में काम करते हुए यदि आप की कोई सहयोगी बहन है, कोई काम करने वाली है, यह आपकी निन्दा करे, झूठ बोले और आप पर दिक्कत आए, तो आप कहेंगे ठीक है । झूठ बोली होगी, लेकिन मेरी बहन है । है क्रोधी, लेकिन बहन है । जिस प्रकार परिवार के सभी व्यक्तियों को प्रेम के कारण सम्हालने की शक्ति स्त्री में हैं, उसी प्रकार समाज में जितनी बुराइयाँ हैं, दोष हैं, उनका प्रेम से प्रतिकार करने की और उनको क्षमा करने की शक्ति-यह भक्तियोग स्त्री को दे सकता है । माँ अपने बच्चों का गुणगान करते हुए कभी नहीं थकती । रसोई बनायेगी अच्छी से अच्छी, तो स्वयं खाने में उतना आनन्द नहीं जितना पहले खिलाकर बाद में खाने में हैं । वह कहती है, आज इतनी सुन्दर रसोई बनी है कि सब खतम हो गई ! "ओहो ! आप क्या खाएंगी ।" "रात का बचा है, मैं खा लूंगी ।" लेकिन अच्छी रसोई बनाई है, पहले मैं ही खा लूं, ऐसा कोई माँ कहती है ? बस यह जो मेरा मन है, मेरा घर है, मेरी बनी हुई रसोई है, इसमें से अहंकार निकल जाए तो यही प्रेमयोग है, यही भक्तियोग है ।

आज की प्रार्थना में हमने देखने की कोशिश की कि भक्त के भगवान् कहाँ रहते हैं वे अणु-रेणु में, कण-कण में किस प्रकार ओत-प्रोत हैं । सृष्टि से अलग प्रभु नहीं हैं । सृष्टि प्रभु का ही स्वरूप है । लोग इससे अलग प्रभु को खोजने जाते हैं, इसलिये धोखे में पड़ जाते हैं । वृक्ष की हर पत्ती-पत्ती ही वह है । हर फूल में वह ? नहीं, फूल ही वह है, यह सीखना है । फूल में वह है यह कहने से कुछ mystic sense (रहस्य का भाव) आ जाता है न ?-पत्ती तो पत्ती है और प्रभु उससे अलग है, ऐसा नहीं । यह सारा संसार ही प्रभु है, यहाँ तक पहुंच सकते हैं ? एकता की अनुभूति में से पहुँचा जा सकता है । वह एकता की अनुभूति कैसे आए ? तो पहले एक मर्यादा में, एक सामा में जीवन की प्रभुता के, मङ्गलता के दर्शन करना और फिर वहाँ से अपने परिवार में, अपने गाँव में, अपने समाज में-इस प्रकार उस व्याप्ति को और गहराई को बढ़ाते जाना-इस प्रकार की भक्ति, भक्त और भगवान् के बारे में इस प्रभात में हमने सोचा है ।

(ख) प्रात:काल, द्वितीय-सभा दिनांक : ३०-१२-१९६७

पहले तो संस्कार शब्द का अर्थ समझना चाहिये और जीवन में उसका क्या प्रयोजन है, यह देखना चाहिये । आजकल भारत में और सारी दुनिया में दो विचारधाराएं चल पड़ी हैं । जीवन में विरोध का आभास होता है । एक संस्कारों के आग्रही लोग और एक संस्कारविहीन जीवन के आग्रही । प्रचण्ड विचारधाराएँ और भावधाराएँ संसार भर के मानव-समाज में तुमुल युद्ध कर रही हैं । बौद्धिक क्षेत्र में, वैचारिक क्षेत्र में, साहित्यिक क्षेत्र में, सांस्कृतिक क्षेत्र में, धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में एक तीव्र, उत्कट संघर्ष चल रहा हैं । जहाँ पर जीवन में खड़ी हूँ, वहाँ से देख रही हूँ कि दोनों के आग्रह व्यर्थ के हैं । यह जो शरीर मिला हुआ है, इस में जो इन्द्रियाँ हैं, कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय-इन इन्द्रियों को शतकानुशतक से विशिष्ट लींकों में चलने का अभ्यास हो गया है । जब आदि मानव ने जन्म लिया होगा, तब से आज तक शरीर को, मन को, और इन्द्रियों को कुछ लींको में, कुछ grooves में, कुछ channels में काम करने का अभ्यास हो गया है । Biological and Psychological patterns of behaviour-शारीरिक और मानसिक कार्य-पद्धतियाँ ऐसी दृढ़मूल हो गई हैं । चैतन्य में ये सब संस्कार पड़े हुए हैं जिन को लेकर हम इस जगत् में आते हैं । जब ये जो नमूने बने हैं, कार्य-पद्धतियाँ बनी हैं, ये प्राकृत हैं । इनको संस्कृत बनाना यही मानवता है । इसलिये उन कार्य-पद्धतियों में से शरीर को और मन को स्नेहपूर्वक, कुशलतापूर्वक बाहर निकालने का रास्ता है संस्कार । भूख लगी है तो जो देखो सो खाओ, यह हुआ प्राकृत धर्म । घास है या खेत में खड़ी फ़सल है । भूखी गाय है, भूखा बैल है, तो 'मेरे मालिक का खेत है या नहीं, यह सोच नहीं सकता' । खुला खेत है तो बैल जाएगा, फ़सल खाएगा । मानव भूखा है, तो प्राकृत धर्म है कि जहां भी अन्न देखे, खाये । संस्कार ने सिखाया कि भूख तेरे शरीर के साथ चिपका हुआ धर्म है, जन्म से मृत्यु तक जानेवाला । इसलिये भूख की निवृत्ति का उपाय पहले से कर लो । परिश्रम कर लो, अन्न कमा लो, सामग्री कमा लो,अन्न पर संस्कार कर के फिर भोजन करने के लिये बैठो और भोजन करते समय अपने से अधिक भूखा दिखा तो उसे खिला कर खाओ ।

मेरी समझ में नहीं आता कि इस संसार के बन्धन कहाँ से आया ? शरीर है, शरीर के लिये निद्रा भी है। तो जिस बिस्तर में सोते हैं, उसे स्वच्छ रखो, निर्मल रखो, पवित्र रखो। दिन भर के मैले-कुचैले कपड़े पहन कर, पसीने से भरे हुए कपड़े पहन कर मत सोओ। निद्रा क्या है ?-प्रभु के मन्दिर में प्रवेश है। इसलिये भाई, स्नान करके, कपड़े बदल कर सो जाओ। यह संसार है। जहाँ नींद आई, वहाँ लुढ़क गये यह प्राकृत धर्म है। प्रात:काल है, बाह्य मुहूर्त है, उस पर उठो। सृष्टि अभी पूरी तरह जागृत नहीं हुई। लोगों के विचारों और विकारों के स्पन्दन 'आसमन्त' में-चारों ओर भरे नहीं हैं। आसमन्त शान्त है, गम्भीर है। ऐसे समय पर बैठ कर 'मैं कौन हूँ' इसकी खोज करो। यह संस्कार है। अब माँ कहती है, शिक्षक कहता है, मेरी इच्छा नहीं है। प्रात:काल उठने का मर्म मैं समझा नहीं हूँ। ज़बर्दस्ती उठता हूँ, यह बन्धन है। लेकिन तन-मन की आवश्यकता और उसकी पूर्ति में सहयोग लेने की सुविधा-दोनों को देखकर यदि ब्राह्म मुहूर्तपर कोई उठता है, तो संस्कारी व्यक्ति है।

यौवन के साथ-साथ काम-विकारका प्रादुर्भाव प्राकृत धर्म है। हर बालक-बालिका में युवावस्था में विकार उठने वाले हैं। उनके तूफ़ान उठेंगे, आँधियाँ आएँगी। उन आँधियों में और तूफ़ानों में पाँव कहीं उखड़ न जाएँ, इसलिये विवाह में उस काम-विकार को एक व्यक्ति के साथ प्रेमसम्बन्ध से बाँध देना संस्कार है। यह आज के शिक्षण में है ही नहीं विवाह-बन्धन प्रेम का बन्धन है, असल में वह बाँधता नहीं है, वह तो कामविकार से मुक्ति देनेवाला संयुक्त जीवन है। प्राकृतिक विकार का प्रादुर्भाव तो है ही, उसे संस्कृत पद्धति से जीवन में किस प्रकार चरितार्थ करें ?-इसलिए ब्रह्मचर्याश्रम था, गृहस्थाश्रम था यह व्यवस्था जो थी, चार आश्रमों की, इस में जितनी रसिकता थी, उतनी रसिकता आज तक किसी व्यवस्था में मुझे दिखाई नहीं दी।

संक्षेप में मैंने, संस्कार का अर्थ क्या हैं, आशय क्या है, और संस्कारों की आवश्यकता क्या हैं,-यह बतलाया। पृथ्वी इतनी विशाल है-विविध प्रकार की यहाँ आबोहवा रहती है, हवामान रहता है। कहीं उष्ण है, कहीं शीत है। कहीं कृषिप्रधान देश है, कहीं उद्योगप्रधान है। कहीं यन्त्रों के सहारे जीते हैं, कहीं मनुष्य-बल इतना अपरिमितहै कि यन्त्रों की आवश्यकता नहीं, अनिवार्यता नहीं। फिर हवामान के फेर से, सामाजिक परिस्थिति और आर्थिक परिस्थिति के फेर से संस्कार बदल जाते हैं। भारतवर्ष में तीन-चार बजे उठनेवाला व्यक्ति यूरोप, अमेरिका में जाकर छ: सात बजे

उठे, इस में कोई अस्वाभाविक बात नहीं है, लेकिन वहाँ से लौटने पर यहाँ भी आठ बजे उठनेका आग्रह रखता है तो वह वहाँ की आदत का गुलाम है। यहाँ उसका प्रयोजन नहीं है।

तो संस्कार बन्धन कब बन जाता है? जब उसकी सापेक्षता का भाव हम भूल जाते हैं। संस्कार समाज में गुलामी कब पैदा करता है? सम्प्रदाय कब पैदा करता है? जिस संस्कारों में मैं पला हूँ वही संस्कार सार्वभौम (universal) होने चाहिये, अखिल मानव-जाति को उन्हीं को प्रमाण मानना चाहिए-यह आग्रह जब पैदा होता है, तब सम्प्रदाय जन्म लेते हैं। सम्प्रदायों के अहंकार फिर टक्कर लेते हैं। एक-दूसरे से संघर्ष होते हैं, लड़ाईयाँ होती हैं। धर्म के नाम पर जितने युद्ध हुए वे ऐसे ही हुए। तो, यह ध्यान में रखने की चीज़ है कि शिक्षणके द्वारा संस्कार-सिंचन करते हुए संस्कारों की सापेक्षता भी साथ ही साथ सिखाई जाए ताकि अपने संस्कारों का अहंकार किसी को न हो; उन का आग्रह बुद्धि में और अहंकार चित्त में न हो। तब दूसरे के भिन्न संस्कार दिखने पर, वे संस्कार क्यों इस प्रकार के हैं, यह समझने की जिज्ञासा, कुतूहली नम्रवृत्ति पैदा होगी। भाई जीवन में बन्धन कभी बाहर है ही नहीं। बन्धन सब भीतर है। लोग बाहर से काटने जाते हैं, इसलिये भीतर जकड़े जाते हैं और भीतर से स्वयं को जकड़ने वाला जो व्यक्ति है उसको मुक्त कोई नहीं बना सकता। हाथ-पाँव की बेड़ियाँ काटी जा सकती हैं, मन की बेड़ी कौन काटेगा? वह तो मन की ही निर्मित है। जिस व्यक्ति का मन है, उसी को यह काम करना पड़ता है। इस विषय को यहीं समेट लेना होगा।

स्त्री-शिक्षण के बारे में कुछ चर्चा हुई। उसमें अधिष्ठान यह होना चाहिये कि स्त्री और पुरुष दोनों मानव हैं। स्त्रीत्व और पुरुषत्व के भीतर से मानवता का जो प्रवाह बहता है, वही जीवन का अधिष्ठान है। यह कन्याओं को सिखाना पड़ेगा। हम मानव हैं, हम मनुष्य हैं। यह मानवता का अधिष्ठान कन्याओंके जीवन में अवश्य होना चाहिये। उसका परिणाम क्या होगा? आज भी हिन्दुस्तान में लाखों करोड़ों देहातों में लड़कियाँ, महिलाएँ यही समझाती हैं कि हम पुरुषों से कुछ-कुछ कम हैं। धर्म ने यही सिखाया कि पुरुष-शरीर में प्रवेश किये बिना स्त्री-जन्म में तो मुक्ति है ही नहीं; इन जन्म में अच्छी तरह रहो, तब अगले जन्म में पुरुषदेह मिलेगी, फिर मुक्ति होगी।

कल मैंने निवेदन किया कि ब्रह्मचर्य और संन्यास इन दो शब्दों की व्याख्या और आशय जब तक हम अपने पुरुषार्थ से नहीं बदलेंगे, तब तक स्त्री-पुरुष का सहजीवन असम्भव है। तो, दूसरी बात कन्याओं को सिखानी पड़ेगी कि कन्या का जन्म होना कोई पाप नहीं, कोई अपराध नहीं, कोई गुनाह नहीं। वह काया उतनी ही पवित्र है, जितनी कि पुरुष की है, तो फिर निर्भयता आएगी। आज भय-ग्रन्थि है, स्त्री भयग्रस्त है। पढ़ी-लिखी लड़कियाँ भी शहरों में कही मुक्तता से संचार नहीं कर सकतीं। गुंडो की तकलीफ़ है, आवारागर्दी करने वाले लड़कों की तकलीफ़ है। लेकिन कहीं अहमदाबाद में, बम्बई में, बडोदा-भावनगर-राजकोट में पढने वाली लड़कियाँ या समाज-सेवा करने वाली स्त्रियाँ यह नहीं सोचती हैं कि कॉलेज से छूटने के समय या सिनेमागृह पर शनि-रविवार को हमारी स्वयंसेविका जाकर खड़ी होंगी और देखेंगी कि कौन गुंडागर्दी करता है ? मैं संकेत बतला रही हूँ, यह बारह महीने का कार्यक्रम नहीं है, लेकिन ज़रा दो-चार शहरों में इस प्रकारसे निर्भयता का व्यवहार देख लेंगे तो आज के जो प्लास्टिक के नौजवान हैं, उनकी अक्ल ठिकाने आ जाएगी। ज्यादा कुछ करने की जरुरत ही नहीं। जब वे बहनों की आँखों में प्रहरी बैठे हुए देखेगें तो हिम्मत नहीं पड़ेगी। लेकिन हम डर जाते हैं; भय के कारण लड़कियाँ सह लेती हैं। निर्भयता की शिक्षा देने की नितान्त आवश्यकता है।

तीसरी चीज़। स्त्री के जीवन में प्रसाधन का, शृङ्गार का स्थान आवश्यक है। मैंने कल कहा था-नारी क्या है ?-प्रभु का लिखा हुआ एक छन्द है, जिसका अर्थ कोई समझ नहीं पाया। उसमें जो काव्य है, उसका हमे परिचय है। लेकिन यह भान रहे, यह याद रहे विद्यार्थी जीवन कोई प्रसाधन और शृङ्गार का समय नहीं है। यह तो विद्या प्राप्त करने का समय है। शृङ्गार और प्रसाधन उसके लिये किया जाये जो आपका जीवन-साथी बने, तो उसमें romance (रोमान्स) है, उसमें adventure (नवीनता) है, उसमें मधुरता है-उसमें काव्य है। लेकिन गली-गली में लैला-मजनू बनकर घूमने में न तो स्त्री का जीवन सुरक्षित है और न ही पुरुष का। तो, स्त्री-संस्थाओं को-समाज सेवा करने वाली और स्त्री-शिक्षण-संस्थाओं को इस बारे में कोई-न-कोई ठोस शिक्षा देनी चाहिए, इस पर ज़ोर देना चाहिए छात्राओं को, कि जरूर प्रसाधन-शृङ्गार करो, लेकिन जब तुम्हारा समय आए तब, आज नहीं। लेकिन आज तो किसी भी बड़े शहर में चले जाइए-लड़के-लड़कियों की पोशाकें देखकर शर्म से मेरी आँखे झुक जाती हैं।

उनमें न स्वास्थ्य की दृष्टि है, न सौन्दर्य है । ऐसा भद्दापन, ऐसी बेहूदगी, ऐसी अरसिकता-और जीवन का जिस समय जो प्रयोजन है, उसके ठीक विपरीत, ठीक विरोधी वेशभूषा है, इसका दु:ख है । जिस समय जिस प्रकार की वेशभूषा, वाणी, कटाक्ष, दृष्टिपात-इनकी आवश्यकता हो, उस समय उसका उपयोग (आप) नहीं करेंगी । गुंडों, आवारा लोगों से यदि तकलीफ़ हो तो दोष कम से कम ७५% लड़कियों का है । मैं सौ फ़ीसद कह सकती हूँ, लेकिन दया करके २५% छोड़ दिया । इसमें किसका अपमान है ? जिस पुरुष के साथ, लड़के साथ, युवक के साथ विवाह नहीं करना है, सभी युवकों और पुरुषों के सामने सजधज कर निकलने में आत्मसम्मान को धक्का क्यों नहीं लगता ? विवाहपूर्व जीवन में इस प्रकार का उच्छृंखल व्यवहार करने से विवाह करने के बाद पति-पत्नी के जीवन में जो काव्य होना चाहिए, संगीत होना चाहिए, वह आता नहीं है । स्रोत सूख जाता है ।

चौथी बात । स्त्री और पुरुष का संयुक्त जीवन है-गृहस्थाश्रम । सौ में से निन्यानबे, ९९% लड़के-लड़कियाँ गृहस्थाश्रम में जाएँगे । आप लोगों ने इसके बहुत गुन गाये । अपना ही गौरव गाया, ठीक है-ग्रन्थों में पढ़ने के लिए और ऐसे शिबिरों में सुनने के लिए । लेकिन आप प्रामाणिकता से विचार कीजिये । अपने घरों में आपकी माताएँ, आपकी बहनें, मौसी, नानी, दादी-आप खुद-कितने समय मार्दव की मूर्ति बनकर रहती है? मृदुता की, नम्रता की, मधुरता की मूर्तियाँ बनकर कब तक आप रहती हैं ? प्रयोजन हो, तब मधुर वाणी निकलती है । स्त्री को पति से गहना चाहिए, नई साड़ी चाहिए, तब तो वाणी में अमी बरसता है । पड़ोसिन से कुछ मतलब साधना है, दो घण्टे बच्चे को उसके पास रखना है, तो आपके जैसी नम्र कोई नहीं । प्रयोजन न रहे और जहाँ आभास हो अपमान का, क्रोध आ जाए; फिर देखिये उस अभी बरसाने वाली वाणी में से क्रोध की ज्वाला निकलती हैं । जिसमें लड़के बच्चे तो क्या, उसके पति हों तो वे भी झुलस निकलते हैं । ज्वाला ऐसी प्रज्वलित होती है कि उस बेचारे का खाना हराम हो जाए; लगने लगे उसको कि घर छोड़कर भाग जाउँ दो-चार घण्टों के लिए ।

और, सन्देह, संशय करना-यह भारतीय स्त्री के जीवन का सब से बड़ा अभिशाप है । लिखती-पढ़ती हैं लडकियाँ, लिखते-पढ़ते हैं लड़के । लिखी-पढ़ी बहू चाहिये । प्रेम भी हो जाता है और प्रेमविवाह भी हो जाता है । उसके बाद, पति यदि दूसरी

लड़की से पांच मिनट बोला, तो पत्नी को गुस्सा है कि पता हीं कैसे बोला और, पत्नी, यदि कॉलेज के किसी सहपाठी से हँसकर बात करे तो पति के क्रोध की आग का कोई ठिकाना नहीं है, पाँवसे सिर तक वह जल उठता है। इसलिये कल कहा था कि प्रेम करना-यह कमज़ोरों का खेल नहीं है। अपने प्रेम पर जिनका विश्वास नहीं, श्रद्धा नहीं, वही अपने साथी की जीवन-चर्या पर शक कर सकते हैं-वह पति हो या पत्नी हो। अपने प्यार पर जिसकी श्रद्धा है-ऐसा पति पत्नी पर सन्देह जल्दी नहीं करेगा। लेकिन आजकल तो भाई, सन्देह के पुतले हैं। मैं कहना यह चाहती हूँ, कि यदि आप लोगों ने कहा कि स्त्री प्रेम की मूर्ति है, तो वह अपने प्रेम पर श्रद्धा रखना सीखे। घड़ी-घड़ी में सन्देह है, उसको क्रोध है, घड़ी-घड़ी में ईर्ष्या है, इस प्रकार का तो जीवन है। इस जीवन से वह मुक्ति पाये।

पाँचवां मुद्दा। जिस लड़की को मैट्रिक तक भी पढ़ने का मौक़ा मिलता है, उसे एक व्रत लेना चाहिए। जान-बूझकर 'व्रत' शब्द का प्रयोग कर रही हूँ। जिसका हम स्वयं-प्रेरणा से और इच्छा से वरण करते हैं, वह व्रत है। जो परम्परागत आचार है, यह व्रत नहीं है, वे रूढ़ियाँ हैं। समझ-बूझकर सभान और सजग होकर जिसका वरण किया जाता है, वह व्रत है। क्या व्रत लेना चाहिए ?-कि मैं शिक्षण पूरा होनेके बाद कम-से-कम एक वर्ष किसी गाँव में जाकर बैठूंगी। मैं तो चाहूँगी कि सरकार ही ऐसे नियम करे। लड़कियों के लिए स्कॉलरशिप दे, उन्हें सुविधा दे, क्योंकि कन्याओं के शिक्षण में हम बहुत पिछड़े हुए हैं अभी तक। तो, व्रत यह लेना है कि एक साल गांव में जाकर बैठेंगे। दो लड़कियों, तीन लड़कियों का एक छोटा समूह बैठा दीजिये। तो एक साल में क्या सिखायेंगी ? स्त्रियों को यह सिखायेंगी कि शारीरिक स्वच्छता कैसे रखी जाय ? Adult education (प्रौढ़ शिक्षण) का काम करें। मैं तो चाहती हूँ कि ऐसा नियम यदि सरकार नहीं कर सकती है तो शिक्षण-संस्थाएँ यह नियम बनाएं कि हमारी संस्था में प्रवेश उन कन्याओं को मिलेगा जो गर्मी की छुट्टियों में आधा समय किसी-न-किसी गाँव में जाकर (जहाँ भी हम भेजें वहाँ) काम करने के लिये तैय्यार होंगी। तो, शिक्षण-संस्थाओं को चाहिये कि यदि सौ छात्राएँ हैं तो कम-से-कम २० गाँव उन्हें लेने चाहिये और वहाँ पांच-पाँच कन्याओं का एक दल भेजना चाहिये। सिर्फ़ दल भेजना ही नहीं, वहाँ जाकर व्यवस्था कर देनी चाहिये; दो महीने छुट्टी है तो एक महिना वे कन्याएँ गाँव

में जाकर रह सकें, ऐसी व्यवस्था कर देनी चाहिये, गाँव वालों से परिचय करा देना चाहिए। कुछ काम First aid (प्राथमिक चिकित्सा) का रहेगा, कुछ शिशु-विहार का काम वे चला सकेंगी।

छठी बात। घर-घर में शोषण के द्वार, रिश्वतखोरी के, भ्रष्टाचार के द्वार बन्द करने के लिए भी स्त्री को प्रयत्न करना चाहिये। जब स्वमान जागृत रखने वाली पत्नी पर घर में पति से कहेगी कि अन्याय से लाया हुआ धन मैं घर में उपयोग में नहीं लाऊँगी, पाप से कमाया हुआ आहार और अन्न-वस्त्र मैं बच्चों के उपयोग में नहीं लाऊँगी तो भ्रष्टाचार का, शोषण का प्रतिकार करने में वह ज़रूर मदद कर सकेगी।

प्रश्न : दर्शन के बाद भी मनुष्य गिरता क्यों है ? दर्शन में और मोक्ष में क्या फ़र्क है ? मोक्ष होने का भ्रम यदि किसी को हो तो इस भ्रम से कैसे बच सकते हैं ? और मोक्ष है क्या ? साधना किस प्रकार की जा सकती है ?

उत्तर : जैसे शब्द प्रश्न में रखे गये हैं, उन पर से 'दर्शन' शब्द का अर्थ लेना होगा सगुण दर्शन, साकार दर्शन। तो, सगुण दर्शन होने के बाद मनुष्य यदि गिरते हुए दिखाई देता है तो क्यों गिरता है ? बात ऐसी है कि हमारे अध्यात्म का हमारे समग्र जीवन के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, कोई अनुबन्ध नहीं है। सगुण मूर्ति की उपासना की; उसी का चिन्तन, उसी का मनन, उसी का निदिध्यासन हुआ। आँख मूंदने पर या खोलने पर उसीके दर्शन भी होने लगे। उत्कटता अत्यन्त बढ़ गई और चेतना की गहराई तक जा कर उसके तल को भी छू गई, तो जिस सगुण रूप का ध्यान करते हैं, वह मूर्ति पवन और अग्नि-दो तत्त्वों का उपयोग करके सघन बनकर सामने भी आती है; लेकिन पूजन करते समय या भजन करते समय जिस गहराई में मनुष्य रहता है, उस उत्कटता के साथ जीवन के सभी व्यवहार वह नहीं करता। पूजा करते समय गहराई में उतरना और पूजा समाप्त होने के बाद पूजा-घर से बाहर निकले कि चेतना के ऊपर के स्तर पर आकार बहने लगना-तो सगुण दर्शनके बाद भी आप किसी में यदि पाते हों कि उसके सम्पूर्ण चरित्र का, उसके व्यक्तित्व की समग्रता का उत्थान नहीं हुआ है, जो उसका एक ही अर्थ समझिएगा कि उसकी साधना एकांगी है, समग्रता में नहीं है। मोक्ष है समग्र व्यक्तित्व का उत्थान, मोक्ष है अहंकार का निर्मूल होना, मोक्ष है जीवन की प्रकृतियों में से 'अहं' नाम के केन्द्र का नि:शेष हो जाना, नष्ट हो जाना। इन दोनों में अन्तर

है । यह ज़रूरी नहीं कि जो सगुण साक्षात्कार पाते हैं, उनके दर्शनों का सम्बन्ध उनके समग्र जीवन के साथ हो । आशा करती हूँ कि यह आप समझ रहे हैं ।

मान लें कि बालकृष्ण की उपासना (आप) कर रहे हैं, पूजा में बैठे हैं । लड़की ने या लड़के ने फूल चुन कर ठीक से नहीं रखे, वहीं पूजाघर में बैठे-बैठे क्रोध आता है - "अरे ! अच्छे नहीं हैं । यह ऐसा ही करता है ।" उस क्रोध को आप शब्द का रूप दे या न दें, लेकिन गुस्से में भर-भर कर वे फूल (आप) चढ़ाते हैं भगवान् के ऊपर । कृष्ण की मूर्ति की पूजा की । बाहर निकले, बच्चों को चाँटें लगाये । उस कृष्ण के दर्शनों के साथ घर में खेलनेवाले कृष्ण का कोई सम्बन्ध नहीं । 'प्रभु तुम सर्वव्यापी हो' मन्दिर में बैठकर ऐसा कहने वाले बाहर निकलते ही प्रभु को मन्दिर में बन्द करके रखते हैं । इस देश में आध्यात्मिक सत्ता अलग और व्यवहार की सत्ता अलग-इस प्रकार जीवन को दो सत्ताओं में बाँट दिया गया है । तो, कहते हैं कि एकता, वेदान्त, अद्वैत, उपासना प्रेम-सब कुछ अध्यात्म के लिये सुरक्षित रखो और व्यवहार में पैसा कमाना हो तो झूठ बोलना पड़ेगा, चोरी करनी पड़ेगी, समाज में रहना तो चतुराई से रहना, किसी पर विश्वास नहीं रखना । कहना यह चाहती हूँ कि व्यवहार की सत्ता के लिये जीवनमूल्यों की एक शृंखला और अध्यात्म के लिये जीवन-मूल्यों की दूसरी शृंखला-ऐसा जीवन को बाँट दिया गया है ।

इसलिये कोई आश्चर्य नहीं कि सगुण दर्शन की बात करने वाले, अनुभव करने वाले, जिनमें अतीन्द्रिय शक्तियों का विकास हुआ है, यहाँ बैठे-बैठे आपका विचार बदला देंगे, हवा में से चीज़े लाकर आपके सामने हाज़िर कर देंगे, हाथ में से कुंकुम, भस्म सभी कुछ गिरायेंगे, हो सकता है कि उनकी जीवन-समग्रता में देखने जाइएगा तो आप न सत्य पाएंगे, न प्रेम पाएंगे, न और कुछ । और मोक्ष है चेतना का समग्रता में उत्थान । कल कहा गया था कि जीवन की गति ऊर्ध्व है ? तो, सम्पूर्ण जीवन का उत्थान ही मोक्ष है । अहंकार के केन्द्र में से सम्पूर्ण जीवन का उठना, ऊपर होना-यही मोक्ष है, यही मुक्ति है । मुक्ति का घर-बार छोड़ने से पति को, पत्नी को, पुत्र को छोड़ ने से कोई सम्बन्ध नहीं है । बस, मोक्ष का सम्बन्ध है समग्रता में प्रतिष्ठित होने से; 'मैं देह हूँ', इस भ्रम में जबतक रहेंगे, 'मैं मन हूँ' इस भ्रम में जबतक रहेंगे, तब तक मुक्ति नहीं हो सकती । तब तक तनकी और मन की गुलामी में ही जिन्दगी कटेगी । फिर यह मन जो है-सुबह

उठकर एक वस्तु के दर्शन किये, (इस मन में) एक प्रतिक्रिया उठी । कोई व्यक्ति सामने आया, उसके कुछ व्यवहार किया दूसरी प्रतिक्रिया उठी । कभी वासना उठी, कभी विकार उठे और फिर उनकी तानाशाही और हुक्मशाही में हम चलते रहें, यह बन्धन है ।

और, पता चले कि यह क्रोध उठ रहा है, यह द्वेष उठ रहा है, यह लोभ उठ रहा है, यह महत्त्वाकांक्षा उठ रही है, तो महत्त्वाकांक्षा, लोभ या क्रोध का अवसर देने वाली परिस्थिति को भी देखेंगे और लोभ को, क्रोध को, मोह को भी देखेंगे । एक साथ दोनों को देखेंगे । अपने क्रोध को, अपने विचार को, अपने विकार को देखने का साक्षित्व जिस दिन प्राप्त कर लेंगे उस दिन बाह्य परिस्थिति और आन्तरिक प्रतिक्रिया-दोनों से हम एक साथ दूर हट जाएंगे । तो फिर प्रतिक्रियाएं उठेंगी, जैसे सागर में मौजें उठती है, नदी में लहरें उठती हैं; और उन पर सवार हो कर हम निकल जायेंगे, उनके नीचे दबेंगे नहीं ।

लोग समझते हैं कि जो मुक्त हो गया उसमें तो कोई परिणाम नहीं होता । जो स्थितप्रज्ञ है, उस पर सुख-दु:ख का कोई परिणाम नहीं होता । भावनाओं की संवेदनशीलता की बधिरता का नाम स्थितप्रज्ञता नहीं है, बल्कि सारे विश्व का दु:ख मेरा दु:ख बन जाता है, सारे विश्वके अभाव और त्रुटियाँ मेरी त्रुटियाँ बन जाती हैं । इसका नाम मोक्ष है । पूछा गया है कि इस अवस्था का वर्णन करो । अरे भाई, वर्णन करते हैं; लेकिन मन की मदद से । वर्णन हो सकता है-शब्दों से न ! और शब्दों से वर्णन करने के लिये मन का वहाँ उपस्थित होना आवश्यक है । और जिस अवस्था को आप मुक्ति या मोक्ष कहते हैं, उस अवस्था में मन में बैठा नहीं जाता । अभी तो हम मन में बैठे हैं न ! हमें अच्छा लगना, बुरा लगना, प्रिय लगना, अप्रिय लगना, मान-अपमान होता है-हम सि मन के झूले पर बैठे हैं । कभी झूला इस तरफ़ कभी झूला उस तरफ़ । उससे नीचे उतरते नहीं । मन के झूले से एक साथ नीचे उतर जाना, सुख आये, दु:ख आये, मान हो, अपमान हो; शीत हो उष्ण हो; सफलता हो असफलता हो-इन सब के बीच में से बादशाह की शान से गुजरते जाना मुक्ति है । टाल नहीं सकते सुख और दु:ख को, टाल नहीं सकते मान-अपमान को; सारे समाज का नियंत्रण आप नहीं कर सकते है । (स्वयं को मुक्त कर सकते हैं ।) मुक्तावस्था का वर्णन कैसे करें ? वहाँ तो मन की क्रियाएँ शान्त हो जाती हैं; मन की क्रियाएँ यानी जिसे आप स्मृति कहते हैं, भूतकाल की याद कहते हैं, आकांक्षा कहते हैं, भविष्य के सपने सुख की आसक्ति

या दु:ख से उद्वेग-ये सब जो मन के खेल हैं, वहाँ चलते नहीं हैं-मन अपनी समग्रता में स्वयमेव शान्त हो जाता है। वहाँ मुक्तावस्था है। अब ऐसी मुक्तावस्था का, आप कहते हैं शब्दों से वर्णन करो। वहाँ वाणी पहुँचे तब तो वर्णन करूं न! वहाँ शब्दों का प्रवेश हो तब तो वर्णन करूं! शब्द हमेशा, जहाँ द्वैत है, वहीं पर प्रवेश कर सकते हैं; जहाँ द्वैत नहीं, वहाँ शब्द का प्रवेश नहीं हो सकता। इतनाही कह सकती हूँकि मुक्तावस्था में जो व्यक्ति रहता होगा, उसका व्यवहार मन की भूमिका पर से होता नहीं है। ऐसा नहीं है कि वह मन का उपयोग नहीं कर सकता। उसका मन बधिर नहीं हुआ है, मूर्छित नहीं है। आप लोगों से भी तीव्र संवेदनशीलता उसमें हैं, अधिक जागरूकता है, अधिक उत्कटता है, लेकिन मन की भूमिका में वह बैठा नहीं रहता। जब कोई परिस्थिति सामने आई और वाणी के द्वारा, मन के द्वारा उसका प्रतिसाद देना होता है, तो भले ही मौन में से उठकर वाणी की दहलीज पर आकर, दरवाजे पर आकर खड़ा हो जाये और चार शब्द कह कर वापस चला जाये अपने मौन से। तो भाई, मुक्तावस्था मौनावस्था है।

और मौनावस्था क्या है? बाह्य शारीरिक-व्यापार का संवरण मौन नहीं है। वाग्-व्यापार का संवरण भी मौन नहीं है। मौन है चित्त की ऐसी नि:स्पन्द अवस्था जहाँ किसी प्रकार की वृत्ति, किसी प्रकार का तरंग नहीं उठता। और यह कब होगा? यह कैसे होगा? इसकी साधना कैसे होगी? यह समझने से कि जन्म में और मृत्यु में बहुत ज्यादा अन्तर नहीं है। आपकी छाया से भी अधिक निकट मृत्यु है। जन्म से हाथ मिला कर, कदम में कदम मिलाकर मृत्यु चलती है। यह जिसको मालूम है, वह शरीर रहते हुए भी शरीर से बंधा हुआ नहीं रहता।

''इसकी साधना कैसे?''-बड़ा अच्छा सवाल पूछा है। आशा करती हूँ कि उन्होंने पूछा है, वे सचमुच इसके बारे में कुछ करना चाहते हैं, सिर्फ सुनना नहीं चाहते। सुनने की आदत हो जाये तो सत्संग-सभाओं में जाया करेंगे; एक के उत्तर की दूसरे के उत्तर से जाँच-पड़ताल करके देखेंगे। अपनी बुद्धि में और स्मृति में उत्तरों को भर लेंगे, लेकिन करेंगे कुछ नहीं। सुनने की आदत हो जाती है तो सुनने का नशा होता है। और विचारों के नशे में से, आपने जिस भ्रम का उल्लेख किया है, वह भ्रम पैदा होता है (मोक्ष होने का भ्रम)। आशा करती हूं कि कुछ करने वाले ने यह सवाल पूछा होगा। भाई, शुरू ऐसे करते हैं कि प्रत्येक व्यापार, प्रत्येक व्यवहार के बारे

में-शारीरिक व्यवहार को मैं शारीरिक व्यापार कहती हूँ, वाणी के व्यवहार को वाग्व्यापार कहती हूँ-तो प्रत्येक कर्म के लिये सावधान रहने का प्रयत्न होगा। मैं यह व्यवहार क्यों कर रहा हूँ? इसका प्रयोजन क्या है? बोल रहा हूँ, इसका कुछ प्रयोजन है या कुछ लोगों से छिपाने के लिये बोल रहा हूँ? एकदम 'वाचा' रुक जाएगी। अनावश्यक शब्दों की जो आतिशबाज़ी है, और यह वाणी का दुरुपयोग है, वह शान्त हो जाएगा एकदम। बिना मौन लिए मौन विकसित होगा क्योंकि वाणी जहाँ अनिवार्य है, उसका उपयोग जहाँ अनिवार्य है वही आप बोलेंगे। शरीर को हिलाना-डुलाना जहाँ आवश्यक हो वहीं आप हिलाएँगे-डुलाएँगे, नहीं तो शरीर को स्थिर रखेंगे।

तो, पहला सोपान है, पहला चरण है, अखण्ड अहर्निश जागरूकता। दूसरा सोपान है शरीर की स्वस्थता की ओर ध्यान देना-आहार, विहार, निद्रा-सब सावधान रहते हुए करना। मुक्ति खेल नहीं है। मौन या ध्यान खेल नहीं है। कमज़ोरों का वहाँ कोई काम नहीं, गुज़ारा नहीं। कमज़ोर व्यक्ति यदि ध्यान करने बैठेगा या जप करने बैठेगा, तो घण्टें, डेढ़ घण्टें के ध्यान में ही कुछ नाद सुनाई देंगे और प्रकाश दिखेगा तो घबड़ा कर या तो उससे पागल, विक्षिप्त हो जाएगा और या व्यवहार करने की अपनी क्षमता खो बैठेगा। ध्यान और मौन की साधनाकरने के लिए फ़ौलाद का शरीर चाहिए; ज्ञान-तन्तुओं में फ़ौलाद जैसी ताक़त चाहिए और बुद्धि में तलवार जैसी धार चाहिए। ध्यान करना समर्थों का काम है, निर्बलों का नहीं।

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"-यह बलहीनों का काम नहीं। आप देखते हैं न! जाकर मन्दिर में बैठते हैं, कुछ थोड़ा-सा भजन सुना, कम्प आता है, स्वेद आता है, बेहोश हो जाते हैं। अरे! इतनी-इतनी अनुभूतियों में बेहोश होने वालो! आगे कैसे बढ़ोगे? थोड़ा-सा कुछ नाम-जप किया और इसके जो स्पन्दन हैं, उन्हें भी धारण नहीं कर सके; उसी में बेहोश हो गये, उसी में चक्कर आया, उसी में खा नहीं सकते, पी नहीं सकते, काम नहीं कर सकते-फिर लोग कहते हैं यह पागल हो गया है। इसलिये कहती हूँ कि शरीर की स्वस्थता आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। ऐसा होने पर जिस व्यक्ति में यह जिज्ञासा हो कि मन के परे जो अस्तित्व है, जो मुक्तावस्था है, उसको हम देखें,-उस व्यक्ति के लिये यह कह रही हूँ कि चौबीस घण्टें में से एकाध घण्टा ऐसा निकालें कि शान्त चित्त से मकान के किसी कोने में, आँगन में, खेत में बैठ सकें, आँखे खूली रखकर या बन्द रखकर जैसा चाहें-मेरुदण्ड सीधा रखकर

खड़े रहो, या बैठे रहो, इससे कोइ मतलब नहीं, लेकिन मेरुदण्ड सीधा रहे, गर्दन सीधी रहे; फिर ज़रा देखो खेल कि मन में कौन-कौन से विचार उठते हैं, कैसे उठते हैं। सुशिक्षित हो तो डायरी रखना शुरू कर दो कि भाई! आज बैठा था दस मिनट, दस मिनट में पचास बार मन दौड़ा। किस विषय पर दौड़ा? कितनी बार एक विषय पर गया? कितनी देर उस पर रहा?

मन देखेगा कि मैं तो आया हूं दौड़-दौड़कर, लेकिन यह व्यक्ति तो मुझ पर गुस्सा भी नहीं करता, रोकता भी नहीं, यह भी नहीं कहता है कि यह पापी विचार है, यह भी नहीं कहता कि यह सुन्दर विचार है। प्रशंसा भी नहीं निन्दा भी नहीं। निषेध नहीं, यह हो क्या गया इसे? मन पचास बार दौड़कर आया। बस, उसके साथ जाना, जहां भी जा रहा है। यहां बैठे हैं, शिबिर में, घर की याद आ रही है। जाने दो, उसके साथ उँगली पकड़ कर घर तक जाओ। 'देख ले, भाई। क्या देखना है घर में।' वह कहता है-कुछ नहीं, बस आ गया, हो गया; बस चल वापस।' वापस आया। उससे यह न कहो कि क्यों दौड़ गये? तूने ऐसा क्यों किया? मेरा मन होकर पापी विचार करता है? शिबिर में बैठा हुआ सिनेमा का विचार करता है? ये सब निषेध अहंकार में से पैदा होता है। आत्मनिषेध, आत्मग्लानि और आत्मविषाद-ये अहंकार के रूप हैं। इनमें से किसी में पवित्रता नहीं। तो, विचार के साथ गये, विचार के साथ वापस आये।

अब दूसरे दिन बैठे हैं। मन ने फिर दौड़ना शुरू किया। इस विचार के पीछे, उस विचार के पीछे। यहां, वहां-वह तो बिना टिकट पृथ्वी परिक्रमा एक पल भर में कर के आता है। रोक न टोक उसको। दूसरे दिन देखा, तीसरे दिन देखा। जब रोक-टोक बन्द हो गई तो मन का दौड़ने का आधा मज़ा तो खत्म हो गया। अब दौड़कर आगे जाए कहां? कहां जाए दौड़कर! जब तक हम रोकते हैं तभी तक मन की दौड़ने की आदत चलती है। मन को हमारा रोकना ही उसे दौड़ने की गति देता है। The momentum for running away दौड़ने की जो गति है, वह हम ही उसमें भरते हैं। हमारा निषेध उसको गति देता है। जब आसक्ति भी नहीं है, निषेध भी नहीं है, तो मन जायेगा कहां? क्योंकि निर्विचार अवस्था आत्मा का स्वभाव है।

दो दिन चार दिन करके देखो। यह तो प्रयोग का शास्त्र है, वाणी का व्यापार नहीं है। यहां उधार बातें नहीं चलेंगी और दूसरों की उधार अनुभूतियों के वर्णन से

कम्पित होना और हर्षित होना यहाँ काम नहीं देगा। उधार की पूँजी कितने दिन चलेगी ? और कल्पना पर, उधारी पर आत्मा की पुष्टि नहीं होती। इसलिये कह रही हूँ कि प्रयोग करके देखो।

फिर मन का दौड़ना स्वयमेव शान्त होता है और इस प्रकार मन के शान्त होने पर उसे कुछ देखने को नहीं मिलता, विचार देखने को नहीं मिलते, विकार देखने को नहीं मिलते। कुछ उठता नहीं है तो मन को लगता है ओहो ! चारों तरफ़ अन्धकार है। और लोग कहते हैं-'हम तो बैठ गये ध्यान में; विचार तो उठते नहीं हैं, लेकिन अन्धकार दिखता है।' मैं कहती हूँ-'भाग्यशाली हो, ज़रा अन्धकार को देखो, घबड़ाओ मत।' अन्धकार की सुरंग में से गुज़र ने का साहस करो तो सामने आगे आलोक है। लेकिन जो अन्धकार से डरे वे वापस आए विचार की भूमि पर। जो अन्धकार से डरे वे वापस आये, मस्ती में, नशे में। अन्धकार से बिना डरे, उस निर्विचार अवस्था में जो दिव्य अन्धकार दिखता है, उस अन्धकार में जो स्थिर होता है, हो सकता है कि आगे जो साक्षित्व का आलोक है, वहाँ उसका प्रवेश हो।

आपने पूछा 'साधना कैसे करें ?' तो एक रास्ता तो यह बताया कि दिन में, २४ घण्टें में एक बार दो बार जैसी सुविधा हो, वैसे यह प्रयोग करना शुरू करो और बाकी जो २२ या २३ घण्टें हैं, उनमें जो व्यवहार होगा वह प्रतिक्रिया में से न हो; बाह्य परिस्थिति और आन्तरिक प्रतिक्रिया दोनों से हटकर देखें और फिर व्यवहार करें। इसको कहते हैं साक्षित्व की साधना। बाकी व्यवहार में साक्षित्व की साधना के सिवाय कुछ करना नहीं पड़ता।

प्रश्न : स्थूल परिणाम के लालच से कैसे बचें ? स्थूल परिणाम न भी दिखाई दे तब भी समाधान कैसे करें ?

उत्तर : "स्थूल परिणाम के लालच से कैसे बचें ?"-मैं मान लेती हूँ कि यह विषय भी आध्यात्मिक जिज्ञासासे सम्बन्धित है। देखिये, स्थूल परिणाम की लालसा कैसे आती है, किसको आती है ? मन को आती है, अहंकार को आती है। हमने अध्यात्म को भी कुछ प्राप्त करने का विषय समझ लिया है। पैसे कमाते हैं न ? प्रतिष्ठा कमाते हैं न ? सत्ता कमाते हैं, ऐसे ही परमार्थ कमाएंगे। हम आत्मसाक्षात्कार प्राप्त

करेंगे, हम सगुण साक्षात्कार प्राप्त करेंगे। यानी तथाकथित आध्यात्मिक विषय अहंकार के लिये उपकरण बन गये। यह कमाउँगा, अनुभूतियों का संग्रह करूँगा, आत्मसाक्षात्कार प्राप्त होगा। अहंकार उसी में जीता है। अध्यात्म मानसिक कर्म का विषय है ही नहीं, यह जब तक समझ में नहीं आएगा, तब तक साधना में स्थूल परिणाम देखने की लालसा बनी रहेगी। मुझे अनुभूति कब आएगी? मुझ में अतीन्द्रिय शक्तियाँ कब विकसित होंगी, occult powers कब मिलेंगी? अमुक को जितना आनन्द मिला है, वह मुझे कब मिलेगा? यह मिलने की वस्तु नहीं है रे! इसमें कुछ प्राप्त भी नहीं करना है, न इसमें किसी चीज़ का त्याग करना है। तो, स्थूल परिणाम की वासना एक ग़लत धारणा में से उठी है। अध्यात्म कुछ करने का विषय नहीं, न करने का विषय नहीं, यह होने का विषय है।

लोग तो समझते हैं ध्यान भी करने का ही विषय है। अरे भाई! पूजा करने का विषय है, मान लूँ, चित्त की एकाग्रता करने का विषय है, मान लूँ; लेकिन ध्यान तो एक अवस्था है, दस साल का लड़का है, और बाप से कहे कि आपके तो दाढ़ी-मूँछ हैं, मेरे नहीं हैं; लाओ मुझे दवा दो। दाढ़ी भी चाहिये, मूँछ भी चाहिये। क्या कहेंगे पिता जी? यही तो कहेंगे कि बेटा! ठहर जाओ, अभी दस साल के हो। और चार-छ:साल ठहरना; फिर मूँछें आएँगी और फिर दाढ़ी फूटेगी। यौवन को कहीं से लाया नहीं जा सकता। यौवन तो, शरीर का और मन का कुमार अवस्था में से यौवन में एक-साथ उत्थान करना है। उसी प्रकार ध्यान एक अवस्था है, जिसमें सारी चेतना का उत्थान होता है। ध्यान तो जिन्होंने करने का विषय मान लिया, वे ही भ्रान्त धारणा में पड़े रहे। तो, स्थूल परिणाम की लालसासे कैसे बचें? बचना नहीं है, समझना है। बचना भी तो एक प्रकार का पलायन-वाद होगा। हमें बचना किसी से नहीं है। २४ घण्टें जीवन-सागर पर हम हैं। लहरों के थपेड़े आएँगे, लगेंगे, इधर-उधर से- देखते रहेंगे, धक्के लगेंगे, वे भी झेलेंगे। यहाँ बचना नहीं, यहाँ जीना है।

जिन खोजा तिन पाईयां, गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ॥

बचने-वाले किनारे पर बैठे रहेंगे। दूसरों के साधनों का हिसाब करेंगे। किसका विचार कितना तर्कशुद्ध है, और निर्दोष हैं, इसका हिसाब करेंगे। दूसरों की तुलना और निर्णय करने में जिन्दगी बीत जाएगी। इनके हाथ अन्त में खाली रह जाएंगे। यह

किनारे पर बैठने वालों का काम नहीं है भाई ! यह तो छलाँग लगाकर तैरने वालों का काम है; या तो तैर जाऊँ या डूब जाऊँ : लेकिन डूबना जीवन में है । तो स्थूल परिणाम की लालसा से बचने का एकमेव रास्ता यह है कि अध्यात्म या मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण, कैवल्य, साक्षित्व-जो भी कहियेगा-यह करने का विषय नहीं है । जब समझ में आएगा कि करने का विषय नहीं है, वहीं अहंकारका दम्भ समाप्त हो जाएगा, क्योंकि उसे रास्ता ही नहीं है, फिर कहीं काम करने का ।

आप लोगों ने जो प्रश्न पूछे थे, उनके जैसे सूझे वैसे विश्लेषण मैंने रखे । मैं चाहती थी कि स्वयं कहने के बदले, आप लोगों की जिज्ञासा जहाँ पहुँची है, वहाँ तक आकर मैं हाथमें हाथ मिलाऊँ । और आप को जो जिज्ञासा हो, जितनी जिज्ञासा हो उतना हम यहाँ पर सहचिन्तन और सहविचार करें । इसलिये आज की सन्ध्या में यह उपक्रम हम लोगों ने रखा । जो बातें प्रश्नों के उत्तरों में कही गई हैं, विश्लेषणों में कही गई हैं, उन पर से ध्यान में आया होगा कि पहला काम यह करना है कि अध्यात्म और व्यवहार-दो सत्ताओं में जीवन खण्डित नहीं करना है, बाँटना नहीं है । ''यह तो व्यवहार है, इसमें यही चलेगा''-शाक सब्ज़ी लेने गये तो उस ग़रीब बहन के पीछे पड़कर चार आने के दो आने कराने में व्यवहार-कुशलता समझना (यह नहीं होना चाहिये) । वह बहन ग़रीब है, देख रहे हैं कि उसके तन पर फटे कपड़े हैं, चार आने किलो तो खरीद सकते हैं लेकिन व्यवहार-कुशलता है-कम करायेंगे ही । डॉक्टर हों, वकील हों, व्यापार में हो, नौकरी में हों, शिक्षक हों, यह तो व्यवहार है; इसमें असत्य, अनीति, दुराचार सब स्तुत्य है, क्योंकि पैसा मिलेगा, प्रतिष्ठा मिलेगी और अध्यात्म में सन्त के पास जाना, नम्रता से बैठना, जिज्ञासा दिखाकर सवाल पूछना, वहां सत्य, प्रेम करुणा के गीत गाना यह भी स्तुत्य है क्योंकि वहाँ भी प्रतिष्ठा मिलेगी । यहाँ भी प्रतिष्ठा, वहाँ भी प्रतिष्ठा । दोनों हाथों में लड्डू रहेंगे । इसलिये जीवन को खण्डित और विभाजित कर देते हैं और फिर दोनों खण्डों में प्रतिष्ठा प्राप्त करने की कोशिश करते हैं । नुकसान इसमें दूसरे किसी का नहीं, हमारा ही है ।

इसलिये पहली चीज़ बहनें ध्यान में रखें कि जीवन एक, अखण्ड अविभाज्य है-जीवन को काटा नहीं जा सकता, बाँटा नहीं जा सकता, छाँटा नहीं जा सकता । उसे खण्डित करना यही पाप है, यही बन्धन है, और उसकी समग्रता में उसे देखना, यही मुक्ति है, मोक्ष है । यह पहली चीज़ समझें तो फिर यह नहीं करेंगे कि छात्रालय

या विद्यालय में रहते हैं तो अपने कमरे में रहने वाली बहनों से लड़ना और मुख्य शिक्षक आये तो उनके सामने नम्रता की मूर्ति बन जाना। शादी हुई है तो घर में पति के सामने तो भीगी बिल्ली बनकर रहना और फिर नौकरानी आई या बच्चे सामने हैं तो उनकी ताड़ना करना, डाँटना। फिर मन्दिर में गये तो रोना, धोना, नाम लेना। अपने व्यक्तित्व के इतने सारे टुकड़े करके रखते हैं हम। मन्दिर में जाने का निषेध नहीं कर रही हूँ, लेकिन कह रही हूँ, कि आप जीवन के एक क्षण में जो हैं, वही सब क्षणों में बने रहिये। कहीं छिपाना, कहीं दूसरा दिखाना, प्रदर्शन करना, यह न कीजिये। तो, अपने आपकी, जैसी हम हैं, वैसी स्वीकृति और यदि सुधार करना है तो समग्रता में सुधार करने की चेष्टा-ये दो चीज़ें, यहाँ जो कन्याएँ बैठी हैं, वे समझ सकें इस भाषा में मैंने रखीं।

जो बड़े लोग बैठे हैं, उनके सामने तो मुक्ति क्या है, दर्शन क्या है, सगुण दर्शन और सगुण साक्षात्कार के बाद भी व्यक्ति के अध:पतन क्यों देखते में आते हैं-इत्यादि बातों का विश्लेषण किया गया। असल में बात तो यह है भाई ! कि सगुण साक्षात्कार-यह तो मन की गहराई में से ही उठता हुआ एक खेल है। बच्चे गुड्डा बनाते हैं, गुड़ियाँ बनाते हैं, उनकी शादी करते हैं, उनके लिये भोज रखते हैं; बुलाते हैं एक-दूसरे को। खेल है बच्चों का। वैसे ही, निर्गुण निराकार की उपासना सहन नहीं होती है- इसलिये हम सगुण साकार की उपासना करते हैं। यह खेल प्रारम्भ में चलता है, भले चले, लेकिन सगुण साक्षात्कार, सगुण दर्शनों का मोक्ष से और मुक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं हैं; जैसे अतीन्द्रिय शक्तियों का कोई सम्बन्ध नहीं, वैसे सगुण साक्षात्कार का आत्मसाक्षात्कार से, आत्मरत जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं। इस विषय का थोड़ा विश्लेषण आपके सामने रखा, आगे का विचार कल सुबह करेंगे।

प्रात:कालीन प्रार्थना-सभा दिनांक : ३१-१२-१९६७

आज एक बड़ा पुण्य पर्व आया है-पश्चिम में, पूरब में, उत्तर में दक्षिण में। जहाँ भी मानव रहता है, वहाँ एक अपूर्व क्रान्ति का यह पवित्र पर्व आया है। जो इस ज़माने में जीवित हैं और युवावस्था में हैं वे धन्य-भाग्य हैं। सनातन काल से मनुष्य खोजता आया है चिरन्तन सुख, चिरन्तन शान्ति, चिरन्तन समतुलन- इन तीनों की खोज करते-करते यहाँ तक मानव पहुँचा है।

पूरब में मानवने अपने शरीर से प्रारम्भ किया। प्रयोगशाला शरीर में ही खोल दी। तन की और मन की प्रयोगशाला में खोजते-खोजते कि सुख का बिन्दु कहाँ है शान्ति का केन्द्र कहाँ है, समतुलन की कला कहाँ है-इसकी खोज में मानव ने पाये वेद। पश्चिम में यह खोज बाहर की ओर चली, जिसमें से,आज जिसे पश्चिमी संस्कृति (culture) कहा जाता है, जिसे सभ्यता (civilization) कहा जाता है, यह पैदा हुई। बहुत बड़ी हद तक वहाँ से गरीबी गई। मनुष्य को पूरब में घोर परिश्रम करना पड़ता था और अब भी पड़ता है; वह वहाँ नहीं करना पड़ता। आहार, विहार, निद्रा के लिये जो साज उन्होंने सजाया और जुटाया उसमें एक व्यक्ति की नहीं, हजारों की ज़िन्दगियाँ व्यतीत हुई। कहीं भी जाइये, वहाँ 'बहुजनसुखाय', 'बहुजनहिताय' कहते हैं। वहाँ बहुजनों के सुख की सुविधाएँ और सामान उपलब्ध हैं, भीख नहीं माँगनी पड़ती हैं। स्त्री-पुरुषों को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक समता उपलब्ध है।

देखने को पश्चिमी राष्ट्र और पश्चिमी समाज सम्पन्न, सुखी प्रतीत होते हैं। लेकिन जो व्यक्ति उनके घरों में घूमता है, जिसे उधर रहना पड़ता है महीनों तक, वर्षों तक, वह जानता है कि सुख-सुविधा का सामान जुटाते-जुटाते पश्चिम ने हजारों वर्ष बिता दिये। उनके व्यक्तिगत यान्त्रिक जीवन दरिद्र रह गये, प्रेम का तो स्पर्श भी हृदय नहीं कर पाया। यह नहीं कि वहाँ कोई महापुरुष नहीं हुए। वहाँ भी इस सारी सभ्यता और संस्कृति के खिलाफ़ विद्रोह करके आवाज़ उठाने वाली कुछ आत्माएँ जरूर आविर्भूत

हुई और हर समाज में होगीं। परिस्थिति की अनुकूलता में अपना विकास बहुजन-समाज करता है, लेकिन ऐसे भी विद्रोही निकल आते हैं जो परिस्थितिकी प्रतिकूलता को ही अपनी साधना समझकर उसके पार चले आते हैं। ऐसे शूर, ऐसे वीर अल्प हों, हाथ की उँगलियों पर गिनने लायक हों, लेकिन वे हम लोगों को दिखा देते हैं कि मानवता कितनी ऊँची उठ सकती है, मानव अपनी गहराई में कितना उतर सकता है और मानव अपने को किस प्रकार व्यवहार में अभिव्यक्त कर सकता है। आकाश जैसी विशालता, और सागर जैसी गहराई, हिमालय जैसी स्थिरता, चाँद जैसी भव्यता और सूरज की दिव्यता जिनकी वाणी में नेत्रों में व्यवहार में ओत-प्रोत हो गई है, ऐसे भी व्यक्ति होते हैं।

कहना यह था कि पश्चिम के लोग भी वैज्ञानिक, चिन्तक, दार्शनिक और सामान्य मानव-सभी ऊब गये हैं। इन्द्रियसुखों के पीछे दौडते-दौडते सदियाँ निकल गईं; न शान्ति हाथ आई न जीवन का संतुलन हाथ आया। अच्छे-अच्छे कीमती कपड़ों में लिपटे हुए उनके हृष्ट-पुष्ट शरीर हैं, लेकिन मन उनके भूखे हैं। न प्रेम का स्पर्श है, न शान्ति का। ऐसा यह क्षण है। इसलिये प्रारम्भ में कहा कि अब ऐसी शुभ क्रान्ति का पुण्य पर्व आया है कि इन दोनों धाराओं का समन्वय होगा। बाह्य जगत् का निषेध किये बिना, उसको मिथ्या और माया कहकर प्रभु की सुन्दर सृष्टि का अपमान किये बिना और उसमें अटके बिना मानव अब अन्तर्जगत् की खोज में निकल पड़ा है। आन्तरिक सुख के बिना और संतुलन के बिना अब मानव चैन नहीं लेगा।

जो लोग घबड़ाते होंगे आज का प्रखर, घोर मन्थन और अशान्ति, बेचैनी देखकर, वे तूफ़ान और आँधियों के आदी नहीं हैं। मानव ने ऐसे न जाने कितने तूफ़ान और आँधियाँ देखी होंगी, थपेड़े खाये होंगे सागर की मौज़ों के। लेकिन मानव अब जागृत बन रहा है और बना रहेगा। तो, इस शुभ क्रान्ति के अवसर पर आप, हम क्या कर सकते हैं। यही कि हम अपने जीवन में सुखी हों, हम शान्त हों, हम संतुलित हों। यही सबसे बड़ा योगदान है। यह किस प्रकार हो सकता है ? अपने आप को पहचान कर अपने-आप से मैत्री करें तो सुख, शान्ति और संतुलन तीनों उपलब्ध होंगे। आप कहेंगे इसमें कौन-सी बड़ी बात है ? मेरा नाम शारदा है, सरस्वती है, वीणा है और मैं जैन हूँ या हिन्दू परिवार में हूँ, मैं फ़लाने की बेटी, फ़लाने की पत्नी हूं। मैं इन बच्चों की माँ हूं, मैं पाटन-निवासी हूँ या मेहसाना-निवासी हूं या गुजराती हूं। यह आपकी

पहचान नहीं है। यदि कल आप कहेंगी कि जो पहनी हुई साड़ी है, वही आप हैं तो लोग कहेंगे यह कैसी बात है ? तो पहनी हुई साड़ी आप नहीं हैं, यदि आप मोटर में बैठी हैं तो वह मोटर आप नहीं हैं, उसी प्रकार आप किसी की पत्नी, किसी की माता, किसी की बेटी, किसी की बहन हैं, यह आपका परिचय नहीं है। जैन परिवार में या हिन्दू परिवार में पैदा होना यह आप का परिचय नहीं है। बड़ी भूल में हैं आप, इसलिये सुख और शान्ति आप से कोसों दूर भागती है।

खोजिये, भीतर चलिये तो आप पाएँगे कि मैं यह शरीर हूँ साढ़े तीन हाथ का। शारदा, वीणा, सरस्वती-ये नाम तो समाज के दिये हुये हैं, माता-पिता के दिये हुये हैं। इस एक शरीर की दूसरे शरीरों से जो भिन्नता है, उसका संकेत है नाम। मनुष्य के कहीं नाम होते हैं ? जैसे प्रभु के कोई नाम नहीं हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी अनामी है और यदि नामी भी है तो सभी नाम उसके हैं। लेकिन व्यवहार के लिये नाम दिये गये हैं और हम समझ बैठे कि वह नाम ही हम है; उपयोग के लिये शरीर दिया तो समझ बैठे कि शरीर ही हम हैं। हाथ को देखिये, पाँव को देखिये, आँखो को देखिये, अपने कानों को देखिये इन सबका आप उपयोग करते हैं, ये आपका उपकरण हैं। प्रभु बड़े दयालु हैं, बड़े रसिक और बड़े प्रेमी। कहीं भी कोई कठिनाई न हो, इसलिये ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ दे दीं।

और भीतर चलिये, शरीर से भीतर चलिये-कान, आँख, नाक इन में यदि सुनने, देखने, सूँघने की शक्ति होती हो तो किसी मुर्दे के पास चलिये। न वह बोलेगा, न हिलेगा; आँख है, खुली है, देख नहीं रही है, कान है, सुन नहीं पा रहे हैं, हिल नहीं पा रहे हैं। गति का संचार नहीं है, जो जीवन का लक्षण है। इसीलिये कहा है-

अरे, वहाँ सूर्य और चन्द्र भी नहीं हैं और मानव-निर्मित अग्नि का भी वहाँ प्रवेश नहीं है। तो ये जो बाह्य उपकरण हैं, कृपा कर के यह मत मानिएगा कि आँख-कान-नाक वाले शरीर आप हैं। आप शरीरधारी हैं और जो नियम सृष्टि के अन्य जीवों पर लागू होता है, वही नियम आप के शरीर पर भी लागू होता है। अण्डे से पंछी बाहर निकला, उड़ा इस डाल से उस डाल पर; चहकता गया और किसीदिन प्राण-संचार समाप्त होने पर समाप्त हुआ ! वैसे ही आप बचपन से कुमार अवस्था में जाएँगे, कुमारावस्था से यौवन में जाएँगे, यौवन के तूफ़ान और आँधियों में से इधर-उधर धक्के खाते हुए प्रौढ़ावस्था में से वृद्धावस्था में जाएँगे-इस शरीर की यात्रा को तो कभी देखिये।

देहातीत अवस्था के लिये समय सुरक्षित रखो और देहबद्ध होकर बाकी व्यवहार करो, यह धर्म नहीं है, यही अधर्म है, यही पाप है, यही बन्धन है और इससे मुक्त होना सम्भव है-२४ घण्टे व्यवहार में रहते हुए तथाकथित जागृति या निद्रा में-अपने स्वरूप का अनुसन्धान रखना सम्भव है। ग्रन्थों से नहीं कह रही हूँ, ग्रन्थ पढ़े भी नहीं हैं; स्वयं जीवन देखकर यह कह रही हूँ कि रात्रिदिवस उस अनुसन्धान में रहना, -इसमें मस्ती है ! इसमें खुमारी है ! इसमें आनन्द है ! फिर कोई दु:ख देने के लिये आता है, उलटी-सीधी बातें करता है; आप सुन लेते हैं क्योंकि ऐसी जड़ता में तो नहीं हैं कि शब्दों का अर्थ नहीं समझेंगे, तब क्रोध नहीं होगा, लेकिन उस मनुष्य पर दया आएगी कि क्रोध से वह व्यक्ति अपने-आप को क्यों बिगाड़ रहा है।

जो क्षण गया वह वापस नहीं आता। यह तो जीवन की अद्भुत और अनोखी लीला है ! लाखों, करोड़ों, रुपया देने पर भी आप अपना यौवन नहीं लौटा सकते हैं और बचपन खरीद नहीं सकते हैं। यह नहीं कह सकते हैं कि बचपन गया, ग़लत ढंग से जिया था, अब ज़रा दो करोड़ रुपये में खरीद लूं तो फिर से बचपन जी लूं, नहीं जी पाएंगे। शुक्र है खुदा का कि प्रभु के साम्राज्य में कोई सौदा नहीं चलता और ख़रीद-बेच नहीं हो सकता। यह ख़रीद-बिक्री का सारा जो काम है, मनुष्य ने ही इसका अपने समाज में निर्माण किया है। हो सकता है आगे चलकर यहाँ ऐसे मानवीय सम्बन्ध प्रतिष्ठित हों, जहाँ ख़रीदना बेचना न पड़े। इसका सपना कभी महात्मा गांधी न देखा था, कभी रस्किन ने देखा था, कभी रूस में टॉल्स्टॉय ने देखा था, कभी नाज़रेथ के नौजवान ईसा ने देखा था। ये देखे हुए सपने कभी बेकार नहीं जाएँगे।

इसलिये कहा, प्रारम्भ में, कि शुभ अवसर पर आप और हम मिले हैं। ऐसे क्रान्ति के अवसर पर मिले हैं, जब कि पश्चिम का विज्ञान, यन्त्र उद्योग और बहिर्मुखी सभ्यता और भारत की अन्तर्मुखी प्रज्ञा-प्रतिभा में से जन्मी हुई एक नई संस्कृति और सभ्यता के उद्भव का समय उपस्थित है। आज हम में अपनी संस्कृति नहीं है। मेहरबानी करके आप और हम यह भ्रम न रखें कि आज भारतवर्ष में जो व्यक्ति है, जो जीवन है और जो समाज-व्यवस्था है वह सनातन भारतीय प्रज्ञा और प्रतिभा के अनुरूप है। उसका कोई अवशेष हम में नहीं है। We are an uprooted humanity (हम उन्मूलित-उखडे हुए मानव हैं)। लेकिन लौटना होगा, अपने भीतर और अपने आप में प्रतिष्ठित होकर दूसरों को प्रतिष्ठित होने में मदद करनी होगी। जो पथ है, जो

रास्ता है, वह मैंने कहा कि सुखके साधन कहीं बाहर नहीं, शान्ति कहीं अरण्य में नहीं, जंगलों में नहीं, पहाड़ों में नहीं, और सन्तुलन कोई उधार नहीं ले सकता, खरीद नहीं सकता । इस कृपा-कठोर सत्य को पहचानें । अध्यात्म यदि सचमुच खरीदा जा सकता तब तो पैसेवालों की वहाँ भी बनती । इस समाज में बनती है तो वहाँ भी बन जाती । लेकिन यह सौन्दर्य है, कृपा है, वरदान है कि अध्यात्म में कोई किसी का शोषण नहीं कर सकता, क्योंकि यहाँ खरीदना और बेचना है ही नहीं और उधार व्यवहार भी नहीं चल सकता ।

महावीर का जीवन पढ़ा, गौतम बुद्ध का पढ़ा, राम और कृष्ण के जीवन देखे, ईसा का देखा, जरथुष्ट्र का देखा; उनकी अनुभूतियाँ हैं उनको खूब बार-बार रट कर स्मृति में संगृहीत कर लिया; जैसे बच्चे खेलते हैं, वैसे फिर उनसे खेलने लगे । नहीं, यह भी मैंने ठीक नहीं कहा जैसे गाय चारा खाने के बाद जुगाली, रोमन्थ करती है न, उसी प्रकार सन्तों के जीवनचरित्र पढ़कर अपने मन में कल्पना करते रहना कि ऐसी अनुभूति मुझे भी आई है; ऐसे उधार के व्यवहार से कुछ नहीं होगा । इससे पुष्टि नहीं मिलेगी, न शान्ति मिलेगी । मैं यह नहीं कह रही हूँ कि वह न पढ़े, जरूर पढ़े, लेकिन दूसरे की अनुभूति दोहराते-दोहराते हम भी अनुभूति तक पहुँचेंगे यह भ्रम है । सजीव अनुभूति के लिये भीतर परिश्रम करना पड़ता है । यहाँ कोई शॉर्ट-कट' नहीं है, और 'रेडीमेड' सामान भी नहीं है । पढ़ ने से दिशासूचन हो सकता है और साक्षित्व इसी शरीर में रहते हुए सम्भव है, इसका एक सबूत मिल सकता है । इससे अधिक नहीं । उन लोगों के भीतर जो शान्ति समाई है, जो प्रसाद ओत-प्रोत है, जिस सन्तुलन में वे प्रतिष्ठित हैं, उसकी कुछ किरणें, कुछ रश्मियाँ उनके भीतर से बाहर फूटती हैं; उन रश्मियों में, किरणों में नहाना, शुचिर्भूत होना यह सत्संग है । यह लोगों की समझ में आता नहीं । वे जड़ शब्दों को पकड़ लेते हैं और (सन्तो के) शारीरिक व्यवहार की पद्धतियोंको पकड़ लेते हैं और उन्हीं का अनुकरण करने जाते हैं । यह सत्संग नहीं है । सत्संग है आत्मोपलब्ध या सत्योपलब्ध व्यक्ति के शरीर से, दृष्टि से, वाणी से, स्पर्श से जो शान्ति, सन्तुलन और सुख की किरणें फूट पड़ती हैं, जो सुगन्ध, सौरभ वहाँ से फैलाता रहता है, उसको ग्रहण करना । बहुत सरल बात है । बगीचा हो, बगीचे में मोगरेका, बेलेका छोटा पौधा हो, या जाई, जुही, चमेलीकी बेल हो, फूल खिले हों, तो क्या फूल की सुगन्ध नहीं आती ? आप यहाँ बैठे हैं, फूल कुछ दूर हैं, फिर भी

बच्चे भी आप थे, कुमार भी आप थे, युवक भी आप हैं, पौढ़ भी आप बनेंगे, वृद्ध भी आप बनेंगे ? नहीं, आप नहीं बनेंगे। न आप बच्चे थे; न युवक हैं। यह शरीर का धर्म है।

चलिये अन्दर। तो जब भीतर चलते हैं तब पता चलता है कि मन से सोचते हैं, विचार करते हैं, तो हम मन हैं ? नहीं आप मन भी नहीं हैं। नहीं तो आप यह कह नहीं पाते कि मुझे यह चीज़ प्रिय लगती है, यह सुनने से मुझे सन्तोष होता है। यह कह नहीं पाते क्योंकि प्रिय और अप्रिय जिसे लगता है, उस मन से आप भिन्न नहीं हो पाते, सर्वथा स्वतन्त्र नहीं हो पाते। मन का सुखी होना, दु:खी होना, सम्मानित होना, अपमानित होना, इसको देखनेवाले आप अलग नहीं रह पाते। जिस प्रकार अपने वस्त्र को आप पहन भी सकते हैं, और उतार कर रख भी सकते हैं, उसी प्रकार आप चाहें तो मन को सुख और दु:ख के अव्यक्त वस्त्रों में लपेट दीजिये या सुख और दु:ख, मान-अपमान, हर्ष-शोक के वस्त्रों को उतारकर वीतराग की तरह आप निर्वस्त्र हो जाइए। मन भी आप नहीं हैं। फिर आप हैं क्या ? एक शक्तिपुंज; मनको, बुद्धि को चलाने वाली शक्ति का केन्द्र आप हैं। यह है स्व-स्मरण। अपने-आपको पहचानना यह धर्म का प्रारम्भ है, यही अध्यात्म की साधना है। जब एक बार पहचान लिया कि यह शरीर मैं नहीं हूँ, मन भी मैं नहीं हूँ, बुद्धि से भी मैं परे हूँ, इन सबका संचालन करनेवाला मैं हूँ, तो मनुष्य इन सब की गुलामी से मुक्त हो कर एक आनन्द के साम्राज्य में प्रवेश करता है, जहाँ सुख और दु:ख के झूले पर झूलना नहीं पड़ता है। ऐसी एक शान्ति की स्थिति में, अवस्था में मनुष्य प्रवेश करता है और यहाँ प्रवेश पाकर स्थिर होना-इसको जीवन कहते हैं। वहाँ से जो गति होगी वह जीवन्त गति है। तब तक जीवन्त गति नहीं जब तक शरीर और मन से जो अपनी पृथक् सत्ता है, उसका भान नहीं है। उसे किसी ने साक्षित्व कहा, किसी ने निर्वाण कहा, किसी ने कैवल्य कहा।

देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत।
ते ज्ञानीनां चरणमां, हो वन्दन अगणित॥
(श्रीमद् राजचन्द्र)

[देह रहते हुए जिसकी देहातीत स्थिति है, उस ज्ञानी के चरण में अगणित वन्दन हों।]

सुगन्ध आती है। जिसको आप जड़ फूल कहेंगे उसकी सुगन्ध वहाँ से यहाँ आ सकती है, तो फिर जिन्होंने शान्ति पाई, सन्तुलन में जो स्थित हो गये हैं, प्रसाद जिनके कण-कण ओत-प्रोत हो गये हैं उनके शरीर से यदि शान्ति, सन्तुलन और प्रसाद की किरणें फूट पड़ती हैं तो क्या आश्चर्य है ? जिसके सत्संग की इन्द्रियाँ हों-वह सत्संग करना जाने, बड़ा मजा है उसमें, बड़ा आनन्द है, लेकिन यह नहीं कि वहाँ जाकर भी शरीर को ही प्रमाण बनायें।

गुरु गये और चेले रोये तो कहते हैं कि दोनों के दोनों कोरे निकले। हम इतने शरीर के उपासक हैं कि अपने आप को भी शरीर समझते हैं और सत्संग में गये तो सन्त की सुन्दरता में भटक गये, उसकी आँखें, उसकी नाक, उसके शरीर की लम्बाई-मोटाई नापने लगे। ओहो ! कितना सुन्दर ! कुछ ऐसे हों कि तन पर नहीं रुके तो उसकी बोलने की शैली यदि अच्छी हो, वक्तृत्व हो उसके पास, तर्क-शुद्ध विचार रखने की कला हो, काव्य हो, उसके भीतर रसिकता हो-तब तो और भी गये। अब दूसरा जाल तैय्यार है। तन की सुन्दरता से नज़र आगे बढ़ी तो मन की सुन्दरता, विचारों की सुन्दरता अभिव्यक्ति की सुन्दरता में फँस गये।

तो, वह दूसरा जाल बहुत सूक्ष्म है और सत्संग करने वालों में से, जो सुशिक्षित हैं, वे ९९% (सौ में से निन्यानवे) उसी में फँस जाते हैं। सादे-सीधे, भोले-भाले हों तो वे सत्संग का ग़लत अर्थ समझने के कारण सन्त के शरीर की पूजा करने लगते हैं। ज़रूर, शरीर सुन्दर है; भीतर की सुन्दरता को जो पाये हैं उनकी लंबाई-मोटाई न देखें तो उनकी आँखों में से सौन्दर्य और प्रेम ही झरता है। इसलिए आत्मोपलब्ध व्यक्तियों में लावण्य की आभा हो तो कोई आश्चर्य नहीं; लेकिन वहाँ रुकना नहीं है, क्योंकि कल उनके हाड़-मांस यदि समाप्तहो जाएँगे, तब हमारा क्या होगा ?

अव्यक्त में से लावण्य पाने की कला ही तो मुक्ति है। गनीमत तो यह है कि सन्त के शरीर को किसी प्रकार भी उपभोग का विषय बनाना सम्भव नहीं, इसलिये ग़रीब बेचारा बच जाता है। लेकिन न जाने कितने लोगों की, सत्संगियों की तथाकथित प्रेमियों और भक्तों की निःशब्द, मूक वासनाओं का शिकार उसे होना पड़ता है। जैसे कि अभी कह रही थी, उसकी शैली में, उसके निवेदन में, उसके काव्य में अटक जाते हैं, तो फिर शब्दों को दोहराने लगते हैं। जो प्राकृत हैं, वे उसके कपड़े-लत्ते, खाने-पीने, उठने-बैठने की नक़ल करने तक सन्तोष मान लेते हैं और जो तथाकथित

सुशिक्षित हैं; वे लोग फिर उसके विचार, उसके शब्द, उसकी जो अभिव्यक्ति-पद्धति है उसको पकड़ लेते हैं और दोहराने लगते हैं। उसके शब्द लेकर घर गये और मित्रों को सुनाने लगे।

लोग कहते हैं-"देखो, वह पहुँचा हुआ आदमी है।" कौन पहुँचा है, कौन नहीं पहुँचा है, इसकी परख करने वाले तो स्वयं पहले ही पहुँचे हुए होंगे न ! जो सही सत्संग नहीं कर पाते वे फँस जाते हैं और उनमें से कोई शारीरिक सम्प्रदाय बनाता है तो कोई वैचारिक सम्प्रदाय बनाता है। सत्संग कोई कर नहीं पाता, यही दु:ख है। इनको भी भेद कर, इनको भी पार करके जाना होगा। सन्त के शरीर, हाड़-मांस, उसके विचार, उसकी बुद्धि-इन सबको चीरते हुए भीतर जाइये। उसमें अपमान नहीं, उसी में हमारा सम्मान हैं। चीरते हुए जब भीतर जाएँगे तब पाएँगे कि जहाँ से वह विचार उठता है, मन से परे जिस सघन शून्यता में उसका वास है, वहाँ आहत नाद नहीं, अनाहत नाद बज रहा है। ऐसा जीवन-संगीत जो आपके सप्त स्वरों में बाँधा नहीं जाता, ऐसा सौन्दर्य जिसकी परिभाषा मानवीय शब्दों में और भाषा में नहीं है, ऐसा प्रसाद जिसके रस की तुलना संसार के किसी भी रस से नहीं हो सकती, उसका जो मूल स्रोत है, वह है आनन्द। सुख शान्ति और सन्तुलन के सम्मिश्रित सौरभ को आनन्द कहते हैं, वही स्वरूप है और उसी में रंग जाना सत्संग है। यह सीखना है; इसी का नाम साधना है।

वह जो स्रोत है, आनन्द का, वही तो आपका स्वरूप है, वही मानव का स्वरूप है और उसमें रहते हुए मानवीय सम्बन्धों का निर्वाह कैसे करेंगे ? वहाँ प्रतिष्ठित होकर एक दूसरे के साथ कैसे रहेंगे ? तभी तो सहजीवन का मज़ा है। अभी सहजीवन है नहीं, अभी समाज नहीं, अभी सभ्यता नहीं, अभी संस्कृति नहीं। मानव का जन्म लेना बाकी है और मानव के जन्म में से जो मानवीय सम्बध होंगे, जहाँ सुख, शान्ति और सन्तुलन के आधार पर समाज-रचना और राज्य-व्यवस्था होगी, वहाँ फिर मानवीय सभ्यता और मानवीय संस्कृति होगी। अभी तो हिन्दू संस्कृति, इस्लाम संस्कृति, क्रिश्चियन संस्कृति, बौद्ध संस्कृति, जैन संस्कृति-ये सब हैं। ये सब जो संस्कृतियाँ हैं, सभ्यताएँ हैं, इनमें सदंश है, वही बचने वाला है और जितने unessential, secondary, gross-अनावश्यक, गौण, कूड़ा-कचरा इत्यादि हैं, जितने ऊपर के छिलके हैं, वे सब छँट जाने वाले हैं। इस बात का आनन्द है कि छँटकर, जो सत्य है,

वह रहेगा । पश्चिम की वैज्ञानिक प्रतिभा का सत्य रहेगा, पूरबकी आन्तरिक खोजकी प्रतिभा का सत्य रहेगा और इन दोनों के समन्वय से नवमानव का जन्म होगा ।

यह सपना नहीं रख रही हूँ । भारत के चारों ओर गहन, गम्भीर अन्धकार है । उस अन्धकार में भी निराशा का स्पर्श पल भर के लिए इस चेतना को क्यों नहीं होता ? यह जब बार-बार खोजती हूँ तब पाती हूँ कि इस क्रान्ति के अवसर में उठने वाली आँधी और तूफान मानव का जो चिरन्तन 'सत्यं, शिवं सुन्दरं' का स्वरूप है उसे नष्ट नहीं कर सकेगा, ऐसा प्रत्यय है । इसलिये निराशा छूती नहीं । ऐसे प्रत्यय का सौभाग्य आप सबको प्राप्त हो ।

शिबिर में आप लोग आये थे यह सोचकर कि जीवन की नवीन दृष्टि मिलेगी । मिली या न मिली, पता नहीं । लेकिन आपके सत्संग में तीन दिन रहते हुए मुझे प्रसाद, शान्ति और दिव्यता की अनुभूति तीनों मिले । प्रार्थना में प्रवचन करती गई, क्योंकि मित्रों की इच्छा थी । ये प्रवचन जितने आप के लिए थे उतने ही मेरे लिये भी थे । इनमें जो कुछ कहा गया वह मेरा नहीं है । आपके और मेरे सान्निध्य में से जो विकसित हुआ वह न आपका है, न मेरा है । सहजीवन में से उठने वाली और उगने वाली ये चीज़े होती हैं । प्रभु करे गुजरात के जिले-जिले में इस प्रकार के महिला-शिबिर हों । आप लोग इकट्ठे हों और सामाजिक संस्थाएँ चलाने में-पैसा इकट्ठा करो, मकान बनाओ, खाने-पीने की व्यवस्था करो, सरकार के नियम हैं, उनका पालन करो-इस चक्र में जो घूमना पड़ता है, उसमें से कभी-कभी बाहर निकल कर अन्तरंग की जो शुद्ध हवा है, उसमें चलें । लोग हवा की खोज में बाहर जाएँगे; नदियों और सागरों की खोज में निकलेंगे, हम ताज़गी के लिये भीतर जाएँगे । ऐसे मिलकर जब घूमने जाते हैं सागर के किनारे तो आपको मज़ा आता है न ! अब गोता लगाना, न लगाना आपकी इच्छा पर निर्भर है । किनारे तक ले जाना शब्दों द्वारा सम्भव है । गोता लगाना हरेक की इच्छा का प्रश्न है ।

: ३ :

स्थान : मुंबई
(अध्यात्म-जिज्ञासुओं का शिविर)
दिनांक १७/१९-११-१९६७

प्रथम प्रवचन दिनांक : १७-११-१९६७

अध्यात्म और धर्म इन दो शब्दों का इतना दुरुपयोग हो चुका है कि इनमें से किसी भी एक शब्द का उपयोग करने में मुझे संकोच होता है, झिझक होती है। हिन्दुस्तान में इस प्रकार के पहले ही शिविरमें आई हूं। यूरोप में गत ५-७ वर्षो से आध्यात्मिक शिविर होते हैं, प्रवचन होते हैं, चर्चाएँ चलती है, meditation camps (ध्यान-शिविर) चलते हैं। लेकिन इस देश में अब तक मैंने यह स्वीकार नहीं किया था, क्योंकि यदि ऐसा शिविर चलाना हो, उसमें सहचिन्तन करना हो, अध्ययन करना हो तो जिस क्रान्तिकारक वृत्ति की और द्रष्टिकोण की आवश्यकता होगी, उस प्रकार की क्रान्तिकारिता वृत्ति में, द्रष्टि में और जीवन में लाने की तैयारी कितनी होगी यह मेरे मन में रहा।

भारत में अध्यात्म को दैनिक जीवन से स्वतन्त्र समझा गया। यह दुर्भाग्य रहा कि भारतीयकी नस-नस में, उसके कतरे-कतरे में, बूँद-बूँद में यह एक बहुत गंभीर भ्रम पड़ा हुआ है कि आध्यात्मिक जीवन अलग और व्यावहारिक जीवन अलग। एक को कहते हैं पारमार्थिक जीवन, दूसरे को कहते हैं भौतिक जीवन। यह जो द्विसत्तावाद है, यह भारत के मानस को और जीवन को खा गया है।

तो, पहली चीज़ यह कि हमारे खून में जो गहरा संस्कार पड़ा है, उसको पहचानना कि भिन्न-भिन्न सत्ता हम मानते हैं, दोनों को भिन्न-भिन्न मूल्य में स्वीकार करते हैं और इन दोनों मूल्यो के आधार पर एक ही दिन में दो मूल्य-मानों (sets of values) पर चलते हैं, यानी कभी 'आध्यात्मिक' आधार पर चलते हैं और कभी 'भौतिक' पर। क्षमा करें, अविनय के लिए-लेकिन भारत में आज ऐसा व्यक्ति देखने

में नहीं आता जिसका व्यक्तित्व छिन्न-भिन्न (split personality) न हो कोशिश करेंगे तो व्यवहार में असत्य का व्यवहार आसानी से करेंगे और धर्म में या आध्यात्मिक क्षेत्र में 'सत्यं वद धर्मं चर' यह कह देंगे। कितना गंभीर विरोधाभास है। कितनी गम्भीर बीमारी हमको छू गई है इसका भान तक हमको नहीं है।

अपनी लम्बी परम्बरा ठहरी; ग्रन्थों का ढेर लगाएँ तो आसमान को छू जाएगा; आध्यात्मिक परिभाषाओं से छोटे-छोटे बच्चे भी परिचित हैं। तो इस संस्कार का निराकरण करने के लिये हम में से कितने तैयार हैं, यह सवाल होता है। और जब तक हम इस द्विसत्तावाद का निराकरण नहीं करेंगे, इस भ्रम का निराकरण नहीं करेंगे, तब तक शिविरों में जाइए, ध्यान-शिविरों में जाइये, कभी एक सन्त को, कभी दूसरे को सुनिये, मन्दिर जाइये, जप कीजिये, जो कुछ भी कीजिएगा, वह चेतना के ऊपरी स्तर का decoration (अलंकरण) रहेगा। आप के बौद्धिक और मानसिक जीवन का आभूषण मात्र बन जायेगा, वह शब्द, वह मूल्य। लेकिन अन्तस्तल की चेतना को छू नहीं पायेगा, जीवन का जो गुणधर्म है उसको बदल नहीं पायेगा, आपकी जो चित्तवृत्तियाँ हैं उनमें कोई आमूलाग्र परिवर्तन ला नहीं पायेगा। इसलिये अध्यात्म एक साहस का काम है। और अध्यात्म नहीं है तो जीवन भी नहीं है। आध्यात्मिक जीवन अलग और भौतिक जीवन अलग ऐसा नहीं है। जीवन है तो अध्यात्म है, अध्यात्म है तो जीवन है। और नहीं है तो we are vegetating (हम लोग वनस्पति सरीखे हैं)। फिर तो ठीक है, पशु है, पक्षी है, वनस्पति है, वैसे मनुष्य देह में हिलने-डुलने वाली चेतना का ही एक रूप हममें भी है, उसमें और इनमें कोई फ़र्क नहीं पड़ता।

तो पहली चीज, जीवन की अविभाज्यता को, अखण्डता को पहचानना। भौतिक और आध्यात्मिक ऐसे दो खण्ड जीवन के नहीं हैं। जिसको आप material life (भौतिक जीवन) कहते हैं, भौतिक जीवन जैसा कोई पदार्थ नहीं है। जिसको आप matter (जड़) कहते हैं, there is noting like matter यानी जिसको आप 'जड़' कहेंगे, ऐसे जड़ पदार्थ कुछ नहीं हैं। जो कुछ है वह एक स्पन्दन है। एक ऊर्जा का स्पन्दन है, एक चित्शक्ति का स्पन्दन है, जिसको आप vibration (स्पन्दन) कहते हैं, उनकी गति है। उनमें फ़र्क होगा, उनकी घनता में फ़र्क होगा, उनकी गहराई में फ़र्क होगा, स्पन्दनों की गतिविधि में फ़र्क है, लेकिन यह सारा विश्व एक स्पन्दन मात्र है, चिन्मय के सहज स्पन्दन का नाम विश्व है। प्रयोग करके देखा तो

जहाँ अणु को, परमाणु को तोड़ने गये; देखा गया कि ऊर्जा के सिवा और कुछ हाथ नहीं आया। छोटा ही लीजिये, परमाणु या बड़ा अणु लीजिये, लेकिन आप उसमें quantums of energy (ऊर्जा की प्रमात्राएँ) पायेंगे, और कुछ नहीं। तो यह जब वैज्ञानिकों ने देखा तो उनके ध्यान में बात आ गई कि matter (जड़) नाम की कोई चीज़ नहीं है। वह तो सिर्फ़ ऊर्जा के स्पन्दन हैं, vibrations of energy हैं। जब मैं कहती हूँ कि जीवन में भौतिक नाम की कोई वस्तु नहीं है, जीवन में जड़ पदार्थ के नाम की कोई वस्तु नहीं है, तब तात्पर्य यही है कि स्पन्दन हैं, लपेटे गये हैं पत्थर के आकार में, पाषाण के आकार में कुछ लपेटे गये हैं, कुछ जल के कणों में, बिन्दुओं में लपेटे हुए हैं, कुछ वृक्ष के पत्ते के रूप में लपेटे गये हैं, कुछ मानव-देह-धारी के रूप में लपेटे गये हैं, लेकिन हैं सिर्फ़ स्पन्दन। यह जो पहचानेगा वह जीवन को दो सत्ताओं में बाँटेगा नहीं। वे लोग जो दो सत्ताओं में बाँटते हैं, वे कुछ समय आध्यात्मिक काम के लिये और कुछ समय व्यवहार के लिए देते हैं। शरीरयात्रा को चलाने के लिये पैसा कमाना यह हो गया भौतिक जीवन और मन्दिर में या देरासर (जैन-मन्दिर) में जाकर बैठना, जप करना यह हो गया पारमार्थिक जीवन। जिस दिन ध्यान में आयेगा कि शरीर-यात्रा शव-यात्रा से भिन्न है, वह शिवयात्रा है और उस शिव-यात्रा के लिए जो धन कमाना है, जो पैसा कमाना है वह भी आध्यात्मिक कर्म है, वह भी उपासना कर्म है, और उसमें उतनी ही सावधानता की ज़रूरत है जितनी कि जप करने के लिए रखते हैं, तब देखियेगा कि घर में बैठे-बैठे जीवन कैसे बदल जाता है। तो पहली चीज़ यहाँ जो आप लोग आकर बैठे हैं, उनके सामने यह मैं रखूँ कि जीवन में यह एकता, एक अविभाज्यता है, उसको हम पहचानना सीख जायें, यह बड़ी बात है।

बहुत छोटी उम्र थी मेरी, ४-५ साल की रही होगी। तब मुझे इस अव्यक्त सृष्टि से बड़ा प्रेम था। पता नहीं क्यों ऐसा लगा करता कि व्यक्त सृष्टि, यह अव्यक्त सृष्टि की छाया है। इस व्यक्त सृष्टि की स्वतंत्र सत्ता है, ऐसा नहीं लगता था। ऐसा लगता था कि अव्यक्त में सत्ता है और यह तो प्रतिबिम्ब है, छाया है। अब समझ में आता है कि ये जो विविध आकार के, विविध प्रकार के पदार्थ हैं, वृक्ष हैं, वल्ली हैं, पत्ते हैं, फूल हैं, पाषाण है, नदियां है, पहाड़ियाँ हैं, पशु हैं, पक्षी हैं, मनुष्य हैं, ये सब जो हैं ये भिन्न-भिन्न आकार में बहने वाले स्पन्दनों का पुंज मात्र हैं। तो, इन दो सत्ताओं की भिन्नता, यह जो भ्रम है, इसको तोड़ने का जो साहस करेगा वह हमारे साथ आगे चले।

कबीरा खड़ा बजार में, लिये लुकाटी हाथ ।
जो घर फूंके आपना, चले हमारे साथ ।।

तो जो कोई घर है उसमें थोड़े ही दियासलाई लगानी है ? नहीं । इस भ्रम को तोड़ना है । यह है घर फूंकना । तो द्विसत्तावाद को तोड़ दें । जीवन का जो बँटवारा करते हैं, वे water-tight compartments (विच्छिन्न खण्ड) बनाते हैं । 'तो संसार के लिये करना ही पड़ता है, यह व्यवहार है, उसके लिये भी करना ही पड़ता है ।' इतना व्यवहार में किया, तो चलो फिर सन्तों के पास हो जाएं । दुनिया भर में, हिन्दुस्तान में भी यही समस्या है । तो फिर compensation (क्षतिपूर्ति) हो जाती है कि इतना व्यवहार के लिये असत्य किया, इसका परिमार्जन इधर हो गया । ऐसे परिमार्जन होता नहीं है और न ही ऐसे चित्तवृत्ति शुद्ध होती है । चित्तवृत्ति की शुद्धि का मतलब है भ्रमों का निराकरण । भ्रमों का निराकरण ही चित्तशुद्धि है । और दूसरी शुद्धि कहां से लायेंगें ? शुद्धता कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है जो बाहर से लानी है, उसके लिये कोई अलग उपासना नहीं करनी पड़ती है । To break the illusion is to plunge into innocence-भ्रम को तोड़ना यानी निर्दोषता में छलाँग लगाना, कूद पड़ना । भ्रम-निराकरण ही शुद्धता है और निर्दोषता है । जो कल्मष है, जो कलुष है, जो मल है उसे तोड़ना धर्म है । अब इसको कौन तोड़ेगा ? उसको दूसरा कोई व्यक्ति नहीं तोड़ सकता । मैं आप के लिये नहीं तोड़ सकती । यह दो सत्ताओं का भ्रम है, उसका निराकरण जो व्यक्ति है उसको ही अपने लिये करना होता है । दूसरा व्यक्ति उसके लिये नहीं कर सकता । चाहे जितना मां का प्रेम हो, बेटे को ही भोजन करना होगा और भोजन का पाचन करना होगा । तब तृप्ति मिलेगी, तब पुष्टि मिलेगी ।

इस शिविर में यह एक चीज़ आपके सामने रख रही हूं कि जब इन दो सत्ताओं का निराकरण हो जायेगा, तब यह भ्रम टूटेगा, तो हम कहाँ रहेंगे ? खड़े रहने के लिये कोई धरातल है ? आज तो लगता है कि मैं वेद पढ़ गया हूं, मैं उपनिषद् जानता हूं, मैं भगवद्गीता जानता हूं, मैं आत्मशुद्धि-शास्त्र जानता हूं, मैंने आगम पढ़े हैं, निगम देखे हैं, मैंने ज्ञानेश्वर पढ़ा है, मैं दयाराम जानता हूं, मैं अखा को पढ़ गया हूं; यह हमारे मन में रहता है । हम मान लेते हैं कुछ । जहां यह दो सत्ताओं की भिन्नता का भ्रम टूटेगा और जीवन की अविभाज्यता के धरातल पर खड़े हो जायेंगे तो हम कहाँ रहेंगे ? हमारी वही अवस्था होगी जो पांच वर्ष के बालक की होगी । ''मैं कुछ नहीं जानता हूं, मुझे

सब कुछ सीखना है।'' आज जो ग्रन्थों से शब्द उधार लिये जाते हैं, आज तो सन्तो की वाणी से विचार की उधारी करके बैठे हैं और इस विचारों के संग्रह को ज्ञान कहा है, शब्दों की उधारी को विद्वत्ता कहा है, और सन्तों के जीवन में जो चमत्कारिता है उसका अपने मन में आरोपण करके उस पर अपनी कल्पनाओं का आरोपण करते हैं, कल्पनाशक्ति में हम बैठे हैं यह सब चला जायेगा। उसमें उधार चलता नहीं। इसमें शब्दसंग्रह अथवा मित्रों में घटित चमत्कार हमको तुष्टि-पुष्टि नहीं दे सकते हैं। इस प्रकार संगृहीत विचार, शब्द कल्पनाएँ-सब जल जायेंगे। और चित् की नग्न-शून्यता में आप का प्रवेश होगा। और जो उधार का माल भर-भर के रखा है स्मृति के कोश में, जिसे मान बैठे हैं कि हमारी अनुभूति है, वह अनुभूति तो है नहीं, उधार है। गीता के १८ अध्याय कण्ठस्थ होने पर भी कोई ओज नहीं, कोई तेज नहीं। कहते हैं इतना जप किया, इतना तप किया! उधार का धन्धा बन्द करो। शब्द-संग्रह, विचार-संग्रह का लोभ है; इसको छोड़ दें; और जो अब तक संचित है, इस को झड़ जाने दीजिये। फिर विशुद्ध शून्यता में खड़े हो जायेंगे।

जीवन की अविभाज्यता में, विशुद्ध शून्यता के धरातल पर जब खड़े हो जायेंगे, तब फिर आगे सवाल उठेगा कि अब कहाँ ? अब किधर ? अब कैसे ?आज तो किधर, कैसे, कहाँ पूछने का अधिकार हमें प्राप्त नहीं है, क्योंकि हमारे पास निष्कर्ष हैं। हमारे पास दूसरों की अनुभूतियों पर आधारित निष्कर्ष हैं। दूसरों के उधार लिये हुये विचार हैं। तो हमको तो blue-prints (ख़ाके) मालूम हैं कि साक्षात्कार होने पर ऐसा होता है, मुक्त पुरुष ऐसा होता है, स्थितप्रज्ञ होने पर ऐसा होता है, liberation (मुक्ति) का यह अर्थ है, यह सब भर के रखा है। Encyclopeadia (विश्वकोश) इतना नहीं मिलेगा। हिन्दुस्तान के आदमी को पूछिये अध्यात्म के बारे में! वह एकदम बता देगा। बौद्धों का निर्वाण क्या है ? वेदान्तियों का साक्षित्व क्या है ? जैनों का कैवल्य क्या है ? श्रीमद् राजचन्द्र की निर्ग्रन्थता क्या है ? उसको व्याख्या पूछिये। धड़ल्ले के साथ निकलेंगे एक-एक बतलाने ! और फिर वह समझता है कि, मैं जानता हूं। मैं कुछ नहीं जानता, मुझे कुछ भी मालूम नहीं हैं, इस अज्ञात के भान में निर्दोषता का जन्म होता है। उधार के व्यवहार को ज्ञान समझने वाले में अहंकार पुष्ट होता है। और अपने ही अज्ञान, अपने ही अभाव के परिचय में नम्रता का जन्म होता है। वह

विनम्रता, उसको विनम्रता कहिये, आर्जव कहिये, उसको ऋजुता कहिये । चाहे जितने नाम दीजिये । भारतीय भाषा में उनके लिये अनेक-अनेक शब्द हैं । एक-एक शब्द की छटा है, अर्थ की । उसमें आज मैं जाना नहीं चाहती हूँ । आज की सन्ध्या में तो विषय-प्रवेश कराना है ।

तो, द्विसत्तावाद के निराकरण के बाद अभाव और अपने अज्ञान का परिचय-उसका जीवन्त प्रत्यय होना चाहिए । फिर छटपटाहट होती है । फिर होगी बैचेनी, कि मैं कैसे सत्य को पहचानूं ? मैं कैसे जीवन का अर्थ जानूं ? हम जाते हैं-सत्संग में बैठते हैं । हमारी जिज्ञासा यह शाब्दिक या बौद्धिक जिज्ञासा है । आज हमारी जिज्ञासा भी अहंकार की चेष्टा है । विशुद्ध जिज्ञासा है नहीं । क्योंकि मन में होता है कि यह कैसे होता है, ज़रा चलकर देखेंगे । इसका विचार क्या वेदान्त से मिलता है, क्या गांधी से मिलता है ? यह विचार 'थियोसोफ़िस्ट' से मिलता है ? यानी परीक्षक बनकर निष्कर्ष सुनने को हम जाते हैं । भारतवर्ष में आध्यात्मिक परिभाषा का अतिपरिचय होने के कारण परीक्षक ही हैं सब, साधक कोई नहीं । तीन दिन का जो अवसर आप मित्रों ने कृपा पूर्वक मुझे दिया है-I am not going to spare a single person amongst you (मैं आप लोगों में से एक को भी बख्शूँगी नहीं) मेरी और आपकी मैत्री की यह कसौटी है । मुझे जो कुछ कहना है-नि:संकोच कहूँगी । तभी आपके आतिथ्य के लिये मेरी कृतज्ञता व्यक्त होगी । इसमें मान-अपमान, इसका ख्याल आप मत रखियेगा, न मेरे पास वह था, न कभी रहेगा । लेकिन हम अपने-अपने जीवन की ओर तटस्थ होकर एक research scholar (शोध-छात्र) की तरह, वैज्ञानिक द्रष्टि से देखना अगर सीख जायें इन तीन दिनों में ! कहां-कहां हम लोग किस प्रकार के मिथ्या व्यवसाय में पड़ते हैं । उससे हमारी क्या हानि होती है, इसको भी हम पहचानने लगेंगे तो तीन दिन में एक बहुत बड़ा कदम हमने उठाया ।

यह जो दम्भ और पाखंड भारतवर्ष में है उसे तोड़-फोड़ कर फेंक देना चाहती हूँ । अध्यात्म और धर्म के नाम पर इस पाखण्ड से देश का बहुत नुकसान हुआ है । व्यक्तियों के जीवन का विनाश तो है ही, और ऐसी गंभीर बेला में, जबकि संसार में या तो विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय होगा, या तो मानव का सर्वनाश होगा, इतनी गंभीर बेला में खुशामद में और 'अहो रूपम्-अहो ध्वनि:' में समय गँवाना ! इसलिये कहती हूँ कि अध्यात्म के बारे में हम कुछ नहीं जानते हैं । अरविन्द का ग्रन्थ पढ़ा,

रमण महर्षि का ग्रन्थ पढ़ा 'त्रिपुरासुन्दरी-रहस्य' पढ़ा, 'डिक्शनरी' में, शब्द-कोष में उसका अर्थ देख लिया और प्रतीत हो गया कि मैं जान गया। यह जानना नहीं, यह जीवन का अर्थ समझना नहीं। शब्द के अर्थ का एक गर्भगृह होता है। शब्द का कलेवर है, मात्राओं से बना हुआ। उसके गर्भगृह में अर्थ है। उसके द्वार खोल कर भीतर जाना पड़ता है। और वह जो अर्थ का आलोक है, उस आलोक में खड़े होना पड़ता है। एक-एक शब्द के लिये यही करना होगा। ''अमन्त्रम् अक्षरं नास्ति।'' कोई अक्षर नहीं जिससे मन्त्र की सिद्धि न हो, जिसमें मन्त्र शक्ति न हो, और फिर भी शब्दमय व्यवहार करने वाले हम, निस्तेज, निष्प्राण रह जाते हैं। क्योंकि शब्दों पर हम तैरते हैं, शब्दों के भीतर जाकर अर्थ का आलोक उपलब्ध नहीं करते हैं। तो यह अभाव का परिचय, अपने अज्ञान का परिचय-यह है दूसरा कदम। प्रारम्भ करने से पहले, यानी साधनावस्ता के पहले की बात कर रही हूँ, किस धरातल पर खड़े होना है, तो इस धरातल की सिर्फ़ मीमांसा कर रही हूँ। यह है धरातल। मालूम नहीं है कुछ। तो फिर कौन साक्षात्कारी है, कौन नहीं है, कौन पहुँचा हुआ है, कौन पहुंचा हुआ नहीं है। यह सारी जो अभद्र भाषा है, उसका व्यवहार चलता है। पूछते हैं न? आप लोग भी जाते होंगे सत्संग में, सभाओं में। फिर लौट कर एक दूसरे से पूछते हैं-''क्यों भाई? वह अमुक व्यक्ति पहुँचा हुआ है कि नहीं?'' अच्छा, इसका मतलब है कि आप ऐसी अवस्था में जाकर खड़े हैं कि देखते हैं कि कौन पहुंचा हुआ है, कौन पहुंचा हुआ नहीं है। कितना घोर अहंकार।

तो, विनम्रता के या शून्यता के धरातल पर जब खड़े होते हैं, तो अहंकार को इधर से उधर रत्ती भी क़दम उठाने का अवकाश नहीं मिलता। विनम्रता में एक अद्भुत शक्ति है। ''मैं कुछ नहीं जानता, मुझे मालूम नहीं है, मेरी कोई अनुभूति नहीं है।'' यह जिसने पहचान लिया उसके सर्वांग से जो विनम्रता झरने लगती है, उसकी वाणी में, दृष्टि में, विद्यार्थी की जो नम्रता की झलक उठती है, that is a dimention of life- वह जीवन का आयाम है, वह रिक्तता है। और उस रिक्तता के ऐश्वर्य का जिन्होंने अनुभव नहीं किया वे साधना कभी नहीं कर पायेंगे। जिसने बुद्धि और स्मृति को ठूंस-ठूंसकर भर दिया वह क्या साधना करेगा? वह क्या ध्यान करेगा?

तो अभाव के अपने अज्ञान के परिचय में और जीवन्त प्रत्यय में एक प्रकार की अद्भुत शून्यता की अनुभूति आती है कि मुझे कुछ भी मालूम नहीं है। ''मैं क्या

करूगा, मैं कहाँ जाऊँगा'', एक अव्वल शून्यता, अव्वल रिक्तता । बच्चों में वह नम्रता सहज है । वह पूछता है यह क्या है ? इन्द्रधनुष के रंगों को वह जानना चाहता है । समुद्र की लहरों के ऊपर उठने वाली फेन को वह पहचानना चाहता है । वैसे फिर हमारी वृत्ति होगी कि जीवन का यह जो क्षण है, यह क्षण यह घटना मेरे सामने आया, उसका क्या अर्थ है; यह व्यक्ति मेरे सामने आया, इसे नज़र से मुझे देख गया इसका क्या अर्थ है ? फिर जीवन का प्रत्येक क्षण अपनी मुठ्ठी में बाँध कर चिरन्तन सत्य का जो सन्देश लेकर आता है, वह खोल कर देखने की इच्छा, वह जिज्ञासा है । उस शून्यता में उस जिज्ञासा का जन्म होता है । ''अयातो ब्रह्म-जिज्ञासा ।'' यह विनम्र जिज्ञासा है, अंग्रेजी में जिसको आप लोग enquiry of humility-कहेंगे, विनम्रता के बिना जिज्ञासा नहीं । तो जीवन में प्रति क्षण, प्रति व्यक्ति, प्रति घटना का जो अर्थ है उसको खोल-खोलकर देखने की इच्छा होगी । आज तो हम ऐसे बधिर हो गये हैं, ऐसी बधिर चित्तवृत्तियाँ, बधिर बुद्धि हो गई है, कि २४ घण्टे में प्रभु घटनाओं की एक संपत्ति और ऐश्वर्य हमारे सामने फेंकता जाता है, घटनाएँ घटती जाती हैं, व्यक्ति आते हैं, जाते हैं, सामने से, बोलते हैं, हमसे कोई रूठता है, कोई नाराज़ होता है, कोई आलोचना, कोई प्रशंसा करता है, लेकिन उसमें से हम कुछ सीख नहीं पाते, न उसमें से कोई आनन्द का सेवन कर पाते हैं । आनन्द का सेवन-जो हमारा मूल स्वरूप है ।

स्पन्द-विज्ञान-science of vibrations आजकल nuclear physics (आणविक भौतिकी) के लोग उस तरफ़ मुड़े हैं-science and metaphysics of vibrations-स्पन्द विज्ञान । इस देश में तन्त्र-शास्त्र में वह हम पायेंगे । तो वह जो स्पन्द-विज्ञान है, उसमें कहते हैं कि आख़िर आनन्द की अनुभूति में ही, जो स्पन्दन या vibration हैं, उसकी अनुभूति में ही रस मिलता है । मैंने कहा आनन्द का सेवन हम कर नहीं पाते, दैनिक जीवन में । क्योंकि घटनाएँ घटती हैं, क्षण चिरन्तन सत्य के सन्देश लाता चला जाता है, खोल कर उसको देख नहीं पाते । क्योंकि हम समझते हैं कि हमको तो सब मालूम है । यह व्यक्ति कैसा है, इसने यह क्यों कहा, यह हम जानते हैं । हम सब कुछ जान बैठे हैं । कौन भला है, कौन बुरा है । किसके मन में क्या हेतु है, सभी कुछ, हमको भ्रम है कि, हम जानते हैं । उससे दैनिक जीवन से हमें समृद्धता प्राप्त नहीं होती । एक दिन और गया । न दिन हमें ताज़गी दे जाता है, न रात हमें ताज़गी देती हैं । न मानवों का सम्पर्क हमें कोई सौरभ, भीतर कोई ताज़गी देता है ।

कुछ नहीं होता । ऐसे-के-ऐसे थके-मांदे सोते हैं, थके-मांदे उठते हैं । जीवन की जबरदस्ती है; इसलिये कमाना है, (the drudgery of routine is dragging us, the moment will come and the body will fall away and you will call it death.) ऐसा दैनिक जीवन हमारा शहरों में, देहातों में हो गया है । मृत्यु की प्रतीक्षा करते रहने को कोई जीवन नहीं कहते । और क्रियाओं को सुबह से रात तक करते रहना कोई जीवन नहीं हैं । और स्मृति में जो संचित शब्द, विचार हैं उनको प्रतिक्रिया के रूप में फेंकने को कोई कर्म नहीं कहते । इसलिये हम जी नहीं पाते, मेरे भाईयों, हम जी नहीं पाते । शवयात्रा शिवयात्रा नहीं बन पाती । जीवन आनन्द का कल्लोल बन नहीं पाता ।

तो, यह नम्रता में से जिज्ञासा का जन्म भीतर होने दीजिये । जिज्ञासा की प्रसव-वेदना बड़ी भयानक होती है । उदाहरण से जल्दी समझ में बात आती है । आजकल के ज़माने में विवेकानन्द का, रामतीर्थ का उदाहरण परिचित है । सोलह साल की उम्र नहीं हुई तो पूछते घूमते थे वे नोरेन (नरेन्द्रदत्त) "मोशाय, (महाशय !) आपने देव को, भगवान् को देखा है ?" फिर वह देवेन्द्रनाथ टैगोर हैं, तो चले उनकी नौका पर । 'हाउसबोट' में हैं तो चढ़े वहाँ । छलाँग लगाई गंगा में और जाकर सामने खड़े हो गये । भीगा हुआ बदन है-बालों से पानी झर रहा है । पूछते हैं-"मोशाय, आपने प्रभु को देखा है ?" जवाब नहीं दे पाये वे । उस बच्चे को ही पूछने लगे-"अहो-तू कौन है ? तेरी आँखे योगी जैसी हैं ।" यह तो समझ गये कि उन्होंने कुछ नहीं देखा । फिर छलाँग लगाई, आये वापस । दक्षिणेश्वर पहुँचे, तो रामकृष्ण को पूछते है-"भगवान् देखा है ? दिखा सकते हैं ?" वह बेचैनी, जिज्ञासा का आशय है । The content of enquiry is divine discontent जिज्ञासा का आशय है एक दिव्य असंतोष कि कहीं धन छिपा हुआ है, मुझे मिलता नहीं । जीवनका अर्थ छिपा है मेरे सामने । लेकिन मुझे मिलता नहीं । कैसे पहचानूं ? तो फिर खायेंगे, पियेंगे, सोयेंगे । लेकिन यह जो निदिध्यास है, वह जीवन में चलता रहेगा । उसको कैसे जानूँगा ? पहचानूँगा ? बच्चे को अखरोट का फल दीजिये तो वह नहीं फोड़ सकेगा, दरवाज़े में रखेगा, पत्थर लाएगा । बादाम दीजिये । उसके छिलके को तोड़ने के लिये बच्चा कितना विकल होता है । तो ये जीवन में जितने छिलके हैं-उनको तोड़ने-फोड़ने के लिए विकलता, आकुलता आती है, वह है जिज्ञासा । 'चाहे जो कीमत चुकाऊँगा । लेकिन सत्य को

पहचानूँगा। चारो तरफ़ मैं अपूर्णता से घिरा हुआ हूँ। वह पूर्णता कहा छिपी हुई है, मैं देखकर रहूँगा। पूर्णता के सागर में डुबकी और गोता लगाकर रहूँगा।' यह जिज्ञासा की अग्नि, प्रज्वलित होने पर, जीवन में बड़ी धाँधली मचा देती है। फिर स्वजन स्वजन नहीं रहते। परजन परजन नहीं रहते। फिर अपना-पराया भेद मिट जाता है। दुनिया में चारों तरफ़ आँखे खोजती हैं-कैसे पहचानूं? कैसे जानूं? सीखूँ? सीखने के लिए तैयार रहता है। भले-बुरे की, पाप-पुण्य की, नीति-अनीति की रेखाएँ धुल जाती हैं। जिज्ञासा की दुनिया बड़ी 'रोमान्टिक' (रूमानी) है, जी। बड़ी रोमहर्षक, बहुत मधुर, बहुत मनोहर। उस जिज्ञासा की अग्नि, उसकी ज्योति एक बार जल उठी-वह है धर्म का प्रारम्भ। अब आ गया ऐसा मनुष्य, जिसको जिज्ञासा का वरदान उपलब्ध हुआ। फिर उसके धर्म-जीवन का, अध्यात्म-जीवन का प्रारम्भ हुआ। तब तक प्रारम्भ नहीं।

स्वायत्त जिज्ञसा चाहिए। कहा-मनुष्य के जीवन का साध्य है आत्मसाक्षात्कार। इसके लिये मैं भी आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करना चाहता हूँ। यह हो गई derived (उधार) जिज्ञासा। inferred (अनुमान-जन्य) जिज्ञासा! उधार जिज्ञासा! यह बुरी बात नहीं है। लेकिन यह हमको साधक की भूमिका तक ले नहीं जाती। यह बौद्धिक जिज्ञासा की उलझन में, शब्दों के जाल में अटकाये रखती है। अच्छा है, कुविचार से सुविचार अच्छा। कदाचार से सदाचार अच्छा। लेकिन वह जो सापेक्ष अच्छाई है-वह निरपेक्ष धर्माचरण तक नहीं ले जाती। अध्यात्म के महाद्वार तक नहीं ले जाती। इसलिये मैंने कहा कि स्वायत्त जिज्ञासा का जन्म होना चाहिये। सच बताइए, हमको और आपको क्या पड़ी है? यह जो सन्तों के जीवन में उन्मुक्त आनन्द हैं-स्त्री पुरुष के भेदातीत जो विशुद्ध मानवता है और मानव के छिलके भीतर छिपी हुई जो चिन्मय सृष्टि है, उसमें जाने की हमको क्या पड़ी है? मान लीजिये नहीं जायेंगे तो हमारा कोई नुकसान है उसमें? नौकरी है, व्यापार है, घर-गृहस्थी है। मोटर है, बँगला है। यह सब करके यदि समय मिले तो जायेंगे उसमें; सिनेमा थियेटर में बैठते हैं, तो बैठेंगे सत्संग में। It becomes an emotional and intellectual pastime (सत्संग तो भावनात्मक और बौद्धिक 'जी-बहलाव' बन कर रह जाता है।) अध्यात्म के रास्ते जाना ही नहीं चाहिए। अपने लोगों को मैं कहती हूँ-भले, जाना ही नहीं उस रास्ते से। जाओगे तो पता नहीं हमारे जीवन के साथ वह क्या-क्या करेगा? आपके

जीवन के जो सारे मूल्यांकन हैं, total evaluation of life-उसको उथल-पुथल कर रख देगा । इसलिये जाओ ही नहीं उसमें । यदि जाओगे तब तो आज जिस धरातल पर खड़े हैं, वह पाँव के नीचे से खिसक जायेगा । आज जहाँ भेद हैं वहाँ भेद नहीं रहेंगे । जहाँ नहीं हैं, वहाँ खड़े होंगे । क्या-क्या होगा ? इसलिये यह जो स्वायत्त जिज्ञासा की अग्निशिखा है, उसका जन्म होने से पहले सावधान रहिये और ऐसे शिविरों में कभी न जाइये । ऐसे शिविरों में जाना और विद्रोह की वाणी सुनना भी अपने जीवन के साथ खेल करना है । या तो उसमें से पाखण्ड आयेगा कि हम आध्यात्मिक हैं और दूसरे जो जाते नहीं हैं वे आध्यात्मिक नहीं है; या तो उसमें से शब्द-बाण, शब्द तीर लगता गया तो आपके जीवन को उलटकर रख देगा । 'उलट भई मोरे नैनन की ।' इसमें से कुछ एक होगा और दोनों तरफ़ खतरा है । इसलिये मैं आपको कल या परसों इस विषय में आगे बढ़ने के पहले ही सावधान कर देती हूँ ।

लेकिन यदि जीवन के अर्थको जानना ही है, सत्य को पहचानना ही है, प्रभु कैसा है ? वह जो प्रेम-स्वरूप प्रभु है, वह प्रेम क्या है ? इसको पहचानना है, तब तक जीने में मज़ा नहीं आता, ऐसी लगन लग पाये, ऐसी बेचैनी लग जाये, तब फिर आगे स्वाध्याय के, ध्यान के, साधना के-जो भी आप क्रम कहिये, उसके अधिकारी हम बन जाते हैं । पहले कहते थे न लोग कि अनधिकारी को नहीं कहेंगे । यानी अधिकार क्या है ? receptivity-ग्रहणशक्ति को अधिकार कहा है । संवेदनशीलता और जिज्ञासा की जिसकी तैयारी हो वह अधिकारी है; और दूसरी कोई बात नहीं । अधिकारी-अनधिकारी शब्दों के साथ अलग-अलग भाव लगा रखें हैं लोगों ने और उसका एक आडम्बर बनाया है । लेकिन यह जिज्ञासा ही अध्यात्म में अधिकार है । दूसरे किसी अधिकार की आवश्यकता नहीं । एक ही अधिकार, यानी पात्रता । 'अधिकार' का यदि निरुक्त देखने जाएँगे तो उसमें अर्थित्व ही अधिकार है । 'अर्थित्वम् एव अधिकारः ।' यानी आपको प्राप्त करने की इच्छा है । जैसे 'विद्यार्थी' है न-''विद्या एव अर्थो यस्य स विद्यार्थी ।'' यानी विद्यार्थी यह है जिसे विद्या प्राप्त करने की इच्छा है । ''सत्यमेव अर्थो यस्य स साधकः ।'' व्याख्या ही करनी पड़ी तो सत्य ही जिसक अर्थ है-'अर्थित्व' जिसको प्राप्त हो गया है सत्य के लिए-वह हो गया साधना का अधिकारी । अब साधना क्या है ? साधना का प्रारम्भ, जहाँ हम हैं वहां, दैनिक जीवन चालू रखते हुए

कैसे हो सकते है ? इसमें कोई अपनी मदद कर सकता है या नहीं ? मार्गदर्शक की आवश्यकता इसमें है ? है, तो कहाँ तक है ? किस प्रकार का मार्गदर्शन, कोई भी मार्गदर्शक कर सकता है ? ऐसे कौन से पथ हैं जहाँ कोई मार्गदर्शक काम नहीं आता ? इस सबकी चर्चा हमको कल छेड़नी है । लेकिन जिज्ञासा तक आज आपको पहुँचा देना था ।

भाई, अध्यात्म खेल ही है । आजकल उसको बुद्धिजीवियों ने, सम्पन्न वर्गों ने-भारतवर्ष में ही नहीं, दूसरी जगहों में भी एक शौक़ का विषय बना लिया है, एक 'हॉबी' बना लिया है । तो ऐसा नहीं है । यह तो ऐसा व्यसन है कि फिर उससे किसी का उद्धार नहीं हो सकता ।

व्यसनानि सन्ति बहूनि, व्यसनद्वयं केवलं व्यसनम् ।
व्यसनं विद्याभ्यसनं, व्यसनं वा हरिपादसेवनम् ।।

इस प्रकार का व्यसन लग जाये, आत्मसाक्षात्कार, आत्म-रति, आत्मरत जीवन, उसका चसका लग जाय तो वहाँसे लौटना मुश्किल हो जाता है । फिर 'यद्गत्वा न निवर्तन्ते' क्योंकि जिज्ञासाका अपना momentum होता है, अपनी गति होती है, यह आप को ले चलती है । आपको आगे ही आगे ले चलती है । सदियों के संस्कार जीवन्त जिज्ञासा के सामने ठहरते नहीं हैं । इसलिये कहा है-'अपि चेत् सुदुराचारो ।' उसमें दुराचारी भी रहे । एक बार जिज्ञासा की ज्योति जल उठी, तो शतकानुशतकों के संस्कार, भले बुरे, सब उसमें जल जायेंगे । और उसी के आलोक में फिर चेतना आगे बढ़ती चली जायेगी ।

आपके सामने मैंने तीन मुद्दे रखे । एक जीवन के भौतिक और पारमार्थिक, व्यावहारिक और आध्यात्मिक ऐसी भिन्न सत्ताएँ नहीं हैं । जिन्होंने भिन्न सत्ताओं की कल्पना की, जो भिन्न सत्ताओं की कल्पना करते हैं, वे दु:ख के बीज बोते हैं । और अपने व्यक्तित्व में संघर्ष के बीज बोते हैं । जीवन एक है, अविभाज्य है । उसमें शरीर है तो शारीरिक जीवन है। मन है तो मानसिक जीवन है और जीवन को watertight compartments (जलरोधक कक्षों) में बाँट देना कि यह व्यावहारिक है, यह पारमार्थिकहै, इसके लिये यह नियम, उसके लिये वह नियम, इन दो नियमों में संगति रहे न रहे, हमें कोई परवाह नहीं-, तो सत्ताओं की भिन्नताकी कल्पना, भ्रम रखना ही

दु:ख और संघर्ष के बीज बोना है, तनाव के बीज बोना है । इस भ्रम का निराकरण पहले करें ।

यह निराकरण करने के बाद जो प्रचलित धर्मग्रन्थ हैं, उनसे या सन्तों से, ऋषियों से, मुनियों से जो सुना है-यह शब्द का और विचारों का उधार, वह संग्रह, वह संचय का मोह छोड़ दें । धन का मोह छोड़ना आसान है, भाईयो ! विचारों का मोह छोड़ना बहुत मुश्किल है । धन के संग्रह का त्याग करके एक रात में उसे ठोकर लगा कर आदमी निकल जायेगा । कइयों ने ऐसा किया है । वह चाहे आगे चलकर भगवान् गौतम बुद्ध हों, चाहे आगे चल कर मुनि नेमिनाथ बनें या और कुछ बने हों । धन के संग्रह को ठोकर मारना आसान है । अपनी संस्कार-राशि और विचार-राशि जो इकट्ठी करके रखी है, उसका ममत्व छूटना बड़ा मुश्किल है । वह तो कर्ण के कवच-कुण्डल जैसे है; जो निकलना मुश्किल है । उस संस्कार-राशि का तो हमारा सूक्ष्म शरीर बना हुआ है । और वह जो विचारों की राशि है, वही तो हमारी सूक्ष्म काया है । आपने शायद देखा होगा अभी-अभी अमेरिकन डॉक्टरों ने किताब लिखी है कि यह जो स्थूल शरीर है, हाड़-मांस का, उसके भीतर एक 'ईथर' की 'बॉडी' (सूक्ष्म काया) मनुष्य के भीतर रहती है, ऐसा वैज्ञानिक शोध हुआ है । मनुष्य का जो शरीर है, उसके भीतर उसकी एक सूक्ष्म काया है । तो उनको पता चला था अब तक कि एक thought body है, यानी एक विचार-काया है । लेकिन अब वे कहते हैं कि यह विचारसे भी सूक्ष्म है । उसको उन्होंने ether (ईथर) नाम दिया है । तो यह जो (ईथर) का शरीर है वह मरता नहीं है । ऐसा शोध एक physicist (वैज्ञानिक) को अभी हाथ लगा है । उसकी तफ़सील में नहीं जाऊँगी लेकिन किताब बड़ी रोचक, पढ़ने लायक है । और वह कहता है, आखिर में, उपसंहार में कि शायद पूर्व में लोग जो कहते हैं हज़ारों वर्षों से कि यह देह मरता है, फिर भी हम नहीं मरते । तो हो सकता है कि शरीरों के भीतर infinite (अनन्त) शरीर होंगे-हमको उसका पता नहीं, यह हो सकता है । ऐसे एक वाक्य में उन्होंने उपसंहार किया है । तो मैं कह रही थी कि विचार-राशि का और संस्कर-राशि का त्याग करना या उसका ममत्व छूटना बड़ा मुश्किल है । 'येन त्यजसि तत् त्यज ।' धन छोड़ना आसान है । उससे अहंकार पुष्ट होता है कि मैंने धन छोड़ दिया । मैंने स्त्री का त्याग किया, मैंने पुत्रों को छोड़ दिया । मैंने संस्था का त्याग किया । करने वाला मैं तो बचता ही है ! और उसी मैं के भीतर जो

संग्रह करके रखे हैं, संस्कार, विचार,उन पर अहंकार पलता है। अहंकार की पुष्टि के कुछ न कुछ चाहिये। घर गया, द्वार गया, पत्नी-पुत्र गया, प्रतिष्ठा गयी। कम से कम विचार तो मेरे हैं। इसी सूक्ष्म अहंकार में से भारत में आध्यात्मिक संप्रदाय बने। नहीं तो संन्यासियों को सम्प्रदाय बनाने की क्या जरूरत थी ? लेकिन स्थूल त्याग के बाद यह जो सूक्ष्म शरीर है, उसमें जो केन्द्र बना कर बैठे हुए हैं, उसका ममत्व नहीं छूटता। ये उधार लिये हुए विचार, अनुभूतियों के वर्णन-परक शब्द, ये शास्त्र-संग्रह जो हैं इनको पहचान कर, उनको झरने दीजिये। तब विनम्रता का जन्म होगा। विनम्रता में शून्यता का आलोक है। उस शून्यता के आलोक में जिज्ञासा की ज्योति-शिखा आपको दिखती है वह फिर मनुष्य को किस प्रकार आगे ले जाती है इतना विषय आज मैंने रखा।

--

- अपने ही अज्ञान के परिचय में नम्रता का जन्म होता है। आधार के संग्रह को ज्ञान समझने में अहङ्कार पुष्ट होता है। जो ज्ञान और विद्वता का बोझ ढोता है, वह कभी नम्र नहीं हो सकता।
- नम्रता वीरों का शृङ्गार है। असमर्थों की वाणी और व्यवहार में नम्रता की सुगन्ध कहाँ से आयेगी ?
- विनम्रता में अद्भुत शक्ति है, वह जीवन का आयाम है।

द्वितीय प्रवचन

दिनांक १८-११-१९६७

साधना शब्द का भी इस देश में दुरुपयोग हुआ। इतनी निर्घृणता के साथे शब्दों का हम उपयोग करते हैं कि शब्दों के चेहरे देखने की कोमल संवेदनशीलता हममें अगर होती तो हरेक शब्द के आँसू हमें दिखाई पड़ते।

सच जानने की स्वायत्त जिज्ञासा, जीवन का अर्थ समझने की, जीवन की सही जिज्ञासा जब जाग उठती है, तो मनुष्य प्रारम्भ कहाँ से करे ? शुरू करे अपने शरीर से। मैंने कल कहा था कि संसार, जिसको आप जड़ कहेंगे, केवल पार्थिव कहेंगे, ऐसा कुछ भी नहीं है। एकाध मिट्टी का कन लेंगे तो वह भी चिन्मय है, चेतनामय है; यह आपका शरीर चेतनामय है। तो, स्पन्द का परिचय पाने के लिये शुरूआत अपने शरीर से करें कि हमारा अपने शरीर से परिचय है या नहीं। सत्य का परिचय पाने के लिये शुरूआत अपने शरीर से करें कि हमारा शरीर पार्थिव है या नहीं। निकट है, तो हमारा शरीर सबसे अधिक निकट है और फिर कितने व्यक्ति हममें से होंगे जिनको अपने शरीर से परिचय और मैत्री है, हृदय में इसका स्वीकार जिन्होंने किया हैं। शरीर का स्वरूप क्या है, यह जानने वाले कितने होंगे ? यह जो physical organisation शारीरिक संघटन है, किन cells (कोशाणुओं) से बना होगा ? एक में से अनेक 'सेल्स' कैसे बनते हैं muscles (माँस-पेशियाँ) कैसे बनती हैं, nervous system (ज्ञानतन्तु व्यवस्था) क्या है, यह सब कुछ भी जानते नहीं। इस शरीर में रहते हैं, लेकिन उसे जानते नहीं। उसकी क्या कार्य-प्रणाली है, कौन-सा function (व्यापार) है यह भी नहीं जानते। न सामान्य-जन जानते हैं, न डॉक्टर जानते हैं।

यह जो अद्भुत रचना है मनुष्य के शरीर की - biological evolution, consumation of biological evolution is the creation of a human body (प्राणिगत विकास का चरम उत्कर्ष मनुष्य-शरीर की रचना में है।) ऐसा

सुन्दर यह शरीर है। लेकिन हम जानते नहीं। इससे प्रारम्भ करें; यह है क्या ? और देखें कि मेरी glandular system, nervous system (ग्रन्थियों और ज्ञानतन्तुओं की व्यवस्था) आरोग्यमय है ? इसमें सौष्ठव है ? इसमें सौन्दर्य है ? जो पचन की क्रिया है, वह ठीक चलती है ? निद्रा क्या है ? किस प्रकार लगती है ? अन्न खाते हैं तो आहार का सम्बन्ध किस प्रकार शरीर से हैं, कोई नहीं जानता। लोग इसको भौतिक जीवन कहते हैं। मैं कहती हूं आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ ही वहाँ से है; साधना का प्रारम्भ वहाँ से है।

शरीर के प्रति उदासीनता क्या है ? शरीर का अस्वीकार है। शरीर का परिचय न हो तो साधना का प्रारम्भ नहीं होता। इसलिये आप इस देश में देखेंगे कि आध्यात्मिक अनुभूतिसम्पन्न व्यक्ति जो कहलाते हैं, उनके शरीर की हालत देखिये; स्वस्थ, सौष्ठवपूर्ण सुन्दर शरीर है, ऐसा नहीं है। या तो भोगासक्त हों, या तो अनासक्त हों। मेरी दृष्टि से आसक्ति और अनासक्ति दोनों ही दोष हैं। एक में शरीर की तरफ़ भोगासक्त दृष्टि है और दूसरी तरफ़ जिसे अनासक्ति कहते हैं वह शरीर के प्रति अस्वीकार और उदासीनता है। और शरीर के प्रति आसक्ति और वैराग्य दोनों में एक तरफ़ से भोगासक्ति, दूसरी तरफ़ अनासक्ति है। दोनों के बीच भारतवर्ष का जीवन, आध्यात्मिक और धार्मिक जीवन चलता है। और यह शरीर का अपमान है। या तो उसके प्रति अनुदारता करते हैं, उपेक्षा करते हैं; चाहे वह साधु हो या संन्यासी, उसकी उपेक्षा करते हैं और भोगासक्त उतना ही अपमान करता है जितना की वैराग्य के नाम पर कोई साधु संन्यासी करता है।

तो राग और विराग-ये दोनों दो छोर हैं अन्तिम, इनके बीच जो मध्यस्थ बिन्दु है, वैज्ञानिक तटस्थता का जो बिन्दु है, वह साधना का प्रारम्भ है। इसलिये आपको अपने शरीर से दोस्ती करनी चाहिये, दुश्मनी नहीं। ये शरीर की इन्द्रियाँ, ये शरीर के अवयव, उनकी आवश्यकताएँ, उनकी वैज्ञानिक पूर्ति, जीवन के सौन्दर्य का प्रारम्भ तो वहाँ होता है। और उसको किस प्रकार का आहार देंगे, किस प्रकार की व्यायाम-पद्धति से उस शरीर के नस-नस को हम संवेदनशील रखेंगे, चपल रखेंगे, जिस समय जिससे काम लेना होगा उससे काम ले सकेंगे। The beginning of self-knowledge is from the acquaintance and friendship with your own body आत्म-ज्ञान का प्रारम्भ शरीर के साथे परिचय से होता है। और यह जब

तक नहीं होता है, तब तक सही शुरूआत नहीं, क्योंकि उसी शरीर में बैठना, उसी के साथ रहना, लेकिन परिचय के अभाव में, मैत्री के अभाव में उसके साथ एक 'हार्मनी' (संवादिता) हो नहीं पाती । या तो थका हुआ शरीर या जिसमें बहुत है, tension है तनाव ऐसा शरीर, जिसमें पाचन-शक्ति काम नहीं करती है; इसलिये शरीर में भारीपन लगता है । आप हम देख लेंगे अपने ही घर में, अपने ही व्यवहार में । घर जाकर ज़रा सोच लें कि मेरा शरीर चौबीस घण्टें में किस हालत में रहता है । एक खिले हुए गुलाब के फूल जैसा उसमें ताज़ापन है, ताज़गी है ? जब चाहे जिस अवयव से जैसा काम चाहें वैसा ले सकते हैं ? कोई यदि मोटर चलाने के लिये बैठेगा और फिर मुझ से कहेगा कि इसका 'ब्रेक' काम नहीं करता, 'गिअर जाम' हो गया है । तो उससे मैं कहूँगी कि भले आदमी पहले क्यों नहीं देखा ? तो जो जीना चाहते हैं उन्हें अपना बाहन जो है शरीर, उसे पूरा कार्यक्षम रखना (to keep in order) चाहिये, यही धर्म है ।

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।"

तो धर्म यानी हिन्दु धर्म, इस्लाम धर्म, क्रिश्चियन धर्म नहीं । 'धारणात् धर्म इत्याहुः ।' यह धारण जिन नियमों से होता है, वही धर्म का तत्त्व है ।

साधना का प्रारम्भ शरीर से करें । यह इस देश में कहने की बहुत आवश्यकता है और यह हम लोग करते नहीं । शरीर की आवश्यकता की पूर्ति के लिये अनुरक्तता या विरक्तता रखते हैं । इसलिये जब ध्यान करने बैठेंगे, आत्मचिन्तन करने बैठेंगे तो शरीर साथ नहीं देता । मेरुदण्ड है, इसका महत्त्व का स्थान है । इसे इतना महत्त्व क्यों दिया गया ? यह तो हमारी श्वास और प्रश्वास की क्रिया है, यह श्वास उठता कैसे है, कहाँ जाता है ? श्वासोच्छ्वास की क्रिया जिन प्राणों के आघात से चलती है वह प्राणतत्त्व क्या है ? निद्रा आती है । यानी होता क्या है ? विचार उठता है, वहाँ से उठता है, विकार उठता है, कहाँ से उठता है ? मैं समझती हूँ कि आपके सामने, आप जो यहां पर सुशिक्षित भाई बहनें बैठी हैं, इससे अधिक विस्तार में इस विषय में जाने की मुझे ज़रूरत नहीं है । आपको, जिस प्रक्रिया से अनुकूल पड़ता हो, उस प्रक्रिया से शरीर स्वस्थ, सुन्दर, निर्मल, अनामय, निरामय रखना, यह पहला धर्म है । जब चाहे तब खायेंगे, चाहे जो देखेंगे, चाहे जैसा सोयेंगे, चाहे जैसी निद्रा आयेगी और फिर जाते

हैं, सत्संग में बैठते हैं, तो हमारा मन लगेगा, ध्यान करने बैठे हैं तो ध्यान लग जायेगा, यह आशा एक निरर्थक आशा है। ऐसी व्यर्थ की आशा है, हो नहीं सकता। शरीर की जो त्रुटियां है, जो खामियाँ हैं, उनको लाँघ जाने में समर्थ कोई व्यक्ति निकलेगा, यह बात अलग है। लेकिन साधना का प्रारम्भ शरीर की निरामयता से, निर्मलता से, सौन्दर्य से, सौष्ठव से है, यह चीज़ भारतवर्ष भूल गया है। शहरों में रहते हैं, तो जीवन-पद्धति में अन्तर पड़ जाता है; लेकिन जहाँ पर प्रारब्ध से आ गये हैं, वहाँ अपना साथी जो है शरीर, इससे पहले दोस्ती कर ली जाय। इसका आदर करना, इसकी इज़्ज़त करना, इसके प्रति श्रद्धा रखना हम सीखें। किसी धर्म-सभा में शायद इन बातों को कोई उठायेगा नहीं। लेकिन मैं इस पर बहुत ज़ोर देना चाहती हूं, क्योंकि हमारे मन में शरीर के प्रति अनुराग है, लेकिन धर्म और अध्यात्म के नाम इससे विराग रखना चाहते हैं। इस अन्तर्विरोध के बीच से संघर्ष और उसमें से पाखण्ड का जन्म इस देश में हुआ है। भीतर अनुराग पड़ा हो, उसके प्रति लालसा हो और ऊपर से धर्म के नाम पर, अध्यात्म के नाम पर विराग दिखाना है, उदासीनता दिखानी है तो जीवन में 'हारमनी' (संवादिता) कैसे आयेगी ?

अभी यह आध्यात्मिक पर्दा उठता है, फिर जहाँ एकांत मिला, वहाँ दूसरा पर्दा जीवन के लिये खड़ा करते हैं। जहाँ एकांत मिला, वहाँ उदासीनता है नहीं, वहाँ वासना धधक उठती है और ऐसा व्यवहार भी करते हैं; जो चीज़ छिपाने की इच्छा है, जिसके लिये अनेक आकांक्षा है, उसको दबाने का प्रयत्न भी होता है और ऐसी दयनीय अवस्था में साधक आ जाता है। तो उसकी छाया आ जाती है उसके अपने ऊपर। ऐसे साधक अनेक देखे हैं। इस दशा में शरीर का विचार न करने के कारण अनुराग और विराग के बीच tug of war (रस्साकशी) चलती है, कभी इधर कभी उधर। आत्मग्लानि, आत्मवंचना, आत्मनिषेध, जन-वंचना, ऐसे एक शृङ्खला chain reaction, शुरू हो जाएगा। आप मन्दिरों में जाइये, मठों में जाइये, बौद्ध संघों में जाइये, संन्यासियों को देखिये-देखा सब जगह, You will come across cases of suppression and repression. You will come across cases of hypocrisy or criminal indifference to the body. आपको दमन, पीड़न, दम्भ, पाखण्ड और शरीर के प्रति अपराधपूर्ण विराग के नमूने सर्वत्र मिलेंगे। कुछ न कुछ संघर्ष रहता है और फिर जीवन में संतुलन नहीं

आता । स्वस्थता का रहस्य ही संतुलन में है । जिससे आप स्वस्थता कहते हैं न, वह है-'स्वे तिष्ठति इति स्वस्थः ।' अपने स्वरूप में जो प्रतिष्ठित है वह स्वस्थ है, स्वरूप में जो स्थित है ।

अब आयुर्वेद की भाषा में रखूं तो धातु का साम्य शरीर में रहता है, यह स्वस्थता है । चित्त में जब स्वस्यता रहती है, त्रिगुणों के बीच चित्त का जो साम्य है उसको योग कहा । 'समत्वं योग उच्यते ।' तो इस शरीर में धातुओं का साम्य जब रहेगा; धातु यानी वात-पित्त-कफ हैं, इनकी सम दशा कैसे रहे यह सब देखना चाहिये; नहीं तो इच्छा हुई आहार लिया, जीभ कहती हो सो, खा लिया, पी लिया । जो totality of your life है-जो जीवन की समग्रता है, उसमें अधिक महत्त्व जीभ को दे दिया गया; शरीर की समग्रता को भूल गये, आखिर है क्या ? खण्डित दर्शन ही तो sin है, 'पाप' है और पाप दूसरा क्या होता है ? हर क्षण का, हर कर्म का, हर विचार का समग्रता के साथ सम्बन्ध जीवन है । शरीर के साथ मैत्री-सम्बन्ध ही पुण्य है, धर्म है । और समग्रता को भूल कर खण्डित दर्शन में और खण्डित कर्म में आसक्त हो जाना ही पाप है । दूसरा कोई पाप, पुण्य धर्म, अधर्म नहीं है । इस चीज़ को बहुत बारीकी से देखना चाहिये । आपको आहार, विहार के बारे में देखने वाले और सोचने वाले मिल भी जाते हैं, लेकिन निद्रा के प्रति सोचनेवाले, चिन्तन करने वाले मिलते ही नहीं । आख़िर निद्रा वस्तु ही क्या है ? निर्दोष, निःस्वप्न निद्रा आती है या नहीं, उसकी शरीर को आवश्यकता है ? इसको कोई आध्यात्मिक कर्म मानता नहीं । जिस बिस्तर में रोज़ सोते हैं, उसकी स्वच्छता व्यवस्थितता का ख़्याल नहीं रखते । क्या सुन्दर प्रभु की योजना है । ६ घण्टें या ७ घण्टें आपको सम्पूर्ण विश्राम के लिये निद्रा की सुविधा दे दी है न ! जिसमें मन को आराम मिलेगा, पूर्ण तन-मन में एक लय बन जायेगा, शरीर के रग-रग में विश्राम की ताज़गी भर जायेगी, इसलिये निद्रा है । ऐसी सुविधा का उपयोग भी नहीं करते, सुविधा से लाभ नहीं उठाते हैं, सोते नहीं हैं, न जागना जानते हैं, न सोना जानते हैं । कहां से धर्म होगा, कहाँ से अध्यात्म आयेगा ? यदि निद्रा नहीं आती है तो क्यों नहीं आती है ? स्वप्न नहीं आते हैं तो क्यों नहीं आते हैं ।

अब आप के ध्यान में आयेगा कि शरीर के परिचय से मेरा मतलब कितना गंभीर है, कितना गहन है । ये तो सब आध्यात्मिक कर्म हैं । ये सब धर्म-साधन हैं, इनको छोड़कर और जीवन लायेंगे कहा से ? सुबह से रात तक जो जीवन है, वह तो

आप को मिला है। यह नहीं है कि मन्दिर में एक घण्टा बैठे या किसी शिविर में एक घण्टा बैठे, वही है आध्यात्मिक जीवन; बाकी सारा भौतिक ! ऐसा नहीं है। जीवन को खण्डों में मत बाँटिये। जैसे जल के हर बिन्दु में उसकी समग्रता का सौरभ और समग्रता का सौन्दर्य है, उसी प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षण को चिरन्तन काल, सनातन काल कहते हैं; सौन्दर्य उसमें छिपा हुआ है; इसलिए। प्रत्येक कर्म, प्रत्येक विचार, प्रत्येक भावना को अपने उठते, बैठते, बोलते, हँसते जीवन की समग्रताके साथ जोड़ दिया जाय, और कुछ पुरुषार्थ करना नहीं पड़ता। साधना यही है समग्रता के साथ जोड़ देना, एक बार समग्रता के साथ अनुसंधान सध गया, फिर तो समग्रता में प्रतिष्ठित हो जाती है चेतना, और जो भी विचार उठते हैं, उनका मूल स्रोत ही समग्रता हो जाती है।

खैर, पहिले मैंने शरीर की बात आपके सामने की। दूसरी बात, हमारे पास दूसरा साधन या वाहन है मन। मन और बुद्धि दोनों भिन्न होंगे ऐसा लोगोंने माना है। मैं नहीं जा रही हूँ इस देश के सनातन ग्रन्थों में। पातंजल योगशास्त्र में मन और बुद्धि को भिन्न नहीं माना। इसमें मैं आज जाना नहीं चाहती हूँ। अभी यदि गहराई में उतरूँ तो-और भी २, ४, ५, ७ दिन रहने का मौका मिलेगा-तो उसमें जाऊँगी; लेकिन चूँकि आप बम्बई में रहने वाले सुशिक्षित व्यक्ति हैं, मैं आपको पश्चिम से ही उदाहरण देती हूँ। लेकिन यहां भी वैसे उदाहरण हैं और जिसको आप 'रिसर्च' कहेंगे, संशोधन कार्य कहेंगे, वह इस देश में भी हुआ है। फिर उसकी जो 'टरमिनोलोजी' है, परिभाषा हैं, शायद उससे आप परिचित न हों, इसीलिए मैं जिस परिभाषा में आप पढ़ते हैं, वह परिभाषा आपके सामने रख रही हूँ। अभी biology (प्राणिशास्त्र या जैव विज्ञान) और medicinal science (औषध विज्ञान) की यह खोज़ है कि मन और बुद्धि दोनों स्वतन्त्र वस्तु शरीर में नहीं है। हम समझते हैं कि मन कहीं यहां होगा, 'हार्ट' के पास होगा, और मस्तिष्क यहाँ (सिर में) है तो बुद्धि वहीं होगी। यह हमारी धारणा है। अब 'बायोलोजी' और 'सायन्स ऑफ़ मेडिसिन' हमको बतलाते हैं कि यह जो मस्तिष्क में कोषाणु हैं, जो कि brain cells हैं उनमें जितना आपको ज्ञान है, अनुभव है, वह स्मृति के रूप में संचित होता है 'ब्रेन सेल्स' में कुछ 'केमिकल्स' हैं-Every knowledge, every experience is reduced to certain

chemicals in the body and those chemicals are stored in your brain-cells.

यह उनकी भाषा है। वे कहते हैं कि जो रक्त कण हैं-गोलक हैं उनमें रसायन के रूप में हमारे ज्ञान, अनुभव, इकट्ठा संगृहीत हो जाते हैं। एक संशोधन समिति खोज कर रही है कि यह biological inheritance (जैव वंशानुक्रम या विरासत) क्या चीज़ है ? मां-बाप के गुण-दोष, शारीरिक और मानसिक, बच्चों में कैसे आते हैं ? इस खोज में अचानक उनको पता चला कि सिर्फ 'बायोलोजिकल इनहेरिटेन्स' नहीं, बल्कि 'सायकालोजिकल इन्हेरिटेन्स' (मानसिक वंशानुक्रम या विरासत) भी है। उसका कारण यह है कि मस्तिष्क के रक्त-गोलकों में रसायन के रूप में स्मृति में संगृहीत हो जाता है सारा ज्ञान, अज्ञान और शारीरिक अनुभव। इसको extricate करना (बाहर निकालना) और दूसरे आदमी में 'इन्जेक्ट' करना भी सम्भव बना है। उसका प्रयोग उन्होंने १९६० में शुरू किया। चूहे पर किया, फिर खरगोश पर, अब मानस रोगियों पर शुरू किया। और परिणाम devastating (विनाश जनक) रूप से उत्साह वर्धक हुए हैं। विनाश जनक इसलिये कहती हूं कि यह तो खोज है वह 'अणु बम' बनाने की खोज से कम भयानक खोज नहीं है। मनुष्य का अनुभव या स्मृति या ज्ञान 'अक्स्ट्रेक्ट' करने (निकालने) और दूसरे आदमी में 'इन्जेक्ट' करने की सम्भावना अपने सामने आना भयानक है। उसका उपयोग ठीक हो तो ठीक है। और सत्ताधारी के हाथ में कहीं यह पूंजी आ जाये तो पता नहीं कि मनुष्य जाति के साथ क्या हो। इसलिये उसको मैंने भयानक कहा। लेकिन यह सम्भव है।

तो, इसी आधार पर हमारा 'कॉम्प्युटर ब्रेन' बना, 'इलेक्ट्रॉनिक ब्रेन' बना। हमारा जो मस्तिष्क है, जो 'ब्रेन' है उसमें यह सब संगृहीत होता है। आपको और हमको बड़ा घमण्ड रहता है न ? मेरी भावना, मेरा विचार, मुझे यह अच्छा नहीं लगता, मुझे यह प्रिय है, वह अप्रिय है, यह अपमान हुआ, यह सम्मान हुआ, यह प्रशंसा हुई, आनन्द हुआ और इससे उठने वाली जो प्रतिक्रिया है, उसमें conditioned reflexes (अनुकूलित या प्रतिबन्धित प्रतिवर्त) है, we own them. हम उन्हें अपनी समझते हैं। हम कहते हैं-"हम हिन्दू हैं", "हिन्दू अलग, मुसलमान अलग है" और यह सारी यांत्रिक क्रिया है। शतकानुशतक से संस्कार के नाम पर, शिक्षा के

नाम से आपके मस्तिष्क में यह भरा गया है ! शिक्षणके द्वारा, परम्परा द्वारा आपके मस्तिष्क में वे 'कन्डिशनिंग' (अनुकूलन या प्रतिबन्ध) के संस्कार भर दिये गये और धीरे से ज़रा 'स्विच' दबाने से जिस प्रकार यान्त्रिक मस्तिष्क चालू हो जाता है, वैसे ही हमारा मस्तिष्क प्रतिक्रिया करने लगता है । आप कह देते हैं कि मेरी भावना है- किन्तु यान्त्रिक प्रतिक्रिया ही है मन का रहस्य । आखिर हम गुलाम हैं, मन के गुलाम है, मन ही के गुलाम हैं या हमारे संस्कारों के, अपने शरीर के गुलाम हैं । और गुलामी क्या है ? लोग जिसको कहते हैं न कि 'बन्धन' में है, फँसे हैं, हमें मुक्त होना है ।' तो यही है बन्धन का स्वरूप । No barrier or bondage exists outside you; all that you call bondage or barrier; that is within you. बाहर नहीं, यह नितान्त तथ्य है । कोई बन्धन बाहर नहीं, यह जिस दिन भारतवर्ष की जिज्ञासु जनता जानेगी उस दिन से पलायनवाद का अन्त इस देश में होगा । यह कोई तुकाराम की गाथा नहीं है कि बहुत गर्व से पढ़ेंगे कि उसने तो स्त्री-पुत्र की तरफ़ ध्यान नहीं दिया, रामदास शादी होने के समय भाग गया । श्री रामतीर्थ ने पत्नी का त्याग कर दिया तो बाद में उसका मुँह तक नहीं देखा । यह कोई गर्व का विषय है ? स्वामी रामतीर्थ जी के सामने १०० बार मैं मस्तक नम्र करती हूँ, लेकिन संन्यास लेने के बाद पत्नी मिलने आती है तो मिलते नहीं, ऐसे संन्यास का मेरे पास कोई मूल्य नहीं, फिर वे स्वामी रामतीर्थ हों, तुकाराम हों, स्वामी रामदास हों या और कोई हों, कृष्णदास हों । यह तब समझ में आयेगा जब हम समझेंगे कि अध्यात्म में कोई बन्धन बाहर नहीं है, स्त्री का त्याग, पुत्र का निषेध या अन्य किसी निषेध पर आधारित अध्यात्म है नहीं । यह मालूम हो जाय कि जब तक अध्यात्म निषेध पर आधारित रहेगा तब तक सच्चे धर्म का जन्म नहीं हो सकता, तब तक सच्चे मानव का जन्म नहीं हो सकता । इसलिये यह पहचानना बहुत जरूरी है कि हमारा हमारे मन के साथ क्या सम्बन्ध है, मन किस प्रकार बन्धन-निर्माण कर सकता है और उस बन्धन से हम मुक्ति किस प्रकार पायेंगे । आखिर 'साधना-साधना' क्या है ? तो साधना में शरीर के साथ सहयोग और प्रेम-भाव, उसके बाद मन का परिचय और मन की मैत्री । यह मन के साथ मैत्री जब तक नहीं होगी मन से मुक्ति भी नहीं होगी ।

तो यह दूसरी बात मैं आज आप के सामने रखना चाहती हूँ । हमने यह देखा कि मन और बुद्धि अलग-अलग नहीं हैं, हमने यह देखा कि जो स्मृति है, वह संगृहीत

हो जाती है। हमारी जो स्मृति है वह स्मृति रस के रूप मस्तिष्क में संगृहीत हो जाती है और कहीं भी बाहर से इन्द्रिय का विषय के साथ सम्बन्ध हो तो उसका जो आघात पहुँचता है उस आघात से 'ब्रेन' काम करने लगता है। उसकी प्रतिक्रिया पर हमारा कोई काबू नहीं, वह जो प्रक्रिया भीतर पड़ी हुई है, conditioned reflex (अनुकूलित प्रतिवर्त) पड़े हुए हैं, विचार-विकार पड़े हुए हैं उनके स्वामी हम नहीं हैं। शरीर पर हमारा स्वामित्व कितना है, वह भी हमने देखा। जिस किसी भले आदमी से पूछिये तो, कहते हैं सिरदर्द है, 'सर दुखता क्यों है ?' तो कहते हैं-''मालूम नहीं।'' अन्न हमने खाया, और गले से नीचे रस कैसे बना ? भाई, हमें मालूम नहीं। पाचन क्यूँ नहीं हुआ ? मालूम नहीं। पेट में दर्द है, क्यूँ है ? मालूम नहीं। ऐसे तो हम शरीर के स्वामी हैं। यों ज़रा प्रामाणिकता से पाँच मिनिट सोचेंगे तो पता चलेगा कि स्वामित्व दूर रहा, शरीर से दोस्ती तक नहीं है और शरीर से परिचित तक नहीं। तो ऐसे खतरनाक लोग हैं हम। जैसे कोई मोटर की जानकारी नहीं और 'ड्राइव' करने बैठा। सौन्दर्य-रहित, रसरहित हैं, शुष्क हैं हम,-शरीर में रहते जरूर हैं, लेकिन उसे जानते नहीं।

यह मन का हाल है। मानसिक क्रिया यान्त्रिक क्रिया है। जितने हमारे विचार हैं, विकार हैं, ये यान्त्रिक क्रिया हैं-mechanistic actions, यह तत्त्व यदि समझ में आ जाय तो मनुष्य का सारा अहंकार दूर हो जायेगा, सारा अहंकार विलीन हो जायेगा। आख़िर होता क्या है ? सुबह उठते हैं। अच्छी नींद आई, बड़े प्रसन्न हैं, चित्त प्रसन्न है, दिल प्रसन्न है। इतने में पति ने कुछ कह दिया, अप्रिय लगा, सुबह बिगड़ गई कहते हैं। आज सुन्दर प्रभात था, सुबह-सुबह उठकर देखो पति ने ऐसा कर दिया ? बच्चे ने ऐसा कहा, पतिने ऐसा कहा तो सुबह बिगड़ गई। सुबह बिगड़ी कैसे भाई ? सुबह तो वही है। अपनी प्रियता को, अप्रियता को इतना महत्त्व दिया कि सामने जो व्यक्ति हैं उसने व्यवहार क्यों ऐसा किया यह सोचने का समय नहीं। हम अपनी प्रतिक्रियाओं में उलझे हुए हैं, इतने अहं-केन्द्रित हैं, अपने प्रतिक्रियाओं से नापना चाहते हैं सामने जो मनुष्य है उसको, सामने जो व्यक्ति है उसकी प्रियता, अप्रियता, शुचिता, अशुचिता आदि को। हमारे मूल्य इसमें उलझे हुये हैं कि, जब पता चलेगा कि ये यान्त्रिक क्रियायें हैं, इनको इतना महत्त्व देकर जीवन का अपमान करता हूँ, जीवन का अनादर करता हूँ, यह जिस दिन ध्यान में आयेगा उस दिन अपनी

प्रतिक्रियाओं की-आवेगों की गुलामी ख़त्म हो जायेगी । आज न तन के स्वामी हैं, न मन के स्वामी है । तन के भी गुलाम, मन के भी गुलाम । भाई, गुलामी का अर्थ क्या है ? वह जान लेना चाहिये । विचार का मैं कर्ता नहीं हूं । जिस समाज में पैदा हुआ, जिस कुल में पैदा हुआ, जिस धर्म में पैदा हुआ, जिस परिस्थिति में पैदा हुआ जिस शताब्दी में पैदा हुआ, उसका वातावरण मेरे विचारों को बनाता है, मैं उनका देखने वाला हूँ, मैं द्रष्टा हूँ-कर्ता नहीं । न मैं शरीर का कर्ता हूँ, न स्वामी हूँ, न अपने विचारों का भी कर्ता हूँ । यह ध्यान में आने से कल जिस विनम्रता की बात मैंने कही थी, वह विनम्रता समृद्ध हो जाती है । फिर किसी ने कुछ कहा जो कि प्रिय नहीं है, या अन्याय की बात है, तो भीतर क्रोध उठा । लेकिन आप ऐसे स्तर पर प्रतिष्ठित होंगे कि यह सामने व्यक्ति है उसको भी देखेंगे, अपने क्रोध को भी देखेंगे । There will be distance between your reaction and your self आप के और आपकी प्रतिक्रिया के बीच दृश्य और द्रष्टा का सम्बन्ध स्थापित होगा । विचार के भीतर बाहर जो सृष्टि है, इसी को जो देखते हैं वे द्रष्टा हैं । द्रष्टा बन जाते हैं तब बड़ा आनन्द आता है । यह काम है, क्रोध है, मोह है-इनके आवेगों को देखते हैं जैसे समुद्र के तूफ़ान को देखते हैं । और कभी आप में से जो समुद्र में तैरने गये होंगे, और तैरना जानते होंगे, उनको पता होगा कि जब समुद्र में तैरते हैं तो, लहरों के साथ, मौजों के साथ लड़ना नहीं होता । उनके साथ संघर्ष नहीं करना पड़ता । ऐसी लहर आई तो उसके ऊपर आरूढ़ होना पड़ता है । वह लहर की जो गति है, मौज है- वह गति ही तो आप को आगे ले जाती है ! आप अगर सागर की मौजों के साथ लड़ना शुरू करेंगे-काटना शुरू करेंगे तो आप कहीं के नहीं रहेंगे, तैर नहीं पायेंगे । यह सागर में तैरने वालों का अनुभव है । सागर की मौज आई, मौज पर सवार हुए और आगे बढ़े । उसी प्रकार फिर अपने इस अचेतन मन में इतने विकार-संस्कार पड़े हैं, इतनी वासनाये पड़ी हैं, वे जो प्रतिक्रिया के रूप में ऊपर उठेंगी तो उस तूफ़ान को आप देखेंगे । उनकी उठती हुई गति के गुलाम बनकर निर्णय नहीं करेंगे । लेकिन उसके द्रष्टा बनेंगे । कहेंगे-'हां तुम को भी देख लिया, बाहर को भी देख लिया, भीतर वाले को भी देख लिया ।' उसके क्रोध दिलाने से न हम क्रोधी बनेंगे, न गुलाम बनेंगे । बस, एक पल भर का खेल है, यह सारा पल भर का खेल है । किसी ने तमाचा मारा, मुझे क्रोध आया, मैंने भी तमाचा मारा । या किसी ने मारा और मैंने देख लिया । ओहो, आज इतना सुन्दर प्रभात है, इस

सुन्दर प्रभात में यह भाई क्यूं क्रोध में आ गया ? प्रभात का सौन्दर्य इसने नष्ट कर दिया अरे, अरे क्या हो गया इसको ? या तो क्रोध का जवाब क्रोध से आयेगा, या उसका क्रोध देखकर उसके लिये करुणा उठेगी । हाथ पकड़ेंगे आप । ऐसा नहीं है कि मारने वाले का हाथ न पकड़ें । पकड़ लें । लेकिन एक पकड़ेगा तो उसके मुँह से गाली निकलेगी, दूसरा पकड़ेगा तो उसकी आँखों से करुणा प्रगटेगी । यह क्या ? मन का परिचय होने से चेतन मन में जो प्रतिक्रियाएँ उठती हैं, इन्द्रियों का बाहर विषयों के साथ सम्बन्ध आने के बाद, उन्हें सही रूप में हम देख सकेंगे । इन्द्रियों का सम्बन्ध अनेक प्रकार से आता है । स्मृति का, शब्द का सम्बन्ध है, आँखों से देखते हैं तो रूप का, चक्षु का सम्बन्ध है, स्पर्श से देखते हैं तो त्वचा का और पदार्थ का सम्बन्ध है, जिसे आप त्वचा के द्वारा देखते हैं । जब सुगन्ध है या दुर्गन्ध है, आप नाक से ग्रहण करते हैं । अपने इन्द्रिय-विषय-संघात के बाद जो प्रतिक्रिया उठती है, वह कर्म नहीं, प्रतिक्रिया है । हम दिन-भर क्रियाओं में रहते हैं और अपने आपको कर्मयोगी कहते हैं । ग़लत क्रिया है वह, तात्कालिक है, और खण्डित है, वह खण्डित प्रतिसाद है । response के लिये प्रतिसाद शब्द का उपयोग कर रही हूँ । अपरिचित हों तो थोड़ा सा ध्यान दिया जाय । reaction के लिये प्रतिक्रिया, और response के लिये प्रतिसाद ।

कह रही थी कि जो क्रिया है वह reaction है, वह कर्म नहीं है । और जो प्रतिसाद है, वह कर्म है । जब तक मन की गुलामी है, तब तक हम प्रतिक्रिया में रत रहते हैं । उस गुलामी का जहाँ अन्त होता है वहाँ कर्म का प्रारम्भ होता है । कर्म करने का आनन्द मिलता ही नहीं हमको; कहाँ से मिलेगा ? दिनभर प्रतिक्रियाओं में चले । इसने ऐसे किया, उसने ऐसा किया, जो मैं चाहता था वह नहीं मिला, यह जो मिला है वह मुझे नहीं चाहिये, जो नहीं है वह चाहिये, जो आया है उसका स्वीकार नहीं । इस प्रकार की द्वन्द्वात्मक प्रतिक्रियाओं में दिनभर उलझे हुए मन और तन को लेकर हम जीते हैं । जैसे फूलों को बेचने वाले फूलों में-पानी डाल-डालकर बेचते हैं । ताज़ा फूल तो हैं नहीं, पानी डालते हैं और फूलों में ताज़गी लाना चाहते हैं । या कागज़ी फूल हैं, उन पर 'सेन्ट' छिड़कते हैं । ऐसे हमारे जीवन हैं निकम्मे । फिर सत्संग का पानी 'स्प्रे' करते हैं (छिड़कते हैं) ताज़गी लाने के लिये । ऐसा छिड़कने से ताज़गी नहीं आयेगी ।

एक, प्रत्येक मानसिक क्रिया यान्त्रिक क्रिया है, और दूसरा, ये जो यान्त्रिक क्रियाएँ हैं उनके जो रसायन-रूप में संस्कार पड़े हैं उनके कर्ता हम नहीं हैं । प्रत्येक देश में विभिन्न संस्कार-राशि है, भिन्न-भिन्न विचार-पद्धति हैं । पड़ी हुई हैं विचार-पद्धतियाँ, ये उच्च क़ौम, ये नीच क़ौम, कनिष्ठ क़ौम, कुछ भी । अब यह मन की क्रिया है, यान्त्रिक है, यह पहचानने से बहुत बड़ी चीज़ होने वाली है । इस तथ्य का साक्षात्कार करने के लिये मन साधन नहीं हो सकता । यह तथ्य आप और हम समझें । क्या 'मैं साक्षात्कार प्राप्त करूँगा ?' 'I will acquire self-realization !' - अरे, बाबा क्या बोल रहे हो ? अपने ही जो शब्द हैं उन पर जरा ध्यान दो । यानी किसी न किसी मानसिक या बौद्धिक क्रिया के द्वारा साक्षात्कार होगा, मुक्ति का हम प्रत्यय करेंगे, यह सारा भ्रम क्यों है ? क्योंकि हमने नहीं पहिचाना है कि मानसिक क्रिया mechanistic action है, यान्त्रिक क्रिया है, यह नहीं जाना है । हमने आध्यात्मिकता को भी अपने मन का एक कर्म बना लिया । हम जप करेंगे, ध्यान करेंगे, हम सत्संग करेंगे, हमारे करने का विषय हो गया है अध्यात्म । इसलिये संसार के विषयों को छोड़ दिया-''ज़मीन मेरी, मकान मेरा, बंगला मेरा, दौलत मेरी, 'बैंक अकाऊन्ट' मेरा''-यह छूट गया । ''सत्संग मेरा, ध्यान मेरा, जप मेरा''-यह आ गया । अहंकार तो उतना ही पुष्ट रह गया, विषय बदल गये लेकिन चित्त नहीं बदला । और सवाल है चित्त को बदलने का, विषयों का नहीं । मैंने कहा कि मानसिक कर्म से सत्य-साक्षात्कार करने के अहंकार में लोग पड़े हुए हैं । उनके अहंकार-पुष्टि के साधन, विषय, प्रक्रिया इतने ही बदले हैं । श्वेत वस्त्र के गेरुए हो गये, भगवे हो गये; घरों की दीवारें इंट और चूने से बनती हैं तो मठों की, मन्दिरों की किससे बनती हैं ? इन्हीं से तो बनती हैं । और गृह-गृहस्थी चलाने वाले पैसा कमाके लाते हैं तो मठ-आश्रम चलाने वाले मांग करके लाते हैं । यानी कमाने का पाप दूसरा करे और पुण्य हम आश्रम में बैठकर करें । कमाने वाले संसारी हो गये, और आपके पैसे लेकर जीने वाले संन्यासी हो गये । Simple contradiction (निरा विरोध) इसमें से इस देश में इतना confusion (भ्रम) हुआ, इतना बौद्धिक और भावनात्मक confusion (भ्रम) इस देश में है जिसका कोई अन्त नहीं । बड़ा दुःख होता है, मैं किसी की आलोचना नहीं करती हूँ, लेकिन मेरे हृदय में इसकी बड़ी व्यथा है, पीड़ा है । जप करेंगे तो जप तो यान्त्रिक क्रिया है । सिनेमा के गीत गायेंगे वह भी यान्त्रिक क्रिया है और भजन गायेंगे तो वह

भी यान्त्रिक क्रिया है । आप कहेंगे-'नहीं जी हमने उसके साथ भावना जोड़ी, जो यान्त्रिक क्रिया नहीं, हमने उसके साथ ऐसी भावना जोड़ दी थी ।' मैं इतना ही कहना चाहती हूँ कि भावना भी यान्त्रिकी ही है । भाव सिर्फ़ जीवन का द्योतक है । भावनायें यान्त्रिक ही हैं । भावजगत् जो है वहां जीवन का स्पर्श है, जहाँ तक भावनाएँ हैं, संवेदनायें हैं, emotions (संवेग), feelings (भावना), sentimentality (भावुकता) ये सब यान्त्रिक क्रियायें है, किसी की crude (अनघड़) है और किसी की refined (परिष्कृत) हैं, बस, इतनाही फ़र्क है, और कुछ नहीं । तो, मानसिक कर्म से सत्य का साक्षात्कार नहीं होता है । यह आपको पहचानना है ।

हां, यह हो सकता है कि एक लाख जप किया तो ये नाद के जो स्पंदन हैं उनका biochemical (जैव-रासायनिक) असर आपके शरीर पर होगा, आपके शरीर पर परिणाम होगा । आपकी जो लय है, श्वासोच्छ्वास breathing उस पर परिणाम होगा और आपको ऐसा लगेगा कि एक शक्ति की अवस्या निर्मित हुई । तो स्पन्दनों का असर रहता तो है । चार घण्टें बैठ कर जप करना, और आखिर action (क्रिया) तो है न, chemical (रासायनिक) । पश्चिम के वैज्ञानिकों ने 'केमिकल एक्शन' के बदले 'डायरेक्ट' (सीधी) पद्धति अपनाई । उससे एक अवस्था का निर्माण होता है । उस अवस्था का परिणाम शायद एक घण्टा, दो घण्टे, चार घण्टे, अड़तालीस घण्टे,-'स्लीलोसीजम' का अड़तालीस घण्टे रहता है, एल.एस.डी. का २५ से ३६ घण्टें रहता है । लेकिन उसमें आपकी growth नहीं है, विकास नहीं है । मैंने पहले ही कहा था कि समग्रता का विकास integrated, total growth यह अध्यात्म है । और प्रतिक्षण का, प्रतिकर्म का समग्रता के साथ सहज सम्बन्ध यह अध्यात्म है । लेकिन वह जप की यान्त्रिक क्रिया से, या कोई आपने दवा ले ली, 'ड्रग' ले लिया, consciousness-expanding drug से artficial stimulated state of mind (कृत्रिम रूप से उत्तेजित मानसिक दशा) बना ली, दो-चार घण्टे या दो-चार दिन उसमें रह भी गये तो वह कोई अध्यात्म नहीं है । आपको मालूम है कि एक आत्मविलोपन का आनन्द होता है, self-forgetfulness. होने दो, सितार-बजाने बैठे हैं तो दो घण्टे अपने को भूल जायें । गाने के लिये बैठेंगे तो दो घण्टे अपने-आपको भूल जायेंगे । अहंकार की कैद से बाहर निकलने का एक रास्ता है । लेकिन जहाँ उसका असर खत्म हो गया कि फिर आप अहंकार की कैद में आ गये-self-forgetfulness is not

elimination of ego (अपने को भूलने से अहंकार का निराकरण नहीं होता) । और ये अहं को भूलने के लिये जो रास्ते हैं, वैसे यह जप का भी होगा और दूसरा भी होगा । लेकिन मैं यह कहना चाहती थी कि मानसिक कर्म के द्वारा साक्षात्कार हो ही नहीं सकता । यह विषम साधन है ।

यह पहचानने पर हमारा जो अहंकार है-मानसिक कर्म को लेकर अध्यात्म में जो घुसना चाहते हैं-वह मिट जायेगा-आज तो धड़ाके के साथ कोई भी घुस जाता है; सो घुसेगा नहीं । वह समझेगा कि वहाँ जाने का रास्ता यह नहीं है । मानसिक कर्म ही अहंकार का आहार है । अहंकार जीता किस पर है ? The movement of mind is the only nutrition of ego. तो अहंकार अपनी पुष्टि पाता है, मानसिक क्रियाओं में से । जब ध्यान में बात आयेगी कि मन को लेकर इस क्षेत्र में प्रवेश नहीं हो सकता, समस्त मानसिक क्रियाओं की शान्ति में ही ध्यान के द्वार खुलते हैं, यह बात जब समझ में आयेगी, तो अहं के विलोपन का भी मार्ग प्रशस्त हो जायेगा । इसलिये मैंने कहा मन के साथ मैत्री होनी चाहिये । मानसिक क्रियाओं को शान्त होने देना है । उनका गला घोंटकर उनको शान्त नहीं कर सकते । इस देश में, और ईसाइयों में 'केथोलिक' सम्प्रदाय है, उसमें बहुत कोशिशें की गई हैं कि मन से लड़ें, उसका निग्रह करें, दमन करें, पीड़न करें । तो मन का दमन-पीड़न करने वाले हज़ारों वर्ष से करते आये हैं । लेकिन मन तो जिन्दा ही रहा । वह मरेगा कैसे ? It is the very substance of your consciousness-यह आप की चेतना का ही सत्त्व है । उसको कैसे मारेंगे ? कैसे वह मरेगा ? गला घोंटेंगे तो बेभान-सा पड़ा रहेगा, ज़रा आपका अवधान इधर-उधर हुआ कि फिर से ज़िंदा ! मन के साथ लड़ना असम्भव है, चेतन या अवचेतन में,-चेतन मन के साथ फिर भी आप लड़ लेंगे और हरा कर बेचारे को कोने में आप बैठा देंगे । वह बैठा रहेगा, दुबक कर बैठा रहेगा । मौक़ा देखेगा, कब निकलता हूँ, कब मौक़ा मिलता है, आप का अवधान छूटा या वृद्धावस्था आई, आप के शरीर में ताक़त नहीं है, मन को 'कन्ट्रोल' में, नियन्त्रण में रखने की ताक़त नहीं है; फिर तो सवार होगा ही । इसलिये मैं कहती हूँ कि चेतन को आप कोने में बैठा भी सकेंगे, अचेतन मन को कोने में बैठाने की कोशिश व्यर्थ है । मानेगा ही नहीं । दिनभर नहीं निकलेगा तो स्वप्नों में निकलेगा । 'दिनभर दबाकर रखता है मुझको, रात को तेरा बदला लेता हूँ ।' वह प्रतिशोध लेना चाहता है । फिर जो कर्म आप जागृति में करने जाते हैं

उसमें, दलित, पीड़ित जिसे आपने कर रखा है, वह मन आपके हर कर्म में आड़े आता है, आप का कोई कर्म समग्र नहीं होने देता, क्योंकि वह तो बदला लेना चाहता है ।

इसलिये मैंने कहा-मन से लड़ना यह रास्ता नहीं है । मानसिक क्रिया मात्र यान्त्रिक क्रिया है, यह समझने से यह जो प्रतिक्रिया है, उसका घमंड हमारा समाप्त हो जायेगा । उसके साथ-साथ 'मैं कर्म करूँगा', 'मैं जप करूगा', 'मैं मन्दिर जाऊँगा', 'मैं अमुक करूँगा'-यह जो द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध है, वह भी विगलित होगा । मानसिक क्रियाओं के शान्त होने को रास्ता बनाना पड़ता है, अपने भीतर खोजना पड़ता है, बाहर नहीं खोजना पड़ता है । इस खोजने की क्रिया का नाम है ज्ञान । इसलिये २४ घण्टे में सिर्फ एक, कम से कम एक बार बैठो, इन्द्रियां शान्त बैठ सकती हैं या नहीं देखो, मन शान्त हो सकता है या नहीं देखो, मन दौड़ता है तो क्यों दौड़ता है, मन कहां-कहां अतृप्त रह गया है, क्यों अतृप्त रह गया है ? उसको क्या-क्या अपेक्षा है, देखो तो सही । जिस बच्चे को ताड़ना मिलती है वह बच्चा घर में मा-बाप के सामने बिलकुल सीधा है । लेकिन बाहर देखिये । ताड़ना, वह बालक के साथ मैत्री करने का रास्ता नहीं है और सिखाने का रास्ता भी नहीं है । वैसे ही मन को कुछ सिखाना है तो उसको दुश्मन मत मानिये, उसको शत्रु मान कर लड़िये नहीं । मन बहुत कोमल है । बहुत प्रेम से, प्यार से, करुणा के साथ पेश आइये । आप देखिये, आप मित्र बनेंगे तो आप की ताक़त बढ़ेगी और शत्रु मानेंगे तो पहले ही असमर्थ होंगे । फिर मदद के लिये कोई न कोई गुरु बाहर से चाहिये । जिन्होंने अपने तन-मन को दुश्मन बनाया और दुश्मन माना है, उन्हीं को बाहर से मदद की अपेक्षा रहेगी, सिर्फ़ अपेक्षा नहीं और मदद नहीं, किसी न किसी के आश्रित बन जाने की इच्छा होती है ।

इसलिये यह दूसरी बात मैंने आपके सामने रखी कि समस्त मानसिक क्रियायें यान्त्रिक क्रियायें है । अध्यात्म के क्षेत्र में क्या करें ? यह करें-सुबह से रात तक जो प्रतिक्रियायें उठती हैं उनको देखना सीखें कि मेरे भीतर क्या है ? क्या उठता है ? और मुझसे वह क्या प्रतिक्रिया कराना चाहत है ? यह अपने में देखना, यह बहुत बड़ा क़दम है । इसलिये साक्षित्व की भावना जागृत होती है, फिर अपने लिये तटस्थता बहुत बड़ी ताक़त है, उदासीनता नहीं । उदासीनता भी हमारे लिये तो कुछ भिन्न है; हमारे आस विनोबाजी 'उदासीन' का अर्थ करते हैं-उत् + आसीन: इति उदासीन । यानी जिसका

आसन ऊपर उठ गया, वह उदासीन। उस अर्थ में उदासीनता और तटस्थता एक ही भाव है। या मध्यस्थ भाव जिसे कहें वह है। सत्य दो हैं नहीं, अलग-अलग हैं नहीं। दूसरा शब्द कहां से लायेंगे ? तटस्थता, मध्यस्थता, उदासीनता एक हैं-वह एक प्रकार की तटस्थता है। तटस्थता का जन्म कहाँ से होगा ? जिज्ञासा, उसमें से परिचय, मैत्री और मैत्री में से फिर जिज्ञासा। यह जो तटस्थता है न, जीवन की सरलता, सहजता, समता रूप यह तटस्थता है। जो आप कहते हैं न ऋजुता है, फ़लाना व्यक्ति ऋजु है, उसका व्यवहार सहज है,-वही।

जो अपने ऊपर दमन करता है, पीड़न करता हैं, निग्रह करता है वही मौक़ा मिलने पर दूसरे पर आक्रमण करता है। Aggression is nothing but the reaction of self-suppression. जो व्यक्ति अपने साथ निग्रह नहीं करेगा, क्रूर नहीं होगा, और अपने तन और मन के साथ अन्याय नहीं करेगा, वह दूसरे पर अन्याय कर ही नहीं सकता, असम्भव है। लेकिन धर्म और अध्यात्म के नाम पर तन-मन के साथ हम बहुत अन्याय करते आये हैं। और, इसलिये आप देखेंगे योगी है, संन्यासी है, साधु है; उनका शिष्यों के साथ व्यवहार देखिये। गालियाँ तक देते हैं। ये लोग कहते हैं गुरु की गाली से शिष्य अच्छे होते हैं। निकट का होगा, उसको बहुत गाली देंगे, मारेंगे, उठा-उठा के मारेंगे, पीटेंगे। सभ्य व्यक्ति और किसी के नाम पर बरदाश्त नहीं करेगा, वह गुरु के नाम पर बरदाश्त करता है। उसके व्यक्तित्व का समग्र विकास नहीं होगा। समझ में नहीं आता ऐसे विरोध आध्यात्मिक जीवन में कैसे आये हैं ? ये आप से कहने जाऊं तो तीन सभाओं में तो क्या, तीस महीनों में भी पूरा नहीं हो सकता। देश-विदेश में नाना सम्प्रदायों के विविध केन्द्र देखे; भारत के कोने-कोने में गई। I have crossed this land from South to North and West to East many times. क्यों ऐसा होता है ? इसलिये होता है कि अपनी प्रतिक्रिया के गुलाम हम बने हैं। भाई, अपने स्त्री-पुत्रों के गुलाम होना बेहतर है। जो प्रतिक्रिया के गुलाम हैं, वे तानाशाही (dictatorship) को जन्म देते हैं। घर में 'डिक्टेटरशिप' नहीं चली तो मठ-मन्दिर बना लिया। संघ बना लिया. आश्रम बना लिया। सुनने में मेरी बातें कटु लगेंगी, लेकिन आश्रमों की धूल और खाक छानने के बाद कह रही हूं। यदि इसमें आलोचना है तो मेरी अपनी है, क्योंकि सब मेरे स्वजन हैं, लेकिन करूं क्या ? सत्य बड़ा

कठोर है । सत्य की कटुता तलवार की तीक्ष्णता जैसी है । उसको कटुता आप और हम कहते हैं, वास्तव में उसमें कटुता कहाँ ?

अध्यात्म जैसी सरल, सहज, सुलभ चीज़ नहीं । आत्म-साक्षात्कार जैसी सरल चीज़ है ही नहीं । उसको ऐसी निगूढ़ता में और अतीन्द्रिय शक्तियों के चमत्कार में गाड़ दिया है हम लोगों ने । उसके साथ कुछ 'गूढ़' अनुभूतियों का रहस्य जोड़ दिया है । mysticism (रहस्यवाद) की सृष्टि की है । इस मन का जब परिचय होगा तब आप को पता चलेगा कि मन में जो चेतन और अचेतन स्तर हैं, उसमें अनन्त शक्तियाँ भरी पड़ी हैं-जिनको आप अतीन्द्रिय शक्ति कहते है occult power, (आप की बम्बई में तो बहुत लोग दौडते हैं 'ऑकल्ट पावर्स' के पीछे)-अँगूठीं दे दी, नारियल दे दिया, किसी को मूर्ति निकाल कर दे दी-इन सब का अध्यात्म से कोई सम्बन्ध नहीं । अतीन्द्रिय शक्तियाँ हैं, दूरदर्शन (clairvoyance) है, दूरश्रवण (clairaudience) है; आप एकाग्रता का अभ्यास करेंगे, त्राटक का अभ्यास करेंगे-शक्तियाँ उपलब्ध होती हैं; कभी-कभी खेल लिया उनके साथ, लेकिन वह अध्यात्म नहीं है । तन्त्रशास्त्र की उपासना करने वालों को ही रिद्धि-सिद्धि मिलती हैं-ऐसा नहीं । लेकिन ये सारी शक्तियाँ अपने भीतर पड़ी हैं । They are all latent in you and me. अब उसको साधना करके कोई आगे बढ़ाता है, कोई नहीं बढ़ाता है । तो मानसिक क्रिया-मात्र यान्त्रिक क्रिया है, यह जानने के बाद अतीन्द्रिय शक्तियों का मोह निकल जायेगा, वह उसका तीसरा परिणाम है । और अतीन्द्रिय शक्तिके चमत्कार शिक्षित और अशिक्षित जनता को जो आज आकर्षित कर रहे हैं, उससे आप हट जायेंगे ।

'मुझे अतींन्द्रिय शक्तियों से लाभ उठाना है, मैं उठा रहा हूँ, उस व्यक्ति के पास इसलिये मैं जा रहा हूँ' ईमानदारी से यह समझ कर जाएँ । Be honest with yourself. किसी के पास गये जो ज्योतिष जानता है, गणित-ज्योतिष जानता है, ज्योतिष उसको पूछ लिया । लेकिन इसका अध्यात्म से कोई सम्बन्ध नहीं । अतीन्द्रिय शक्ति एक व्यक्ति के पास है; व्यवहार में उसका उपयोग करना चाहते हैं, आप गये, सीधा-साधा सौदा (pure and simple bargain) कर लीजिए । लेकिन इसको अध्यात्म समझकर इसके पीछे मत जाइये, इतना मैं कहती हूं । जीवन में अनन्त वैचित्र्य है-नानारत्ना वसुन्धरा है

सब प्रकार के लोग हैं। सरकस में जायेंगे तो शारीरिक शक्ति का विकास किये हुए लोग हैं और ये धर्म-अध्यात्म के क्षेत्र में मानसिक अतीन्द्रिय शक्तियों का विकास किये लोग हैं। जैसे वह कसरत (gymnastic) है वैसे ही वह बौद्धिक, भावनात्मक कसरत (gymnastic) है। उसको करने वाले लोग हैं, इतना उसका स्तर समझ लें- keep it at that level; तब फिर मनुष्य ग़लत रास्ते में नहीं जाता है।

जो उसी को अध्यात्म समझकर बैठते हैं, वे उसको क्यों अध्यात्म मानते हैं,-क्योंकि उसका कार्यकारण-भाव मालूम नहीं, कार्यकारण-सम्बन्ध मालूम नहीं। उसको चमत्कार क्यों कहते हैं ? हमारी बुद्धि उसे उपस्थित नहीं कर सकती, इसलिये हम चमत्कार कहते हैं और जो कार्य घटित दिखता है उसके कारण हमें मालूम नहीं, कारण-राशि मालूम नहीं इसलिये हम इसको प्रारब्ध कहते हैं। अज्ञात कारण-राशि में से जितने अधिक कारण ज्ञात होते जायेंगे, उतना-उतना प्रारब्ध का चमत्कार लोग समझेंगे। तो मैं तीसरी चीज़ की ओर आप का ध्यान आकर्षित करना चाहती हूँ। अतीन्द्रिय शक्तियों का आध्यात्मिकता से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। इसका उपयोग जिसको करना होगा, भले करे; लेकिन उसको आध्यात्मिक न मानें और कोई उसको आध्यात्मिक के नाम पर चलाना चाहे, तो उसका शिकार न बनें।

मुझे आपके सामने साधना की भूमिका और साधना का द्रष्टिकोण आज रखना है। इसलिये आत्मपरिचय का प्रारम्भ शरीर से कैसा होता है, तन से कैसा होता है, मन तक कैसे पहुँचते हैं, बुद्धि तक कैसे पहुँचते हैं, यह बात अभी मैंने आपके सामने रखी।

तो यह मानसिक क्रियाओं के शान्त होने का जो रास्ता है, उसके बारे में और थोड़ी देर हम सोचें। मैंने यह कहा कि मानसिक क्रियाओं को शान्त किया नहीं जा सकता। मन के ऊपर उठने का क्षेत्र बदलेगा, अपने स्थान बदलेगा, समय बदलेगा। लेकिन मन के साथ लड़कर उसे हरा नहीं सकते। 'किसी के पास जायें, उनकी कृपा होगी तो मन शान्त होगा।' अब इस मामले में भी अनाग्रही बुद्धि से आप के सामने कुछ बातें मैं रखूंगी। मेरे मन में 'गुरु' शब्द से या 'गुरु'की जो परम्परा है, उससे न कोई दुश्मनीहै, (उसके लिये मेरे मन में कोई निषेध नहीं है) और उसके लिये कोई अनुकूलता भी नहीं है। क्योंकि मैं आज के मानव के लिये उसको अनावश्यक मानती हूँ।

लोग समझते हैं कि किसी सन्त के पास जायेंगे, किसी ज्ञानी के पास जायेंगे, तो हमारा मन शान्त होगा। इसीलिये सत्संग है, और तो कोई प्रयोजन उसका है नहीं। दिन-रात हमारा मन agitated (क्षुब्ध) रहता है, क्षोभित रहता है, चंचल रहता है, अस्वस्थ रहता है, तो शान्ति के वातावरण में जाने से वह शांत होगा, इसमें वैज्ञानिक दृष्टि से तथ्य है, क्योंकि आप यदि शान्त स्थान में चले जाते हैं, सागर के किनारे तो आपके मन में उद्वेग, क्षोभ जितने हैं, वे शान्त होते हैं। आप घने जंगल में चले गये हों, आप हिमालय में चले गये हों, तो आप देखेंगे कि जितने तरंग यहाँ बम्बई में बैठने से, घर में बैठने से, दफ्तर में बैठने से उठते हैं, उतने तरंग वहाँ नहीं उठेंगे। क्योंकि उसके लिये वहाँ कारण नहीं। बाह्य कारण; परिस्थिति-गत कारण वहाँ हैं नहीं; इसलिये कुछ शान्ति का अनुभव होता है यानी वातावरण की मदद होती है अशान्ति को हटाने में; इसमें दो राय नहीं हो सकती। जो कहेंगे गुरु की आवश्यकता नहीं, वे भी यह तो कहेंगे कि कोई एकान्त का स्थान होना चाहिये जहाँ शान्ति से आप बैठ सकें। कोई distraction (विक्षेप) न हो, relaxed state (विश्राम की, तनाव रहित स्थिति) में बैठ सकें। इतनी मात्रा में तो उन्होंने वातावरण के सहयोग की बात मान ही ली। सो सत्संग का हेतु, सत्संग की अभिसन्धि जो है वह यदि यह हो तो ठीक है कि जहाँ आते हैं तो शान्ति के स्पन्दन वातावरण में हैं, शान्त व्यक्तिके पास आप बैठते हैं तो आपकी जो अशान्ति हैं वह कुछ समय के लिये हट जाती है। प्रेमी व्यक्ति है तो उसके वातावरण में आप के भीतर छिपा हुआ जो प्रेम है वह ऊपर उठता है। क्यों ऊपर उठता है ? बहुत ही सुस्पष्ट कारण है। हम कमरे में यदि कोई फूल रखें तो फूल की सुगन्ध आयेगी या नहीं ? गुलाब के फूल हों, रजनीगन्धा हो, चमेली हो; फूल रहेंगे कोने में, आपका और फूल का शारीरिक कोई सम्बन्ध नहीं है, सारे कमरे में सुगन्ध आती है। सुगन्ध के जो 'पार्टिक्ल्स' हैं वे आप की आँखों से दिखते ही नहीं, लेकिन ज़रूर हवा में तैरते हुए कोई न कोई सूक्ष्म परमाणु सुगन्ध के आते होंगे, जिनका आप प्राण से सेवन करते हैं। तो आप कहते हैं इस कमरे में फूल की महक, इत्र की महक हवा में तैरती हुई सूक्ष्म परमाणु से आती है। तो, फूलों की जो सुगन्ध है उसके सूक्ष्म परमाणु आप मान सकते हैं और जो जीवित व्यक्ति है; उसके भीतर यदि शान्ति है, समाधान है, और प्रेममय उसका व्यक्तित्व बन गया है तो प्रेम के सूक्ष्म परमाणु तैरते होंगे हवा में, यह मानने में आप को क्यों ऐतराज़ है ?

प्रेम के स्पन्दनों तक अभी विज्ञान पहुँचा नहीं है । अभी तो उष्णता के स्पन्दनों तक ही विज्ञान की पहुँच हुई है । लेकिन मेरे जैसा व्यक्ति आप के सामने यह बात रखेगा कि भाई आप शान्त व्यक्ति के पास पहुँचे जिसके भीतर तनाव नहीं, संघर्ष नहीं हैं; तनाव, संघर्ष हट जाय तो फिर परमात्मा का जो रूप है वही रहेगा । लगेगा कि उसकी अंगुली काटें तो हाड़-मांस में से खून नहीं, प्रेम बहेगा । ऐसे प्रेम से सराबोर हों, तर-बतर हों तो ऐसे व्यक्ति के पास यदि आप बैठे हैं और उसके सहवास में हैं तो उसके शरीर से प्रेम 'रेडियेट' (प्रेम का विकिरण) होता है, particles of love या vibrations of love-प्रेम के परमाणु या स्पन्दन ऐसी भाषा यदि मैं रखूँ तो आप क्या करेंगे ? मेरे लिये सत्संग का महत्त्व यह है कि ऐसे व्यक्ति के सहवास में उसके शरीर से स्फूर्त जो प्रेम के, स्नेह के स्पन्दन हैं, वे स्पन्दन आप के साथ सहयोग कर सकते हैं, आप जिज्ञासु हों तो । जिज्ञासु के लिये ऐसे स्पन्दनों का उपयोग हो सकता है, होता है, ऐसा हमने देखा है । लेकिन जिस व्यक्ति के पास गये उसके भीतर जो प्रेम की अवस्था, शान्ति की अवस्या, सदेह ब्रह्म अवस्था है, उसको तो छोड़ दिया, व्यक्ति में ही फँस गये तो बस उसकी नाक, उसकी आँखें, उसका शरीर मुग्ध करने लगा । पुत्र के मोह में फँसे । तो भाई, गुरु का शरीर पार्थिव नहीं है तो आपके बेटे का भी पार्थिव नहीं । गुरु का शरीर चिन्मय और आपके बेटे का पार्थिव, अच्छा है आप का वर्गीकरण । पुत्र का मोह बाँधता है, पत्नी का मोह बाँधता है और गुरु का बाँधता नहीं । कहाँ से rationalisation (बुद्धिसंगत व्याख्या) लाते हैं, मेरी समझ में नहीं आता, लेकिन लोग फँस जाते हैं । यदि फिर दुर्भाग्य से कोई भी सुन्दर आदमी हो, कोई सुन्दर पुरुष हो, स्त्री हो तो गया, सत्सङ्ग किनारे रह गया । उनकी वाणी सुनी, बातों का पहली बार प्रभाव पड़ा, दूसरी बार आँखों का, तीसरी बार गये तो उसकी चेहरे की जो सुन्दरता है उसकी-तो उसी में फँसे । अरे, हाड़ माँस तो सब का है भाई, हाड़-मांस, है तो सब का पार्थिव है, चिन्मय है तो सब का चिन्मय है । लेकिन समग्रता को खण्डित कर दिया वहाँ । इसका शरीर चिन्मय है और हमारा पार्थिव है । इसलिये वह पूजार्ह और हमारा निषेधार्ह । भाई, यह भी आपका नहीं, वह भी उसका नहीं । वैश्विक चेतना के विकास में वह भी एक तरंग है और यह भी है एक तरंग, इससे अधिक कुछ नहीं । सत्संग होता नहीं । थोड़े से अधिक संवेदनशील हों तो रूप में नहीं अटकेंगे, लेकिन उसके विचार की शैली में अटक जायेंगे । तर्कशुद्ध

निर्दोष विचार उसके पास हों और दुर्भाग्य से वह अच्छा वक्ता भी होतो उसकी विचार-शैली, आवाज़ की मधुरता हो तो वह भी फँसाने लगेगी । स्थूल की ओर सूक्ष्म की ओर चलकर अटकेंगे । स्थूल में अटकने वाले कभी बाहर भी निकलेंगे, मगर सूक्ष्म में फँसने वाले कभी नहीं निकलते । क्योंकि उनको पता चलते-चलते जिन्दगी निकल जाती है कि हम इसमें अटक जायेंगे, उसमें अटक जायेंगे । विचार-शैली, उसकी मधुरता, उसका काव्य, उसकी आवाज़ का संगीत, उसके प्रवचन में लय (लय बहता है-presentation प्रस्तुतीकरण में) है, उसमें अटक गये । सत्संग रह गया, उसके व्यक्तित्व से जो निकलते हैं स्पन्दन उनसे लाभ उठाना और अपने जीवन में समृद्धता या ऐश्वर्य उपलब्ध करना वह रह जाता है, वहाँ जाकर एक प्रकार का नशा आने लगता है । शराब के अड्डे पर जाने वाले शराबियों को जो नशा आता है, और सत्संग को चलाने वाले को जो नशा चढ़ता है उसमें बहुत ज्यादा अन्तर नहीं । दोनों ही अपने आपको भूल जाते हैं- both of them manage to indulge in forgetfulness. और वह forgetfulness-विस्मृति अध्यात्म नहीं है, वह सत्संग नहीं है । वह अध्यात्म नहीं है । यह हाथ जोड़ कर मैं कहना चाहती हूं । इसकी बड़ी वेदना है मेरे चित्त में ।

भाई, गुरु यह कोई व्यक्ति नहीं है; गुरु एक अवस्था है व्यक्तित्व की । जिनके जीवन में समग्रता का संचार अणु-रेणु में होता है, जिसके जीवन में समग्रता प्रतिष्ठित हो जाती है, जिनकी वाणी में और व्यवहार में तटस्थता का सौरभ है, प्रेममय ही जिनका जीवन बन गया है, ऐसे व्यक्ति को आप गुरु-पद में पहुँचा हुआ व्यक्ति कहेंगे । वह एक अवस्था है, -it is a phase of being. लेकिन उसका आप identification (तादात्म्य) मत कीजिये उस व्यक्ति के शरीर के साथ । कहीं गुलाब का आपने पौधा लगाया, इतना बड़ा फूल आया और दूसरी तरफ़ लगाया वह धरती इतनी सम्पन्न नहीं है, उसको खाद न मिला हो, उसको इतनी सूर्य-किरण न मिली हों, विटामिन 'डी' न मिला हो, उसको स्वच्छ सुन्दर जल न मिला हो और जहां पौधा लगाया है, वहाँ उसको प्यार करने वाले कोई नहीं हों । तो उसको छोटा फूल आयेगा और बहुत प्यार से जो रखता है अपने पौधे को, समृद्ध धरती जहाँ है, वहाँ बड़ा फूल आयेगा । व्यक्तित्व में जो चैतन्यमय शक्ति है, उसको वह प्यार नहीं मिला, उसको निषेध मिला । उसको

संघर्ष मिला, उसको उपेक्षा मिली, अपमानित है, उपेक्षित है वह शरीर, वह मन; फूल खिला नहीं। वैसे संयोग हों तो खिलेगा। अच्छे फूल से व्यक्ति क्यों नहीं प्रसन्न होगा, जरूर होगा उस पर प्रेम भी होगा, बार-बार देखने की इच्छा भी होगी। लेकिन समझना चाहिये कि गुलाब का पौधा वह है तो गुलाब का पौधा यह भी है जिसकी सम्भावनाओं का विकास नहीं हो पाया है। लेकिन हम तो पहले पौधे को authority (प्रभुत्व) में और दूसरे को inferiority complex (लघु-ग्रन्थि या हीन भावना) में जकड़ देते हैं। जो व्यक्ति गुरु पद में या अवस्था में प्रतिष्ठित हो गया है, संयोग से, उसके लिये उच्च पद की कल्पना इसमें से 'ऑथोरिटी' (प्रभुत्व भावना) का जन्म होता है। इसमें बाँधने वाली, संकोच की जो चीज़ है, वह क्या है ? उस व्यक्तिके प्रति बाँधने वाली 'ऑथोरिटी' और क्या है ? उस व्यक्ति के प्रति आसक्ति है, उसके विचारों के प्रति आसक्ति है। जो कोई बँध गया, इसके लिये कहा जाता है he has accepted authority-उसने प्रभुत्व स्वीकार कर लिया है। 'ऑथोरिटी' शब्द से मैं घबराती हूँ। हम लोग उपनिषद् उठा लेते हैं, श्वेताश्वतर उपनिषद् उठा लिया, बृहदारण्यक उठाया या वेद पढ़ लिये। अब वेद पढ़ लिये, अर्थ समझ लिया, वेद की पोथी बाँधकर रखी, बहुत प्रेम से रखी। लेकिन कोई यह नहीं कहता है कि वेद का अर्थ समझने पर पोथी बाँधकर क्यो रखी ? और किसी (विकसित) व्यक्ति की बात समझ में आ गई उसके बाद उस व्यक्ति के पास बार-बार नहीं जायेंगे तो कहते हैं कि, 'अरे ! ओह ! उससे उसे ज्ञान प्राप्त हुआ, फिर भी उसको गुरु नहीं मानता है।' अरे भाई ! दीपक जलाते हैं उसके प्रकाश में काम करने के लिये, जीने के लिये, दीपकों को आलिङ्गन देकर बैठने के लिये नहीं। लेकिन हम तो दीपक के प्रकाश में, उसकी लौ में, ज्योति में इतने आकर्षित हो जाते हैं कि तत्त्वत: ही मूल ज्योति को भूल जाते हैं। इसलिये इस देश में सत्संग का अवसर होने पर भी, सत्संग करने लायक व्यक्तियों के उपलब्ध होने पर भी सत्संग होता नहीं, सम्प्रदाय बनते हैं।

चौथी बात, मन को शान्त करने के लिये वातावरण का सहयोग मिलता है, उसी प्रकार व्यक्तियों का सहयोग मिल सकता है, उनसे लाभ भी उठायें, लेकिन व्यक्तियों से सहयोग लेने के बदले उनके आश्रित होकर और उनमें आसक्त उनको बन्धन में जकड़ना और खुद भी जकड़े जाना ठीक नहीं है। इस पाप से हमें इस देश

को बचाना है। इस देश में यह बहुत चलता है। When you possess a thing, the thing also possesses you-जब आप किसी पर ममत्व का अधिकार जमाते हैं तो वह भी आप पर अधिकार जमाएगा। भारत वर्ष में पहली बार मुँह खोला हैं मैंने। इस विषय पर यहाँ जो कोई बोलता है उसे तुरन्त एक सन्त-साधु बना छोड़ते हैं लोग, खत्म कर देते हैं उसे। फिर वह कितना ही कहे कि मैं कोई गुरु नहीं और मेरे पास शिष्य नहीं है, फिर भी उसके पास आने वाले भावनात्मक सम्बन्ध गुरु-शिष्य का बना लेंगे, उस बाद में उसका पता चलेगा लेकिन लोग तो बना ही लेंगे; खत्म कर देंगे, उसका सामान्यत्व का ऐश्वर्य लूट कर ये लोग चले जायेंगे। इसलिये मैं बहुत सावधान रहती हूँ। इस विषय में बोलती नहीं हूँ। सामाजिक, आर्थिक प्रश्नों पर बोलती हूँ। क्योंकि अध्यात्म पर मुँह खोला इस देश में तो मैं खत्म हो जाऊँगी। फिर तो सामान्य मानव नहीं रहना पड़ेगा। सन्त नाम की जो जाति है, उसमें जिसे डाल दिया जाता हैल उसके जो मानवीय सम्बन्ध हैं वे सब qualified हो जाते हैं, मर्यादित हो जाते हैं। फिर उसे जो लोग मिलने के लिये आते हैं, वे या तो आध्यात्मिक समस्या की चर्चा के लिये आते हैं और या 'दर्शन' के लिये। अच्छा भाई, जो आया है उसी के आंखें हैं, और 'सन्त' को आंखें नहीं है क्या? सन्त तो 'दर्शन' करता नहीं, तो यह one way traffic (इकतरफ़ा व्यापार) शुरू होता है। मानवीय सम्बन्ध मर्यादित हो जाते हैं, आगे चलकर खण्डित हो जाते हैं। और जो आध्यात्मिक अनुभूति का रस प्रेम से लोगों के सामने रखा जाता है, वह कैद हो जाता है। उसके सुनने वाले जो श्रोता हैं, admirers (प्रशंसक हैं) उनकी जो admiration (प्रशंसा) है, यह जो सुवर्ण बेड़ी है (यह लोहे की नहीं, यह सुवर्ण की बेड़ी है), वह अपने बहुत ही नाजुक, कोमल धागे से बाँध लेती है। जिसे ऐसा बन्धन नहीं चाहिये, उसे बोलने में बहुत सावधान रहना पड़ता है।

तो 'गुरु' व्यक्ति का नाम नहीं है। 'गुरु' यह एक पद है, अवस्था है। उस अवस्था या state of total integration of personality (व्यक्तित्व की समग्रता) के लिये 'गुरु' शब्द का प्रयोग इस देश में चला आया हैं, जो भारतीय भाषा लीजिये, उसमें यही शब्द मिलेगा। इसलिये कहा कि मुझे निषेध करने की आवश्यकता नहीं है

। उसकी अनिवार्यता भी मुझे प्रतीत नहीं होती है । लेकिन उसका निषेध करना और उसकी अनिवार्यता का प्रतिपादन करना, दोनों मेरे लिये एक ही बात है, एक ही सिक्के के दो पहलू-adverse and converse हैं ।

तो आज सुबह की सभा हम यहाँ पर समाप्त करेंगे । ऐसा कोई सत्य को उपलब्ध, प्रेम को उपलब्ध व्यक्ति अपने भाग्य से, अनुकूलता से यदि देखने में आये, तो उसके पास जाना, उसके स्पन्दनों से लाभ उठाना । क्योंकि जब आप शान्त वातावरण में बैठते हैं तो अशान्ति के कारणों की खोज भी आप कर सकते हैं । व्यग्रता में संशोधन कार्य नहीं होता । आपने देखा होगा जितने 'रिसर्च स्कॉलर' (शोध-छात्र) होंगे उनको सबसे ज्यादा सुविधा मिलती है, दी जाती है । इसलिए दी जाती है कि 'रिसर्च' करने वालों को व्यग्रता नहीं होनी चाहिए । 'लेबोरेटरी' (प्रयोगशाला) में देखिए । साधना अपने जीवन में लेबोरेटरी' (प्रयोगशाला) खोलने का काम है । इसलिये यदि ऐसे व्यक्तियों के सहवास में आते हैं तो अपने भीतर छीपी हुई अशान्ति के जो कारण हैं, वे शान्ति और स्नेह की किरणों में स्पष्ट हो उठते हैं-They are exposed to the rays of peace and love. इसलिए इस दृष्टि से सहयोग लेने की किसी को आवश्यकता मालूम होगी तो वह लेगा । जिसको आवश्यकता मालूम न होगी नहीं लेगा । उसमें क्या है ? जिसको विवाह की ज़रूरत हुई उसने विवाह किया, ज़रूरत नहीं हुई उसने नहीं किया । उसका ब्रह्मचर्याश्रम श्रेष्ठ है, या उसका गृहस्थाश्रम ? उसमें झगड़ा इस देश में चलता है । भगवान् को भी हमने अपने झगड़े का कारण बना लिया । जो अपने हाथ में आया वह कलह का कारण बना, जो अपने मन में और हाथ में आया उसको ही संघर्ष का कारण बनाया । ऐसे तो हम कुशल हैं । लेकिन हम प्रभु पर दया करें; उसको संघर्ष का कारण न बनायें और गुरु करना है या नहीं करना है, इसको भी किसी संघर्ष का कारण बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

तृतीय प्रवचन

दिनांक : १९-११-१९६७

सहाय और आश्रय में जो अन्तर है वह हमने देखा । वातावरण का सहयोग लेना, वातावरण से मदद लेना, और वातावरण पर निर्भर हो जाना, उसके आश्रित बन जाना ये तीनों चीज़ें भिन्न हैं । अनुभूति-सम्पन्न, सत्य-उपलब्धि-सम्पन्न किसी व्यक्ति का सहयोग लेना, उसका जीवन, उसका सहवास, इनसे मदद लेना और उस व्यक्ति पर निर्भर होना, उस व्यक्तिके भावनात्मक आश्रित बनना या बौद्धिक आश्रित बनना, उन तीनों में जो अन्तर है वह आज सुबह हमने देखा । मनुष्य को जीवन से सीखना होता है । हरेक व्यक्ति हरेक व्यक्ति से सीख सकता है । स्लेट, पेन्सिल हाथ में लेकर 'अ, आ, इ, ई' सीख लिया; उसके बाद 'स्लेट' को तिजोरी में या 'सेफ़' में बन्द करके कोई नहीं रखता । पहली कक्षा में विद्यार्थी गया, किताबें लीं, पढ़कर ज्ञान प्राप्त किया, वर्ष के अन्त में परीक्षा दी; बाद में किताबें संजोकर कोई नहीं रखता । इस देश में सहयोग, सहाय और आश्रय इन तीनों में से विवेक छूट गया है । इसलिय अध्यात्म के क्षेत्र में एक तरफ़ तो, वातावरण के बिना कुछ भी हो नहीं सकता ऐसा कहने वाला आग्रही वर्ग, और वातावरण की आवश्यकता नहीं है, इस बात का आग्रह रखने वाला दूसरा वर्ग । ये दो वर्ग हैं, conformist और non-conformist-परम्परावादी, रूढ़िवादी लोग हैं और परम्पराओं को तोड़ने में गर्व अनुभव करने वाला दूसरा वर्ग है । वैज्ञानिक दृष्टि से इन दोनों वर्गों में मुझे कोई अन्तर दिखाई नहीं देता है । गुरु की आवश्यका, अनिवार्यता प्रतिपादन करने वाला वर्ग और गुरु की आवश्यकता है ही नहीं, इतना ही नहीं, उसका निषेध करने वाला वर्ग, दोनों में मुझे कोई अन्तर नज़र नहीं आता । ये दोनों extremes ('अति' के दो छोर) हैं और फिर non-conformism (परम्परा-भंग) भी एक प्रकार का conformism (परम्पराग्रह) बन जाता है । वह भी एक परम्बरा बन जाती है । इसलिये इन दोनों के बीच से गुज़रना है । इन दोनों के बीच गुज़रते हुए वैज्ञानिक दृष्टि से जहाँ से जो सीख सकते हैं, सीखना है । जहाँ से जो उपलब्ध है, वह लेना है, लेकिन उसके गुलाम नहीं बनना है ।

घर में बैठते हैं तो मन नहीं लगता, बाहर हो जाते हैं, इसलिये उठ कर मन्दिर में या सिनेमा-थियेटर में जानेवाले व्यक्ति में-दोनों में कोई अन्तर नहीं है। वह तो अपने से दूर भागना चाहता है। एक भाग कर सिनेमा-थियेटर जाता है, दूसरे मन्दिर या गिरजाघर जाता है। लेकिन दोनों के कार्य के पीछे, दोनों घटनाओं के पीछे जो हेतु है, जो वृत्ति है, वह एक ही है। अपने से भागना है। To escape from oneself-एकांत में जो अपना सहवास है अपने आप सहन नहीं होता है; इसलिये रेडियो का स्वीच ऑन' करनेवाले और भजन गाने वाले इनमें कोई अन्तर नहीं है। सवाल इतना ही है कि एकांत सहन नहीं होता यदि यही उसका अधिष्ठान है, रेडियो खोलने की क्रिया का या भजन का, तो फिर दोनों में अन्तर क्या ? 'स्वान्त:सुखाय' जीनेवालों को उसका आनन्द अलग है, लेकिन अपने से दूर भागने के लिये, जीवन से दूर भागने के लिए, जीवन-विमुखता में से जिस कर्म का निर्माण होता है वह कभी साधन नहीं बन सकता। तो आज सुबह से हम यह देख रहे हैं कि, (और इस पर मैं और ज़ोर देना चाहती हूँ क्योंकि इस देश में दो प्रवाह चल पड़े हैं) सनातनवादी रूढ़ि का एक वर्ग और रूढ़ियों को, परम्पराओं को तोड़ने वाला दूसरा वर्ग-ये दो आज चल रहे हैं। मेरी द्रष्टि से दोनों शक्तियाँ ग़लत रास्ते पर जा रही हैं; जैसे कोई कहेगा कि ब्रह्मचर्य यह शक्तिके लिये अनिवार्य है और कोई कहेगा कि नहीं गृहस्थाश्रम अनिवार्य है। अब गृहस्थाश्रम और ब्रह्मचर्याश्रय का मुक्ति से क्या सम्बन्ध है भाई ? जिसकी जैसी रुचि। विवाह कर लिया, रुचि है, नहीं किया, रुचि है। उससे, एक नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य उसके साथ जोड़ देना मेरी द्रष्टि से अनावश्यक है, unessential (अमौलिक) को essential (मौलिक) स्थान दिया जा रहा है।

यह मदद मिल सकती है वातावरण और व्यक्तियों से, इस का इन्कार नहीं हो सकता। जिस प्रकार फूलों के बगीचे में जाते हैं, चित्त प्रसन्न होता है; यह सहज परिणाम है, नदी के किनारे जाते हैं, कल-कल धारा दिखती है, पहाड़ों पर जाते हैं तो उनकी भव्यता से, दिव्यता से भीतर की भव्यता जाग उठती है। यह तो स्वाभाविक सम्बन्ध है। इसी प्रकार जिस व्यक्ति के भीतर के सभी संघर्ष शान्त हुए हैं, जिस व्यक्ति के भीतर वाणी और मन एक ही अवस्था के पर्याय बन गये हैं, जिस व्यक्ति के भीतर व्यग्रता, व्यस्तता और एकाग्रता एक ही अवस्था के प्रकार हो गये हैं, ऐसे प्रेममय

व्यक्ति के सहवास में यदि कोई बैठते हैं तो उसकी indirect help, अप्रत्यक्ष मदद होती है ।

आमूलाग्र क्रान्ति या total transformation का यह जो तीसरा प्रवचन है, इसमें एक बात और रखना चाहती हूँ । क्योंकि गुरुपद और 'गुरु' अवस्था यह विषय हम ने सुबह ले लिया था, इसलिये इसका आगे का आवश्यक अंग लेना चाहती हूँ कि शरणागति, प्रप्रत्ति के नाम पर, इन सब चीज़ों के नाम पर इस देश में जैसी juvenile delinquency (बचकानी अपचारिता) होती है वैसी ही spiritual delinquency (आध्यात्मिक अपचारिता) चलती है । शरणागति और प्रपत्ति, किसी के अनुग्रह के याचक बनना, यह जो अध्यात्म के लिये अनिवार्य अंग माना जाता है, इस से एक प्रकार का inferiority complex (न्यूनग्रन्थि) इस देश में बहुत चला आया है । भक्तियोग के नाम पर जो कुछ चला है, चाहे वह देश के किसी कोने का कोई भी मत हो-भक्ति के नाम पर इतनी अन्धाधुन्ध चलती है कि मुझे बड़ी दया आती है । बड़ा दु:ख भी होता है । भक्ति यह कमज़ोरों का काम है भी नहीं, शरणागति कायरों का काम है नहीं, वह तो समर्थ की लीला है, वह तो स्वाश्रय और स्वायत्त जीवन जिस का है, उस की प्रेमलीला है । जिसको आप भक्ति कहेंगे, अनुग्रह कहेंगे, यह वहाँ का व्यवहार है उस level (स्तर) पर, लेकिन हम समझते हैं कि सदेह हम को कुछ अध्यात्म में करना नहीं पड़ता । हम भक्ति करेंगे, कोई देनेवाला दाता देगा, चाहे वह प्रभु देगा, चाहे वह गुरु देगा । मुझे लगता है it is a sign of immaturity-यह तो अपरिपक्वता की भाषा है । प्रत्येक मनुष्य में वह शक्ति निहित है; जो एक मनुष्य कर सकता है, वह सभी मनुष्य कर सकते हैं । एक species के, जाति के सब लोग है । तो मनुष्य मात्र में वह शक्ति निहित है कि जो उसको सभी बन्धनों से परे स्वयं ले जाती है । यदि अपने ही हाथों वह अपना रास्ता न रोके तो संसार में उसको रोकने वाली कोई शक्ति नहीं है । लेकिन जब तक यह मान बैठेंगे कि हम कुछ नहीं कर सकते, हम क्या कर सकते हैं, हम हीन, दीन हैं-''मो सम कौन कुटिल खल कामी''-हमसे कुछ होगा ही नहीं । गुरु करेंगे, प्रभु करेंगे तो होगा । उसका नाम शरणागति नहीं, उसका नाम भक्ति नहीं । जैसे बाज़ार में 'रेडीमेड' चीज़ें मिलती हैं । 'रेडीमेड' कपड़े लायें तो 'टेलरिंग' की, सिलाई की ज़रूरत नहीं । उसी प्रकार अध्यात्म में 'रेडीमेड' चीजें खरीदने की इच्छा हो तो, इस सौदे में, यह भक्ति खरीदी नहीं जा सकती । अपनी तंद्रा,

अपना आलस, अपना प्रमाद-इनको पहचानना चाहिए । और साधना करने के कठोर परिश्रम से बच कर हम भक्तिमार्ग की तरफ़ तो कहीं नहीं जा रहे हैं, यह देखना चाहिये । पता नहीं क्यों, इस देश में ऐसा ही है । कौटुम्बिक सम्बन्ध, सामाजिक सम्बन्ध में आप देखेंगे कि यहां स्वायत्त जीवन का गर्व और महिमा बहुत कम है । domination, वात्सल्य के नाम पर (प्रभुत्व) 'डोमिनेशन' परिवार में चलता है और गुरु-शिष्यों के सम्बन्धों के नाम पर धर्म-क्षेत्र में जो प्रभुत्ववाद चलता है और लोकशाहीके नाम पर नेताओं का, नेतृत्व के नाम पर प्रभुत्ववाद चलता है-इस देश में यह एक अभिशाप है । धार्मिक जीवन में इस प्रभुत्ववादी चीज़ को और न्यूनग्रन्थि को हटाना चाहिये, आध्यात्मिक जीवन से इन चीज़ों को हटाना चाहिये । Man has become matured enough to grow into transformation of himself. अपने ही परिश्रम से वह खुद वहाँ तक पहुँच सकता है । पहुँचना तो कोई बाहर है ही नहीं । यह तो भीतर ही भीतर है । बल्कि वहाँ बाहर-भीतर शब्द ही वैसे निरर्थक हैं ।

तो इस चीज़ की ओर मैं ध्यान दिलाना चाहती हूँ क्योंकि याचना, भीख मांगना-मेरे शब्द कटु लगेंगे, किन्तु यही व्यवहार मठों में, मन्दिरों में, आश्रमों में चलता है, गुरु-शिष्यों के सम्बन्धों में चलता है । छोटे-छोटे जो संकेत हैं उन संकेतों की ओर आप ध्यान दें तो आप भी जानेंगे कि उसी तरफ़ बढ़ने वाले मनुष्य स्वाश्रयी कभी बन नहीं पाते, आत्मनिर्भर बन नहीं पाते । अन्त तक वे यह समझते हैं कि यह नम्रता है । "मैं कुछ नहीं कर सकती, वह जो करता है'-यह नम्रता थोड़े ही है ? नम्रता वीरों का शृङ्गार है । असमर्थों की वाणी और व्यवहार में नम्रता की गन्ध कहाँ से आयेगी ? यह तो escapism (पलायनवाद) है ।

इसलिये समझ लेना चाहिये कि अध्यात्म के लिये भी कीमत चुकानी पड़ती है, इसके लिये परिश्रम करना पड़ता है, लेन-देन की चीज़ नहीं है । कल मैंने कहा था कि माता का कितना ही प्रेम हो, बालक के लिये, वह स्वयं भोजन नहीं कर सकती; बालक को भी स्वयं भोजन करना पड़ेगा और स्वयं ही हजम करना पड़ेगा । तब उसको पुष्टि और शान्ति मिलेगी । उसी प्रकार एक व्यक्ति अगर आप को संयोग से मिल भी जाय तो मार्गदर्शन कर सकता है, लेकिन वह व्यक्ति आपके लिये रास्ता नहीं चल सकता । चलना आपको ही होगा । उस व्यक्तिके कंधे पर बैठकर आप चल नहीं

सकते, क्योंकि एक व्यक्ति की अनुभूति दूसरे के काम की नहीं है। हरेक की अनुभूति उसके साथ है, उसके संस्कार के कारण, उसके जीवन के कारण, उसके माता-पिता के कारण आधार मिलता है। आखिर शरीर क्या है ? चेतना का आधार-मात्र है। हरेक का आधार भिन्न है, इसलिये एक ही अनुभूति दूसरे के काम में नहीं आती। वह सूचक बन सकती है, वह मार्गदर्शक बन सकती है। लेकिन वह वाहन बन कर आपको उठा कर ले नहीं जा सकती। और इस देश के भले-भले शिक्षित और अशिक्षित आदमी भी इतनी सरल चीज़ नहीं समझ सकते। एक सन्त को छोड़कर, दूसरा, फिर तीसरा सन्त पकड़ते हैं, छोड़ते हैं। जो latest fashion (हाल में चालू फैशन) होगी उसके पीछे जाते हैं, लेकिन मन में यह वासना रहती है कि वही हमारी नाव उस पार लगा देगा, खिवैय्या बनेगा, हमारी नाव पार लगा देगा। कोई किसी की नाव नहीं खेता। मेरे मित्रों ! अपनी नाव अपने आप खेना पड़ती है। उससे बचने का रास्ता नहीं है। काम में भी 'शॉर्टकट', अध्यात्म में भी 'शॉर्टकट', व्यवहार में 'रेडिमेड' चीज़े और अध्यात्म में भी 'रेडीमेड' चीज़े। यह आत्म-वंचना है। और जिस राष्ट्र में सामुदायिक आत्म-वंचना चलती है, उस देश का भविष्य कोई उज्ज्वल नहीं। इसलिये यह चीज़ आपके सामने रख रही हूँ।

मैंने कहा कि हरेक व्यक्ति वहाँ तक जा सकता है। यह क्यों कहा ? इसलिये कहा कि इस वैश्विक चेतना की उत्क्रान्ति में यह मानव वेश में जो अवगुंठित चेतना है यह consummation of evolution (विकास का चरमोत्कर्ष) है। वनस्पति, पशु, पक्षी इन सबमें संवेदना है, इन सबमें चिन्तन की शक्ति है। वनस्पति तक प्रतिक्रिया करती है; आप प्यार से स्पर्श करेंगे तो फूल की पंखुड़ी काँप उठेगी और प्रतिसाद देगी। आपके प्यार से एक-एक पंखुड़ी क्यों काँप रही है, क्यों स्पंदित हो रही है, यह फूल समझ नहीं सकते और मनुष्य में भी वैसा होता है। आप किसी के हाथ को स्पर्श कीजिये प्यार से, वह भी रोमांचित हो जाता है। एक चैतन्य के साथ दूसरे चैतन्य का आलिंगन है, यह सिर्फ़ हाथों का स्पर्श नहीं है। तो वह जो रोमांचित होता है तो क्यों रोमांचित होता है, साथ-साथ यह भी जानना है। यह स्वसंवेदना जो है, self-consciousness (स्व-चेतना) जो है, मनुष्य के रूप में वैश्विक चेतना में स्वसंवेदना खिल उठती है, वह पशु-पक्षी में नहीं है। हाथी सोच सकता है, कुत्ता सोच सकता है, कुत्ते को आँसू आ सकते हैं और घोड़े को आँसू आ सकते हैं, लेकिन मेरे आँसू क्यों आ

रहे हैं, यह घोड़ा समझ नहीं सकता । तो सोचना, क्यों सोच रहे हैं यह समझना और यह जो सोच रहा हूँ इसकी जड़ में कारण क्या है, इसको भी देखना; ज्ञान, जो बाह्य परिस्थिति है उसको समझना, चित्त की प्रतिक्रिया की जड़ों को भी समझना-ये तीनों काम मनुष्य एक समय कर सकता है । पशु-पक्षियों में यह सम्भव नहीं । They are not gifted with the quality of self-consciousness (पशु-पक्षियों को स्व-चेतना की यह देन नहीं मिली है) । तो, मनुष्य की चेतना में यह दोहरा काम है, it works double उसका काम (function) है एक तो इन्द्रियों का विषयों के साथ सम्बन्ध आने पर उनका ज्ञान प्राप्त करना, उससे चित्त में प्रतिक्रिया का होना, और साथ ही प्रतिक्रिया और प्रतिक्रिया की जड़ दोनों को देखना और जोड़ना । यह शक्ति मनुष्य मात्र में हैं, इसी में निहित उसकी यह जो सम्भावना है, अपने मूल तत्त्व को, मूल स्वरूप को पहचानने की, जानने की सम्भावना जो है वही मानवता की महिमा है । 'न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित् ।' भाई, मनुष्य से कोई श्रेष्ठ नहीं, यह क्यों कहा ? यह मनुष्य की इतनी महिमा क्यों गायी ? इसलिये कि स्वसंवेद्यता और सृर्जनशीलता मानवीय जीवन के ये दो गौरवभूत, तत्त्व हैं और ये प्रत्येक मनुष्य में पड़े हैं । प्रत्येक मनुष्य में यह होने के कारण उसमें सम्भावना है, चाहे तो दिव्यता की ओर बढ़ने की, या चाहे तो पशुता की ओर झुकने की । इन दोनों में से एक, जो रास्ता चाहता हो, वह ले सकता है । पशुओं के लिये जीवन भर पशु ही रहना पड़ता है, लेकिन मनुष्य के लिए यह जरूरी नहीं कि वह जिस हालत में पैदा हुआ है उसी प्रकार की चेतना को लेकर इस दुनिया को छोड़े । अपनी सारी सम्भावनाओं को, समग्र सम्भावनाओं को खिलाने में, उनका विकास करने में समर्थ है ।

तो मानव मात्र मुक्ति का अधिकारी है; स्त्री हो चाहे पुरुष हो, चाहे जिस वर्ण का हो, चाहे जिस देश का हो । यह मुक्ति कहिये, सत्य की उपलब्धि कहिये, कैवल्य कहिये या निर्वाण कहिये प्रत्येक मनुष्य मात्र को यह जन्मसिद्ध अधिकार है और यह सुलभ है और सर्वसुलभ है । लोगों ने इसे दुर्लभ मान लिया । जैसे कि धर्म के पुरोहितों ने और ठेकेदारोंने भगवान् और मनुष्य के बीच एक बहुत बड़ा पर्दा खड़ा कर दिया है और इस तंत्र में जायेंगे तो प्रभु मिलेगा और उस तंत्र को सम्भालने वाला, आपके लिये 'काम' करने वाला फिर एक वर्ग पुरोहितों का खड़ा हो गया । इसी पुरोहित-वर्ग की चेष्टा भारत में या यूरोप में देखी गई तो क्रान्तिकारी आत्मा तड़प उठी । लेकिन मुझे

आज इसमें जाना नहीं है । मैं इतना ही कह रही हूँ कि प्रभु और मनुष्य के बीच पुरोहितों की जिस प्रकार दीवार खड़ी हुई, उसी प्रकार अध्यात्म में सत्य-उपलब्धि और मनुष्य के बीच दीवार खड़ी की गई । वह दीवार आवश्यक नहीं है । इतना ही मैं कहना चाहती हूँ । आत्म-साक्षात्कार प्रत्येक मनुष्य का अधिकार है । लेकिन, लोगों ने आत्म-साक्षात्कार को बहुत मुश्किल, बहुत कठिन माना । जिन पर प्रभु का अनुग्रह होगा वही थोड़े लोग जो संसार में नहीं हैं, एकान्त में रहते हैं, उन्हीं के लिये आत्मसाक्षात्कार और आत्मरत जीवन सम्भव है । इस प्रकार के भ्रम पैदा कर दिये गये हैं और ये भ्रम इतने सार्वत्रिक हो गये हैं कि भारत का मनुष्य यह समझता है कि यह हमारा काम नहीं, हम संसारी हैं । ओहो, क्या संसारी होना बड़ा पाप है ? भाई, मनुष्य हो न ? फिर एक मनुष्य ने जो किया, वह तुम भी कर सकते हो । तो यह न्यूनग्रन्थि (inferiority complex) निकल जाना चाहिये । यह एक विशिष्ट वर्ग का, विशिष्ट कक्षा का अधिकार नहीं है । आपके और मेरे लिये, सर्व-सामान्य के लिये यह सुलभ है, यह कहने के लिये मैं आयी हूँ । आप लोगों में से बहुत से तो १०, १२ या १५ वर्षों से मुझे जानते हैं । कोई मठों-मण्डलों में मैं रही नहीं, सत्य की उपलब्धि के बाद, एक व्यक्ति के नाते आई हूँ । आप में से एक व्यक्ति जो कर सकता है, वह आप भी कर सकते है । दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है इस प्रवचन के लिये । There is nothing mysterious and mystical about self-realisation-आत्म-साक्षात्कार में रहस्यात्मकता कुछ भी नहीं है ।

अतीन्द्रिय शक्ति के बारे में हमने आज सुबह चर्चा चलाई । उसका और अध्यात्म का कोई सम्बन्ध नहीं है । वह तो रास्ते में खेलते-कूदते कुछ शक्तियाँ खिल उठती है, उसका प्रदर्शन (demonstration) कुछ लोग करते हैं, कुछ नहीं करते । उसका सम्बन्ध नहीं है । तो आत्म-साक्षात्कार कोई निगूढ़, रहस्यमय वस्तु है ऐसा भूल करके भी मत समझिये । घर-घर बैठे-बैठे रसोई बनाने वाली, कपड़ा धोने वाली, बच्चों का पालन-पोषण करने वाली माँ हो, गृहिणी हो, या दफ्तर में बैठने वाला, नौकरी करने वाला व्यापार में काम करने वाला हो- सबके लिये सम्भव है, यह पहला प्रत्यय और आत्मविश्वास होना चाहिये । It is one's own capacity और यह जब तक नहीं होता है तब तक मैं नहीं समझती कि किसी भी प्रकार की साधना से कोई ओज और तेज मनुष्य को मिलेगा । समय अपने पास

अधिक नहीं है, इसकी भी गहराई में जाती कि यह जो inferiority complex या obsession (हीनग्रन्थि या न्यूनग्रन्थि और अभिभूतावस्था) है किस प्रकार उसका भरण-पोषण होता है समाज में, इस सबके विस्तार में हम जाते, लेकिन आज अपने पास समय नहीं है। तो वह आत्मविश्वास की मूल भित्ति चाहिये, अब यह आत्मविश्वास होने के बाद और हम में से प्रत्येक व्यक्ति को यह उपलब्धि हो सकती है यह जानके के बाद क्या ?

हरेक विचार, आचार और व्यवहार को समग्रता के साथ सम्बन्धित बनाने का काम धर्म है-पुण्य है और अध्यात्म है और उसको समग्रता से तोड़ना ही पाप है, अधर्म है। तो यह समग्रता के साथ जोड़ते कैसे हैं ? या total transformation आमूलाग्र (क्रान्ति) के रास्ते पर चलते कैसे हैं ? इस चीज़ को हम अभी लेंगे।

जहाँ से प्रारम्भ किया था वहीं फिर चलें-कि अपने शरीर के साथ, परिचय हो और मैत्री हो। इस देह की कुछ आवश्यकता है, अन्न चाहिये, वस्त्र चाहिये, मकान चाहिये। एकान्त जीवन की शक्ति नहीं है तो परिवार बनाना चाहते हैं। अकेला रहने का साहस नहीं, परिवार बनाना चाहते हैं। चार मिलकर रहेंगे तो जीवन यात्रा करेंगे। अब इस तरफ़ खण्डित दर्शन कौन-सा और समग्रता का कौन सा ? एक उदाहरण लें। एक तो यह है कि भाई देह के लिये वस्त्र चाहिए, अन्न चाहिये। समाज में बैठा हूँ। चाहे जिस धंधे में जायें, चाहे किसी उद्योग में जायें, सत्य-निष्ठा, न्याय-निष्ठा, धर्म-निष्ठा को हम सुरक्षित नहीं रख पाते। हमें असत्य का आश्रय लेना पड़ता है, न्याय से जी नहीं सकते, यह जानते हैं। यह होते हुए भी इस समाज में रहना है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करनी है। मुझे मालूम नहीं कितने व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को वैज्ञानिक ढंग से देखते हैं। भाई, हम कुल ४ आदमी हैं, ४ या ५ आदमी हैं तो हमें ५०० रुपये चाहिये या १००० चाहिये और इतना कमाना है, इसलिये यह जो अर्थ-व्यवस्था है इसके लिये उतने पाप का मुझे सहभागी होना पड़ेगा, इससे आगे मुझे नहीं बढ़ना है। लेकिन यहाँ किसी आदमी को स्थिर पाया है ? यह मेरी आवश्यकता है, यह परिवार की आवश्यकता है, इतना मैं कमाऊँगा ऐसी मर्यादा कोई बाँधता है ?

हम आवश्यकता के लिये कमाते ही नहीं हैं। हम तो कमाते हैं social recognition (सामाजिक प्रतिष्ठा) के लिये, तो फिर स्पर्धा चलती है,-उसमें हम

शामिल होते हैं। अब यह जो स्पर्धा में शामिल होने की प्रवृत्ति है यह आवश्यकता की परिपूर्ति नहीं है। यह तो महत्त्वाकांक्षा है, यह तो अहंकार है। लेकिन लोग मुझे कहते हैं कि-'हम क्या करें? हम तो संसारी आदमी ठहरे, हमें तो दिन-रात खटना पड़ता है।' नहीं भाई, आवश्यकता की वैज्ञानिक पूर्ति के लिये आप खाटते नहीं हैं। आप अपने अहंकार के gratification (परितोषण) के लिये सामाजिक स्पर्धा में उतरते हैं। आवश्यकता की परिपूर्ति के लिये एक मर्यादा और सीमा है, लेकिन महत्त्वाकांक्षा का कभी अन्त नहीं है। और फिर यह सत्ता की जो महत्त्वाकांक्षा है, उसमें संघर्ष है। यह विद्या-संग्रह, धन-संग्रह की है, या प्रतिष्ठा की है, या अध्यात्म-संस्था के संग्रह की है या अनुयायियों की संख्या बढ़ाने की है-महत्त्वाकांक्षा का अन्त नहीं है। और महत्त्वाकांक्षाकी छाया में हमेशा frustration (आशाभङ्ग) पलता है। अहंकार की छाया ही निराशा है। सफलता और विफलता के झूले में झूलने वाली जिन्दगी बीतती जाती है और शान्ति और समाधान से कभी भेंट नहीं होती। अहंकार को समग्रता के साथ जोड़ने का मतलब क्या है? मैं और मेरा परिवार, एक पीढ़ी नहीं, दो पीढ़ियों की व्यवस्था करना चाहोगे तो करो। अर्थ-संग्रह के बारे में यह वैज्ञानिक दृष्टि अपनाएँ, जहाँ लक्ष्मण-रेखा खींची जायेगी वहां आप साल भर की आवश्यकता के अनुसार धन कमायें मुझे कुछ कहना नहीं है। मैं यह कहने वालों में से नहीं हूं, Stoicism (विरक्तिवाद) का प्रचार नहीं करना चाहती और sadist (पीड़नरतिक) भी मैं नहीं हूं, और asceticism (तपश्चर्या) का भी प्रचार करना चाहती हूँ। मैं इतना ही कहना चाहती हूँ कि कहीं लक्ष्मणरेखा खींचें। आर्थिक महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये झूठ मत बोलिये, जो नियम तोड़ेंगे, जो इन्कम-टेक्स बचायेंगे वह न करें। कहीं न कहीं लक्ष्मण-रेखा हो कि भाई इतना मेरा compromise (समझौता) है। समाज में जीना है, समाज के साथ मुझे रहना है तो इतनी मेरी आवश्यकता है, उसके लिये इतना कर रहा हूँ। बस, इसके आगे नहीं। कभी-कभी तो सोचें। सोचते ही नहीं, बढ़ते ही जाते हैं। शारीरिक सुविधाओं के सामान जुटाते-जुटाते जिन्दगी निकल जाती है। सुख की छाया भी नहीं छू सकती। सुख तो किनारे रह गया। क्योंकि सुविधा का सामान जुटाने में और फिर उसको संभालने में शक्ति खर्च करते हैं, उसमें समय जाता है। और फिर सुख शान्ति, समाधान, संतोष इसमें से होता नहीं है यह देखकर तड़पते हुए, चिढ़े हुए जीते चले जाते हैं। कभी सट्टा

लग गया तो सुख हैं, कभी नहीं लगा, खिन्न हैं-इसी में जिन्दगी निकल जाती है। फिर कहते हैं-'भाई! इतना सब किया, सत्संग किया, शिविर में गये, कुछ भी नहीं हुआ।' कैसे होगा भाई ? तेरा तो अर्थ के बारे में, आजीविका के बारे में जो दर्शन है वह समग्रता के साथ सम्बन्धित है नहीं।

शरीर मेरा साधना का वाहन है। मोटर की भाँति शरीर एक साधन है, वाहन है। इसकी आवश्यकता की पूर्ति करना है, वही तो चाहते हैं। पशुओं को पेट भरने पर भोजन जमा करने की जगह नहीं रहती; मोटर की टंकी में पेट्रोल भरने के बाद यदि और भरने की इच्छा हो तो मोटर नहीं चलेगी। उपयोग नहीं ज्यादा पेट्रोल का। मनुष्य का अहंकार एक ऐसा संग्रहस्थान है, ऐसा भण्डार है जिसके तल है ही नहीं। वह अतल है। भरते, भरते भरते ही जायें, भरता ही नहीं है। Bottomless pit. Your vanity, your ego, however and how much you may try to gratify, the ego is not going to be gratified. It may always demand more and more. तो समग्रता से जहाँ से सम्बन्ध आयेगा वहाँ पारिवारिक आवश्यकताओं की वैज्ञानिक पूर्ति के बाद मनुष्य आगे संग्रह की लालसा में, महत्त्वाकांक्षा की अभिलाषा में बढ़ेगा नहीं। बस यहाँ तक और आगे नहीं। Thus far and no further. वह वहाँ स्थिर हो जाता है।

दूसरा उदाहरण देती हूँ। परिवार है, परिवार में १० व्यक्ति हैं। १० व्यक्तियों के १० temperament (स्वभाव) हैं, १० व्यक्तियों के १० प्रकार के संस्कार हैं, और उनको अभिव्यक्त करने के लिये १० अलग पद्धतियाँ हैं। मैं चाहूँ कि मुझे जो पद्धति प्रिय है उस पर सब चलें। आख़िर परिवार में दु:ख किस बात का है ? इसी का है न कि यह कहते हैं कि बेटा मेरी बात नहीं मानता, बहन मेरी बात नहीं मानती। पत्नी पति के बारे में और पति पत्नी के बारे में कहता है। दु:ख होता है। मेरी जो पद्धति-उपाय है, उसकी अपेक्षा सब रखते हैं और उस अपेक्षा को धक्का लगने वाली चीज़ हुई तो मेरे अहंकार का नाग जो है वह क्रोध से फुफकार उठता है। तो फिर तनाव पैदा होता है। मैं खुद अपने क्रोध से परेशान हूँ और उस क्रोध के तनाव से दूसरे परेशान होते हैं। यदि समग्रता के साथ जोड़ देंगे, तो क्या होगा ? क्रोध तो उठा है, भाई, आदत है तो क्रोध उठता है, आदत है तो मन दु:खी हुआ। लेकिन मेरे मन का महत्त्व सारे परिवार की

सुख-शान्ति के वातावरण से ज्यादा नहीं । यह ध्यान में आयेगा कि मेरी प्रतिक्रिया का महत्त्व परिवार की जो इकाई है, उससे ज्यादा नहीं । यह मेरी समझ में आयेगा तो फिर उस प्रतिक्रिया का संयम अपने आप हो जाता है । निग्रह नहीं करना पड़ता है । समग्रता के साथ अपने आपको जोड़ते ही, थोड़ा एक घण्टा जोड़ते ही हो क्या जाता है ? यह मनुष्य का जो अहंकार फुफकार कर बाहर निकलता है वह पीछे हो जाता है ।

मैं यह कह रही थी कि प्रत्येक कर्म को, प्रत्येक विचार को समग्रता के साथ, अपनी अखिलाई के साथ जोड़ना है । शुरू-शुरू में अखण्ड जागृत रहना पड़ता है । सुबह से रात तक व्यवहार में एक प्रकार के कठोर आत्मनिरीक्षण और आत्मपरीक्षण की साधना करनी पड़ती है । ''यह साधना न हो तो क्या कमरा बन्द कर लें और एक घण्टा बैठें ?'' तो जरूर बैठिये । मनुष्य स्नान करता है तो relaxation (विश्रान्ति) उसको मिलती है, उसी प्रकार २४ घण्टों में एक घण्टा बैठना चाहिये । आँखों को देखना नहीं पड़े, कानों को सुनना नहीं पड़े मन को काम नहीं करना पडे, प्राण विश्राम करें, इस प्रकार सामूहिक विश्राम में २४ घण्टों में एक घण्टा एकांत में चले जायें, take a dive deep into the silence of solitude. उससे आपको ताज़गी आती है, जैसे स्नान से आती है । इसलिये वह तो करें, लेकिन सत्य-उपलब्धि की जिसमें आकांक्षा हो उस व्यक्ति के लिये साधना तो २४ घण्टे में प्रतिपल में है । जहाँ खड़े होंगे, जहाँ बैठे होंगे वहीं पर उसे आत्म परीक्षण और निरीक्षण प्रारम्भ करना पड़ता है । आत्म निरीक्षण और परीक्षण करते हुए, प्रतिक्रिया का गुलाम होकर तो मैं नहीं चल रहा हूँ, यह देखना पड़ता है । जब प्रतिक्रिया के बारे में तटस्थता स्वाभाविक बन जाती है तब प्रतिक्रिया नहीं होगी । उस तटस्थता में से एक प्रकार की ताक़त आती है । प्रतिक्रिया क्या है, प्रतिसाद क्या है difference between reaction and response-यह हम देख चुके हैं ।

मैं यह कह रही थी कि २४ घण्टे, अहर्निश जागृति न हो तो हम जागृति में हैं इस भ्रम में हम न रहें । हमको न जागृति का पता है, न निद्रा का पता है । हम तो मूर्छा में जीते चले आते हैं, एक प्रकार की बेहोशी में जीते चले जाते हैं । दिन के पीछे रात आती है और रात के पीछे दिन दौड़ते हैं । हमारी श्वासों की माला चलती है, थोड़े

हाथ-पाँव घूमते हैं। मरते नहीं हैं तो जीते हैं। यह जिन्दगी नहीं, यह जीवन नहीं। इसमें समाधान, शान्ति और प्रसाद नहीं।

अखण्ड जागृति है साधना। मैंने कहा था कि साधना शब्द का उपयोग मैं बहुत झिझक के साथ, संकोच के साथ, कर रही हूँ। इसके साथ हज़ारों ग़लत भाव जुड़ गये हैं। साधना यानी एकांत में जाकर बैठकर ही करनी पड़ती है ऐसा नहीं। उसके लिये, आपको अभ्यास नहीं है तो, आवृत्ति करनी पड़ती है। तो एकान्त में बैठकर आवृत्ति करना। लेकिन मेरा अभिप्राय साधना शब्द से यह है कि अखण्ड आत्मनिरीक्षण की जब तक आदत न हो जाये तब तक वह साधना है। जब वह स्वाभाविक बन जाती है तो साधना समाप्त हो जाती है और सिद्धि उपलब्ध होती है।

अब एक और बात। आत्मनिरीक्षण यह introspection नहीं। आत्मनिरीक्षण और परीक्षण दोनों भिन्न हैं। परीक्षण में आती है आलोचना और परीक्षण में आता है निर्णय। उसमें आता है judgement यानी परीक्षक बनकर हम एक निर्णय दे देते हैं और निरीक्षण में कुछ नहीं है। देखना, तटस्थ होकर साक्षी भाव से देखना कि क्या हो रहा है। और यह देखना जब सीखते हैं तब बड़ा आनन्द आता है। शीशे में मुँहदेखना तो हम सब जानते हैं-लेकिन आत्मनिरीक्षण के शीशे में अपना व्यवहार देखना, तटस्थता से व्यवहार देखना, इसमें फिर इतनी ग़लतियाँ, इतनी त्रुटियाँ, इतनी खामियाँ तटस्थता के आलोक में नज़र आती हैं जो आज नहीं आतीं। तो मैं आपके सामने introspection या आत्मपरीक्षण नहीं रख रही हूँ। नहीं तो लोग क्या करते हैं, ''क्रोध आया, बहुत बुरा हुआ, क्यों क्रोध आया, इतना जप किया, इतना सत्संग किया फिर भी इतना गुस्सा आता है, मुझसे तो कुछ नहीं होगा, मैं कभी अध्यात्म में आगे नहीं बढ़ूंगा।'' दे दिया निर्णय-judgement यानी अपने भीतर छिपी हुई सभी सम्भावना जैसे उस आदमी ने देख ली हों, उसमें से आती है आत्मग्लानि, आत्मधिक्कार, विषाद, उस तरफ़ नहीं जाना। आपको आश्चर्य होगा कि यह जो अवलोकन है, यह जो निरीक्षण है महा कठिन कर्म है। कोई किसी प्रकार का पूर्वग्रह नहीं, किसी प्रकार के परीक्षण की आकांक्षा नहीं, किसी प्रकार के मूल्यों का चश्मा लगाया नहीं, देख रहे हैं, ऐसा जो देखना है उसको आप कह सकते हैं observation-अवलोकन। लेकिन वह देखना हमें आता ही नहीं।

हम देखते हैं तो हमारी आंखों में विकार भर कर देखते हैं, विचारों को भर कर देखते हैं, मूल्यों का चश्मा लगाकर देखते हैं। पता नहीं कि हम लोगों में से कभी किसी ने एक दूसरे की तरफ़ तटस्थ होकर देखा भी है। एक बार आप मिले, आपने कुछ बातें कीं। उस बार शायद आपने कुछ विशिष्ट प्रकार के कपड़े पहने हों, तो आपके कपड़े, आपका चलना, बैठना, आपका देखना, बोलना, आपका बातें करने का ढंग, आपकी शब्द-प्रणाली, आपकी संवाद करने की पद्धति-इन सब का मैंने मूल्यांकन कर लिया, यह sophisticated (परिष्कृत) है, यह जंगली है, यह मराठी है, यह गुजराती है, यह जैन है, यह हिन्दू है; फिर ४ या ८ दिन के बाद किसी ने कहा है कि श्री. 'अ ब क' ने ऐसा किया तो मैं कहूँगी कि यह मराठी है, इसलिये ऐसा नहीं करेगा तो और क्या करेगा ? जो एक बार आप मिले उसकी छाप मुझ पर पड़ी (reduced you to some abstract evaluation)-उसका निष्कर्ष मैंने अपने लिये बना लिया और then I put you under some category-फिर मैंने आपको किसी श्रेणी में डाल दिया। यह अच्छा है, यह बुरा है, यह साधु है, यह सन्त है। यह पापी है-और फिर उस श्रेणी में आपको रख दिया, जैसे किसी चित्र को एक फ्रेम में मढ़ देते हैं। अपने पास बहुत सारी 'केटेगरी' (श्रेणी) पड़ी हैं, बहुत से 'लेबल' है, उनमें अब आदमियों को जड़ देते हैं, चौखट में उस आदमी को जड़ देते हैं और कभी भी इसके बाद मिलना हुआ तो कहेंगे,-''अरे, यह तो वही है।'' हो सकता है वह व्यक्ति पहले जब मिला था, उसके बाद ८ दिन में अपने जीवन में ऐसा परिवर्तन लाया हो जिसकी मुझे कुछ जानकारी भी नहीं है, लेकिन मेरा तो पहली बार का पूर्वग्रह है। उसी के चश्मे से मैं आपकी तरफ़ देखती हूँ।

अगर आपने कभी मेरी तारीफ़ की होगी तो मुझे कुछ गुदगुदी हुई होगी। तो उस अनुकूलता की स्मृति जाग उठती है और आपको देखकर बहुत हर्ष होता है। और आपने कुछ आलोचना की होगी मेरी, कुछ अहंकार को ठेस पहुँची है तो मुझे याद रहेगा कि यह तो ऐसा व्यक्ति है। पता नहीं कि मैं कितने शीशे चढ़ा-चढ़ा कर देखती हूँ। यह आया है, पता नहीं क्या-क्या कहेगा यानी आपको मिलने से पहले ही आपके और मेरे बीच पूर्वग्रह के जीने-जीने पर्दे लग जाते हैं। इसलिये एक दूसरेसे मिल नहीं पाते। और तो और पति-पत्नी, माता-पुत्र,

भाई-भाई इनके बीच भी पूर्वग्रह के बहुत ही नाजुक delicate curtains झीने झीने पर्दे हैं, जिनकी बनावट में व्यख्या, विकार, विचार चले गये हैं ताने औ बाने में। झीनी चादर कहते हैं न, तो ऐसी झिरझिरी चादर ओढ़कर घूंघट में रं ही देखते हैं। घूँघट का पट खुलता ही नहीं हमारा। इसलिये एक दूसरे की आँखं में झांक कर उन आंखों में से जो चैतन्य दिखता है उसका दर्शन हम कर नहं पाते, एक दूसरे के रुदन और स्मित के पीछे जो ऊर्जा का स्पन्दन है, उसका स्पश हमें हो नहीं पाता। न सान्निध्य है, न सहवास है, न संवाद है, न सहजीवन है एक दूसरे से टूटे हुए, बिखरे हुए, रेलवे कम्पार्टमेन्ट में बैठे हुए मुसाफिरों र्क भाँति जीते चले जाते हैं। भले ही एक छप्पर के नीचे क्यों न २४ घण्टे रहते हों। यः हमारा जीवन है।

तो जब पता चलेगा कि तटस्थ होकर देखने का कर्म निरीक्षण है तब समझ ं आएगा कि यह निरीक्षण एक बहुत बड़ा आयाम है जीवन का। A state o observation is a dimension of life by itself तटस्थ निरीक्षण की अवस्य में या साक्षित्व में चैतन्य का प्रतिष्ठान होना जीवन का एक नया आयाम है It is new dimension of life. criticism (आलोचना) नहीं करते, चैतन्य की प्रतिष्ठ है, आलोचना नहीं, judgement (निर्णय) नहीं है। जागते हैं, समझते हैं, ऐसं जड़ता नहीं है कि किसी ने गाली दी तो गाली नहीं समझेंगे। तटस्थता में और जड़त में बहुत अन्तर है। समझते हैं, सब कुछ, लेकिन समझने के बाद उसका आवेग भीत उठता नहीं है और उन आवेगों के गुलाम बनकर हम व्यवहार नहीं करते हैं। इतन अन्तर रह जाता है इसलिये कि the very quality of consciousness goe through radical revolution. जो हमारा मन है वह मन ही एक प्रकार र्क आमूलाग्र क्रान्ति में से चला आता है, जिसके लिये मैंने total transformatio नाम दिया। तो यह जो निरीक्षण की अवस्था है, यह निरीक्षण का जो 'सर्च लाइट' ं वह 'सर्च लाइट' of the act of observation बाहर और भीतर दोनों तरफ़ घूमत रहता है। बाहर-भीतर कहने का तात्पर्य है कि यह घूमता रहता है। उसके आलोव में हम जीवन को देखते हैं।

इसके लिये बड़ा साहस चाहिये मेरे मित्रो, क्योंकि, तटस्थता के आलोक ं अपना जो स्वरूप दिखता है, अपना व्यवहार कितना क्षुद्र है, छोटी-छोटी चीज़ों क

लेकर कितने प्रकार की ईर्ष्या भरी पड़ी है, कितना व्यवहार अहंकार से प्रेरित होकर करते हैं, कितना व्यवहार कुल और परम्परा के अभिमान में से, अभिनिवेश में से आता है, कितना व्यवहार प्रान्तीयता के प्रेम से, अभिनिवेश में से आता है, कितना व्यवहार हमारे सम्प्रदाय और धार्मिक अभिनिवेश में से आता है, आसक्ति में से आता है, यह सब देखेंगे तो पता चलेगा कि मानवता दब गई है, यह तो ऊपरी की परत (layer) स्तर है ।

अब यह तो सीखने में कुछ मुश्किल नहीं है, जिसको आप साधना कहते हैं यह मुश्किल तो नहीं है, और यह साधना दूसरा व्यक्ति मेरे लिये नहीं कर सकता । आपके भीतर और मेरे भीतर में क्या चल रहा है यह तो आप ही जान सकते हैं, या मैं ही जान सकती हूँ । यह ठीक है कि दूसरे के विचार पढ़ने की शक्ति जिसको है वह यह जान सकता है, लेकिन यह बात अलग है । लेकिन २४ घण्टे में आपके व्यवहार का स्वरूप क्या है, उसकी जड़ें कहाँ हैं यह तो आप ही देख सकते हैं, दूसरा कोई नहीं देख सकता । इसलिए मैंने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति में न केवल शक्ति है, क्षमता है, बल्कि उसका साधना-पथ जो भीतर है, वह उसी को खोजना पड़ता है, बरदाश्त करना पड़ता है, कदम उसको चलाने पड़ते हैं, बढ़ाने पड़ते हैं । तो व्यवहार में समग्रता को लाने के लिए निरीक्षण की साधनाका अभ्यास करना चाहिये ।

आपने पढ़ा होगा, सुना होगा कि कई ऐसे यन्त्रों के साथ प्रयोग किये हैं, पश्चिम में, magnifying glasses (आवर्धक काँच) होते हैं न, इस मशीन में कोई चीज़ आपने रख दी और आप आँख लगाकर देखते रहें । मान लीजिये कि कोई पत्ती रखी हुई है उसमें, या कोई पंखुड़ी रखी हो तो आप यदि गुस्से में हैं, तनाव में हैं, तनाव हो आपके दिल में, संघर्ष की बात हो तो आपकी आँखों में से संघर्ष के किरण जाकर पत्ती को छूते हैं तो पत्ती काँप उठती है । आपके देखने में, निरीक्षण में तटस्थता न हो तो बाह्य परिस्थिति पर भी उसका परिणाम होता है, और उसके साथ किसी 'कोम्प्यूटर ब्रेन' को लगा दिया जाय और उसका 'ग्राफ़' (चित्र) लीजिये तो अलग आयेगा । मनुष्य की आँखों को 'मेग्निफ़ाइंग ग्लास' (आवर्धक काँच) के पास लगा करके देखिये, watch the behaviour of the petals or the leaves. you will find the difference; यह देख लिया । इसलिये मैं कहती हूँ कि देखना, निरीक्षण, यह कोई आसान काम नहीं । इसके लिए कठोर परिश्रम करना पड़ता है । अखण्ड जागृति रखनी

पड़ती है, दिन भर। तो यह साहस हो, यह कीमत चुकाने की तैयारी हो तो आत्म निरीक्षण की कला और विज्ञान हम जरूर सीखें।

इन दो-तीन दिनों में, सभी विषयों की गहराइयों में मैं उतर नहीं सकी। सूचित इतना ही करना था कि आत्मनिरीक्षण का विज्ञान है, और यह कला भी है-the science and art of observation. मेरे लिए ध्यान का द्वार यह निरीक्षण का कर्म ही खोलता है। ध्यान में जो प्रवेश होता है वह आत्मनिरीक्षण की कला द्वारा होता है, तटस्थता के द्वारा होता है, क्योंकि ध्यान तो करना नहीं पड़ता मित्रो, ध्यान कोई क्रिया का विषय तो है नहीं, हमने उसको भी मानसिक क्रिया का विषय मान लिया है। हम ध्यान करेंगे, अरे भाई, ध्यान करना नहीं पड़ता और करना पड़ता हो तो वह ध्यान नहीं, और कुछ हो सकता है। ध्यान तो एक चित्त की अवस्था है जिसमें किसी प्रकार की व्यग्रता नहीं, किसी प्रकार की व्यस्तता नहीं, निष्कम्प, निस्तरंग ऐसी जो चित्त की अवस्था है, वह ध्यान की अवस्था है। उसको आप क्या करेंगे ? लेकिन इस देश में ध्यान को भी लोग करना चाहता हैं, उसको भी, अकर्म को भी कर्म ही बनाते हैं और अक्रिया को क्रिया बनाना चाहते हैं; ऐसे हम शूर, वीर, महावीर हैं। क्या करें ? एकाग्रता करने की चीज़ है-concentration और वह की भी जाती है। सब विषय में से चित्त को हटाकर एक बिन्दु पर केन्द्रित कर देना to focus your attention on one point उसको concentration (एकाग्रता) कहते हैं। वह परिश्रम का विषय है, वह करने का विषय है, लेकिन ध्यान में तो होना पड़ता है, ध्यान करना नहीं पड़ता।

इसलिये मैंने कहा कि ध्यान की अवस्था के द्वार खुलते हैं तटस्थता और आत्मनिरीक्षण से। तो यह सीखना पड़ेगा कि एक दूसरे की तरफ़ हम देखें, विकार-रहित होकर। विकार शब्द भी बड़ा मजे का शब्द है। हम समझते हैं कि विकार यानी काम, क्रोध, मद, मत्सर आदि ६ ही विकार हैं, मगर शास्त्रीय दृष्टि से विचार भी विकार है। चित्त में उठने वाले हर तरंगों को विकार कहते हैं, तो हमने जो षड्विकार गिने हैं, उसी में exhaustive list (पूर्ण तालिका) मान ली, वास्तव में वह पूर्ण तालिका नहीं है, केवल सूचक है। तो विकार-रहित दृष्टि से देखना यानी निरीक्षण करना यह मतलब है। किसी भी प्रकार के विचार-विकार नहीं उठते, ऐसी चित्त की अवस्था हमारी एक मिनिट भी नहीं रहती। हम तो जब आपकी तरफ़ देखते हैं और

आप हमारी तरफ़ देखते हैं तो हमें पता नहीं कि आपके भीतर कितनी स्मृतियाँ उठती होंगी, या तो भूतकाल की स्मृतियों की झलक है और आगे के स्वप्नों का नशा है। ऐसे व्यक्ति मैंने कम देखे हैं जिनकी आँखों में स्मृतियों का नशा नहीं है और भविष्य के स्वप्नों का नशा नहीं है, जिनकी आँखे बिलकुल निर्मल हैं। ऐसे व्यक्ति देखने में बहुत ही कम आये, क्योंकि बौद्धिक स्मृति खेलती रहती है, चित्त खेलता रहता है और अब उसमें से आप बाहर देखते हैं तो ? यह act of observation जो कर्म है, देखने का वह होने लगता है। देखना बड़ा सुन्दर शब्द है, दृष्टि, दर्शन-यह देखने का जो कर्म है, इसकी साधना करनी पड़ती है।

और क्या साधना करनी पड़ती है कि प्रतिक्षण जो हमारा व्यवहार होता है वह भूतकाल की स्मृति से प्रेरित है या सामने जो वर्तमान के क्षण उपस्थित हैं उसके प्रतिसाद के रूप में व्यवहार है। यह आत्मनिरीक्षण, तटस्थ निरीक्षण, किसी के लिये भी बहुत मुश्किल है, ऐसा मैं नहीं मानती हूँ, यदि कोशिश की जाये तो। लेकिन हम क्या करते हैं ? एक घण्टा यदि मन्दिर में बैठना है तो, उसमें जागृत रहना पड़ता है और उसकी हमे थकान लगती है, रहने की आदत नहीं। सत्संग में बैठते हैं सावधान रहना पड़ता है, घर जाते हैं तो थकान आती है, क्योंकि हमें सावधान रहने की आदत नहीं है, हमें तटस्थता का अभ्यास नहीं हैं, किसी भी विकार के ऊपर सवार होंगे तो फिर चलती है गाड़ी, अब तटस्थता में कुछ आधार नहीं, कुछ नहीं, विचारों का नहीं, विकारों का नहीं। इसलिये उसमें, निरालम्ब अवस्था में रहना हमारे लिये एक बहुत बड़ी थकान देने वाली चीज़ है। इसलिये मैंने कहा कि कुछ समय तो कठोर परिश्रम करके इस विज्ञान को साधना पड़ता है। संगीत में सप्त स्वर हैं न। सा.रि.ग.म.प.ध.नि। लेकिन प्रत्येक को सीखना पड़ता है। आजकल के संगीत विद्यालय की बात नहीं करती हूँ, जिसमें १ महीने में आप १० राग भी सीख सकते हैं। यहाँ तो राग बेचारे रोते होंगे। इसमें राग का व्यक्तित्व क्या है, षड्ज क्या है, ऋषभ क्या कहता है, गांधार के कितने प्रकार हैं ऐसा सीखना हो तो एक षड्ज सीखने के लिये भी १२ महीने लग जाते हैं। स्वरों के बीच जो अन्तर है मौन का और शून्यता का, जिसमें संगीत का सही मर्म है, दो स्वरों के बीच जो अन्तर है, उस अन्तर का मज़ा जो पहचान सकता है, लूट सकता है, वही संगीत का मज़ा लूटता है। तो हैं तो ७ स्वर-उसी पर आप जानते हैं कि कितना बड़ा संगीत का शास्त्र, संगीत की कला आधारित है। उसी प्रकार यह जो

तटस्थ निरीक्षण का विज्ञान है और कला है, इसके आधार पर ही आगे जो मौन और शून्यता का साम्राज्य है, उसका आनन्द निर्भर है ।

कोई यदि कहेगा या विद्यालय में शिक्षक ने कह दिया कि संगीत में ७ स्वर हैं, इनके विभिन्न संयोजनों से थाट और थाट में से राग आता है, तो उससे क्या होगा ? तालिकायें बनाने से भी क्या होगा ? जब तक वह घर जाकर बैठेगा नहीं, सूर को साधेगा नहीं, कण्ठ में से वह सूर जब तक निकलता नहीं तब तक उसको संगीत का आनन्द नहीं । वैसे ही हम और आपने यह निरीक्षण क्या है, तटस्थता क्या है, समग्रता क्या है, शब्द सुन लिया, शब्द-कोष में देख लिया, परन्तु कर्म को समग्रता के साथ जोड़ने से क्या होता है, तटस्थता से क्या होता है, विनम्रता से क्या होता है ? यह दोष नहीं बता सकता । घर जाकर एक भी स्वर साधने की जिसकी तैयारी नहीं वह संगीत क्या सीखेगा ? कोई सुन्दर कमरा हो, गद्दा बिछाया हो, और यदि किसी ने कहा कि तैरना ऐसा है ये इसके विभिन्न ढंग से अंग-संचालन के-ऐसे हैं-वैसे हैं-तो उसको चलाया गद्दे पर हाथ-पाँव, पानी में उतरने को कहा तो कहता है कि पानी में नहीं उतरूँगा, पानी ठंडा है, सर्दी हो जायेगी । अध्यात्म में इसी पानी के प्रवाह में कूदना है ।

तो हम सिर्फ़ किनारे पर बैठने वाले यदि हों, अपना मापदण्ड (yardstick) लेकर दूसरों की अनुभूतियों के स्तर जाँचने, घर बैठकर नापने का ही यदि हमें शौक़ हो तो ठीक है, कुछ सस्ता बौद्धिक मनोरंजन cheap and vulgar entertainment for the intellect मिल जायेगा, कुछ सनसनीखेज़ मिल जायेगा जीवन के ढर्रे (routine life) में, लेकिन अध्यात्म-जीवन आ आनन्द उसमें से नहीं आता ।

आज यह विषय रखा गया कि सहाय, सहयोग और आश्रय, उसमें क्या अन्तर है ? वातावरण से या किसी व्यक्ति से सहयोग और सहाय लेने में हर्ज नहीं है, इतना ही नहीं, एक-दूसरे की मदद, सहाय लेते हुए मनुष्य आगे बढ़ता है । कोई व्यक्ति यह नहीं कहेगा कि मैंने किसी से किसी प्रकार की मदद नहीं ली । कम से कम मैं तो नहीं कह सकती हूँ । ५ साल की उम्र से इस विश्व से, मैं सीखती आई हूं, बच्चों से, जवानों से, वृद्धों से, भिखारी से, राजा से, नेताओं से, अनुयायिओं से, मूर्खों से, पापियों से, सन्तों से, साधुओं से । ऐसा कोई व्यक्ति आज तक मुझे नहीं मिला जिससे मैं कुछ नहीं सीख सकी हूँ । क्योंकि एक-एक व्यक्ति अद्वितीय है । एक जैसा दूसरा नहीं । भगवान्

के घर तो कोई कारखाना नहीं जिसमें स्तरीकृत एक समान उत्पादन (standardised regimentation on the mass scale) कर दे । उसमें एक-एक व्यक्ति अद्वितीय बना है । इसलिये एक व्यक्ति से जब मैं मिलती हूँ तो एक वैश्विक चेतना का ऐसा पन्ना सामने आता है कि जो पहले कभी नहीं पढ़ा था । बड़ा आनन्द आता है मनुष्यों से मिलने में, मनुष्य के सहवास में ऐसा आनन्द आता है, अद्‌भुत आनन्द आता है जो किसी को मन्दिर में जाकर मूर्ति के दर्शन में आता है । हरेक की आँखों में झाँकती हूँ और देखती हूँ; उसका जीवन-चरित्र उसके चेहरे की रेखाओं पर अंकित रहता है, उसको देखती हूँ और प्रभु की लीला देखते-देखते आनन्द-मग्न हो जाती हूँ, आनन्द-विभोर !

तो सहयोग, और सहवास लेना वैज्ञानिक तरीका है सीखने का, the art of learning, लेकिन आश्रित बन जाना, निर्भर हो जाना, किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व में कैद हो जाना, किसी व्यक्ति के पथ, प्रणाली में गिरफ्तार हो जाना यह अपनी मानवता का अपमान करना है । यहाँ से प्रारम्भ किया और हम आगे बढ़े और हमने कहा कि यह निरीक्षण जो है, उसकी कला और विज्ञान सीखना चाहिये । निरीक्षण की कला के लिये तटस्थताकी आवश्यकता है, यह बात कही गई । तटस्थता का मतलब है अपनी प्रतिक्रिया का भान और प्रतिक्रियाओं की गुलामी का भान, गुलाम बनने से इन्कार; इसकी साधना २४ घण्टे, एक घण्टा नहीं, दो घण्टा नहीं, २४ घण्टे करनी पड़ती है । जब वह स्वभाव बन जाता है तो फिर जिसको आप ध्यानावस्था कहते हैं वह उसमें से निष्पन्न होती है ।

संपूर्ण विमल वाङ्मय - हिन्दी
(श्री विमला ठकार की पुस्तकें)

क्रम	शीर्षक	किमत
१.	अध्यात्म: समग्र जीवन विज्ञान	75-00
२.	अध्यात्म का पांचजन्य	15-00
३.	अनाहत के पथ पर (फोटोकॉपी)	70-00
४.	अवधूत प्रसादी	60-00
५.	अशब्द की ओर	35-00
६.	अन्धेरे में त्रिविध प्रकाश (फोटोकॉपी)	25-00
७.	आत्मदीप	85-00
८.	इस शतक का अन्तिम अवसर	-
९.	कठोपनिक्षद्	100-00
१०.	कस्तूरबा ट्रस्ट की बहनों से	35-00
११.	ग्रामदान से ग्रामस्वराज्य (फोटोकॉपी)	25-00
१२.	चूनाव बने जनता का पर्व	
१३.	जीवन योग	125-00
१४.	जीवन संजीवनी	175-00
१५.	जीवन सौरभ	35-00
१६.	पंचामृत	20-00
१७.	पावक स्फुल्लिंग (फोटोकॉपी)	90-00
१८.	पाँचजन्य का अनुनाद (फोटोकॉपी)	60-00
१९.	बिरादरी के पथ पर (फोटोकॉपी)	30-00
२०.	भक्ति भागीरथी (फोटोकॉपी)	90-00
२१.	भावांजलि (फोटोकॉपी)	50-00

क्रम	शीर्षक	किमत
२२.	भूदान दीपिका	20-00
२३.	मधुपर्व	30-00
२४.	मध्यप्रदेश में विमल सत्संग यात्रा (फोटोकॉपी)	55-00
२५.	मन के उस पार	120-00
२६.	मानव निर्माण (फोटोकॉपी)	30-00
२७.	मानव बनें (फोटोकॉपी)	60-00
२८.	मातृशक्ति (फोटोकॉपी)	40-00
२९.	मौन के अनुनाद - काव्य (फोटोकॉपी)	50-00
३०.	युग की माँग (फोटोकॉपी)	120-00
३१.	युग की माँग - छतरगढ भाषण (फोटोकॉपी)	30-00
३२.	लोकनीति : दादा की नजर से	10-00
३३.	शान्तिमय क्रान्ति की पुकार	50-00
३४.	शिक्षण द्वारा समग्र क्रान्ति (फोटोकॉपी)	70-00
३५.	सख्य संवाद (फोटोकॉपी)	80-00
३६.	सत्संग प्रश्नोत्तरी	10-00
३७.	सहज समाधि भली	65-00
३८.	साधनामय जीवन	70-00
३९.	साम्य योग का रेखा चित्र	5-00
४०.	संजीवक शक्ति	40-00
४१.	स्वधर्म सूर्य के आलोक में विश्व	100-00
४२.	स्वाधिन बनो ताकी जनतंत्र बचे (फोटोकॉपी)	50-00
४३.	श्रीमद् भगवद् गीता : भावार्थ दीपिका अध्याय-२	20-00
४४.	श्रीमद् भगवद् गीता : भावार्थ दीपिका अध्याय-९	30-00
४५.	श्री ज्ञानेश्वरी (पद्यानुवाद)	100-00
४६.	त्रिविध प्रकाश	20-00

श्री विमला ठकार

के वार्तालापों, प्रवचनों, संवादों की

ओडियो C.D.

एवं

विडियो D.V.D.

तथा गुजराती, हिन्दी, मराठी, अंग्रेज़ी भाषाओं में

प्रकाशित हुई पुस्तकें प्राप्त करने हेतु,

विस्तृत सूचिपत्र प्राप्त करने हेतु

संपर्क करें

विमल प्रकाशन ट्रस्ट

'विमल-सौरभ'

वाणीयावाडी, स्ट्रीट नं. १, राजकोट-३६० ००२ (गुजरात)

फोन / फेक्स : ०२८१-२३६५२७१

E-mail : vimalsaurabh2010@yahoo.com
vimalprakashantrust@yahoo.com

Cell phone : +91 99 255 29096
+91 98 254 16769

जिस बच्चे को ताडना मिलती है वह बच्चा घर में मां-बाप के सामने बिलकुल सीधा है, लेकीन बाहर देखिये । वह बालक के साथ मैत्री करने का रास्ता नही है और सिखाने का रास्ता भी नही है । वैसे ही मन को कुछ सिखाना है तो उसको दुश्मन मत मानिये, उसको शत्रु मान कर लडिये नहीं । मन बहुत कोमल है । बहुत प्रेम से, प्यार से, करुणा के साथ पेश आइये । आप देखिये, आप मित्र बनेंगे तो आप की ताकत बढ़ेगी और शत्रु मानेंगे तो पहेले ही असमर्थ होंगे । फिर मदद के लिये कोई गुरू बाहर से चाहिये । जिन्होंने अपने तन-मन को दुश्मन बनाया और दुश्मन माना है, उन्हीं को बाहर से मदद की अपेक्षा रहेगी, सिर्फ अपेक्षा नहीं और मदद नहीं, किसी न किसी के आश्रित बन जाने की इच्छा होती है ।

विमला ठकार